मेरी जीवन-यात्रा

— जीवन-निर्माण की सरल, सुबोध एवं भावपूर्ण कहानी

जानकीदेवी बजाज

प्रस्तावना

विनोबा

१९५६

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार . १९५६
मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

हिन्दी पाठको को श्रीमती जानकीदेवी बजाज की 'जीवन-यात्रा' स्व० जमनालालजी बजाज की चौदहवी पुण्यतिथि पर भेट करते हुए हमे बडी प्रसन्नता हो रही है। यह यात्रा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे धारावाहिक रूप मे निकल चुकी है, लेकिन फिर भी पुस्तक के रूप मे लाने के लिए उसके क्रम और कलेवर मे काफी परिवर्तन किया गया है। दो-तीन अध्याय एकदम नये जोडे गये हैं। कुछ फिर से लिखे गये हैं। इस कारण पुस्तक विशेष रोचक तथा परिपूर्ण हो गई है।

जानकीमैयाजी अपने ये सस्मरण प्रसगवश लोगो को सुनाती रहती थी। श्री रिषभदासजी राका को सूझा कि इनको लिपिबद्ध कर लिया जाय और वे इस काम मे लग गये। मैयाजी सुनाती जाती थी, वे लिखते जाते थे। उन्होने जो कुछ लिखा, वह बापूजी, जमनालालजी तथा जानकीमैयाजी के सपर्क मे आनेवाले कई लोगो के हाथो से निकला और इस रूप मे आ गया। इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि भाषा, भाव तथा यथासभव शब्दावली भी मैया जानकीदेवीजी की ही रहे।

स्व० जमनालालजी गाधीजी के पाँचवे पुत्र बने थे। दत्तक पुत्र बनना कितना कठिन होता है, यह जमनालालजी के जीवन से परिचित लोग भलीभाँति जानते हैं, और ऐसे दत्तक पुत्र की पत्नी होना कितना कठिन रहा होगा, यह इस कथा से पाठक जान जायगे। एक निरक्षर अबोध-बालिका के रूप मे बजाज-परिवार में पहुँचकर नर्मदा के प्रवाह मे पडे शंकर की भाति वह कहा से-कहा पहुँच गई। उन्ही अनुभवो, सस्मरणो एव विचारो की यह कहानी है। जमनालालजी के सपर्क तथा बापूजी और विनोबाजी के सत्सग से किस प्रकार जीवन-परिवर्तन हुआ, संघर्षो से पैदा हुई परिस्थितियो मे उन्होने कैसे अपनेको ढाला और कैसे अपनी दृढता से औरो को प्रभावित किया, इसका बडा ही सजीव चित्र इन सस्मरणो मे आगया है। अबतक संस्मरण और आत्मकथा बहुत-सी निकली हैं और निकलती रहती हैं, लेकिन इतनी सरल, सजीव तथा निश्छल आत्म-कथा कम

ही देखने मे आती है और हिन्दी मे तो यह अपने ढग की पहली चीज है।

इस जीवन-यात्रा मे राजस्थानी सामाजिक सुधारो के साथ-साथ गांधी-युग के जीवन की भी झलक है। अकेले व्यक्ति के सुख-दुख को लेकर देशी-विदेशी भाषाओ मे अनेक चरित लिखे गये हैं, लेकिन पूरे समाज की कहानी देनेवाले इस-जैसे चरितो की सख्या अधिक नही है। इसे पढने से बीते दिन चित्रवत् सामने आ जाते हैं।

ये सस्मरण सब याददाश्त से लिखे गये हैं। इनमे वर्णित घटना-क्रमो तथा तिथियो आदि को यथा-सभव ठीक ही दिया गया है। फिर भी कही कोई भूल पाठको को दिखाई दे तो वे कृपया हमे सुझादे। अगले सस्करण मे उन्हे सुधार दिया जायगा।

निषेधात्मक प्रयोगो जैसे 'न', 'नही' आदि के प्रति लेखिका का वैचारिक नही, पर मनोवैज्ञानिक विरोध रहा है। उन्होने प्रयत्न-पूर्वक ऐसे सबोधनो को टाला है। पर सब जगह उससे बचना कठिन था। उनकी भावना यह है कि किसी चीज या किसी कार्य के लिए 'ना' कहना अस्वाभाविक है। ईश्वर की सृष्टि मे परिपूर्णता है और 'ना' का निषेध है।

मैयाजी हिन्दू सस्कारो के अनुसार जमनालालजी को विशेषणो द्वारा ही संबोधित करने की आदी थी, परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भाग लेने के कारण तथा गांधीजी के सम्पर्क मे आने के बाद जमनालालजी का नाम से भी संबोधन करने लग गई थी। हिन्दू स्त्री का पति का नाम लेकर सबोधन करना पुराने विचारो के लोगो को कुछ अटपटा और अस्वाभाविक लग सकता है, लेकिन जब कार्य का विस्तार होता है और सैकड़ो-हजारो व्यक्तियो से सम्पर्क आता है तो स्वाभाविक ही स्पष्टता की खातिर भी नाम का उपयोग अनिवार्यत आवश्यक हो जाता है और उसमें जो एक स्वाभाविक सकोच रहता है, वह भी धीरे-धीरे हट जाता है। मैयाजी ने फिर भी इन सस्मरणो को सुनाते समय अधिकतर 'सेठजी' आदि का प्रयोग किया था; लेकिन एकरूपता की दृष्टि से सब जगह नाम का ही प्रयोग रखना उचित लगा।

हमें आशा है कि यह यात्रा पाठकों को पसद आवेगी।

—मंत्री

प्रस्तावना

जानकीदेवी ने अपनी इस किताब के लिए मुझसे प्रस्तावना मागी तो मैं इन्कार नही कर सका। जमनालालजी के पूरे परिवार से मेरा काफी सबध रहा है। इसका कोई श्रेय मुझे हासिल नही। जमनालालजी का आक्रमणकारी प्रेम ही इसके लिए जिम्मेदार है। खैर, जिम्मेदारी किसीकी हो, वह संबध बन गया सो बन गया।

जानकीदेवी को जो भी विद्या मिली है, अनुभव से मिली है। इसमे पढाई-लिखाई का ज्यादा अंश नही है। इसलिए उनकी यह कहानी बहुत ही सरल भाषा मे कही गई है। यह लिखी नही गई है। जबानी कही गई है। इसलिए यह 'कहानी' है। और मैं मानता हूँ, यह पारिवारिक वर्तुलो मे रोचक भी होगी।

जानकीदेवी की एक विशेषता है कि अभीतक उनका बचपन कायम है। बात करने मे उनको बहुत सकोच या हिचकिचाहट नही रहती। इस कहानी मे भी उसका अनुभव आयेगा। इस कारण उनका भाषण काफी असर डालता है। जमनालालजी को इतना वक्तृत्व नही सधता था। जानकीदेवी ने उसका एक बहुत ही सरल कारण बताया। वह बोली, " 'जैसा बोलो वैसा करो' यह एक नाहक का भूत जमनालालजी के पीछे लगा हुआ था। बोलने मे कही अतिशयोक्ति न हो, इसकी उनको फिकर रहती थी। इसलिए वक्तृत्व उनकी वाणी से झरता ही नही था। हमको ऐसी कोई कैद नही तो क्यो वक्तृत्व नही सधेगा ?" जमनालालजी की वृत्ति का जो विश्लेषण इसमे किया गया है, वह मार्मिक और यथार्थ है। इसकी ताईद सभी परिचित लोग करेगे। लेकिन जानकीदेवी के भाषणो मे जो नि सकोच वृत्ति दीखती है, उसका कारण वास्तव मे उनकी बाल-वृत्ति है। बोलने के अनुसार कृति करनी पडती है, इसका भान उनको भी है। किये हुए संकल्प के पीछे वह कितना एकाग्र हो सकती हैं, इसका खयाल १०८ कूप-दान-पत्रो का जो जिक्र उन्होने किया है, उसपर से आ सकता है।

भूदान-यज्ञ मे उन्होने जो विशेष पराक्रम किया है, उसका जिक्र इस कहानी में नही है । पाठको से वह बात छिपी नही रहनी चाहिए । बिहार की भूदान-यात्रा खतम करके हम बंगाल मे प्रवेश कर रहे थे, उस दिन जानकीदेवी हमारे साथ थी । भीड बहुत थी, जिनमे लडकों को भी बडी तादाद थी । भीड़ मे से मार्ग निकालने के लिए मैने लडको के हाथ पकड कर दौडना शुरू किया । बुजुर्ग लोग पीछे रह गये । लड़को के साथ हम दौडते हुए आगे चले गये । मुझे खयाल न रहा कि ६२ साल की एक बालिका भी लडको के साथ दौडती आ रही है। दौडते-दौडते वह गिर पडी । उनके घुटने में चोट आई । दर्द शुरू हुआ जो कम-वेसी आजतक जारी है । अब वह दौड तो क्या सकेंगी, पर ज्यादा चल भी नही सकती । पर उनका मन दौडता ही रहता है ।

परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है कि जानकीदेवी की यह बालवृत्ति अंत तक कायम रहे और हम सबको उसका स्पर्श हो ।

पोचमपल्ली
३०-१-१९५६

विनोबा

विषय-सूची

गो-सेवा सघ की ओर से लेखिका द्वारा प्रधान मत्री नेहरूजी का स्वागत

मेरी जीवन-यात्रा

: १ :

कुटुम्ब-पाल

मेरे पिताजी का नाम गिरधारीलालजी था। उनका वर्ण गोरा था। वह ऊँची घुटनो तक की धोती पहनते थे। कसूम्वी रग की पगडी बाँधते थे। वह लाल रग को शुद्ध मानते थे, इसलिए धोती की किनारी भी लाल ही उन्हे पसन्द थी। किनारी वारीक नक्सी की होती थी। कानो मे सोने की मुरकियाँ पहनते। मूछे रखना धार्मिक दृष्टि से वर्जित समझते थे। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय मे दूध, पानी या खाने की वस्तुओ से बालो का स्पर्श होना अशुद्ध माना जाता है। वे बगलवन्दी पहनते थे, जो पूरी बाँहो की होती थी। जब वह बैठे होते, तब बड़े भव्य लगते थे। शरीर भी स्वस्थ था। ८६ साल की उम्र तक वह बरावर पैदल ही मदिर जाते रहे। उनका रास्ते-चलते हाथ जोडकर नमस्कार करना याद आता है। वह मुँह से पहले 'नारायण' शब्द का ही उच्चारण करते थे, क्योकि श्रीवैष्णवो की साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार मुँह से बोलते समय सदा प्रथम शब्द 'नारायण' का ही उच्चारण हो, ऐसा रिवाज-सा था। शायद इसके पीछे 'नारायण' के स्मरण की या सवकुछ नारायण का ही है, ऐसी समर्पण की भावना रही हो या यह भी हो सकता है कि पता नही कब मृत्यु आ जायगी, इसलिए मुख से 'नारायण' शब्द ही निकले। वे यही कहते कि 'नारायण के सब ठीक है न ?' 'नारायण के फल लेनो है', 'नारायण के भोग चढाणो है।' उन्हे लोग सत्पुरुष, दुखियो के सखा और कुटुम्वपाल मानते थे।

किसीसे मिलते ही वह उसके सुख-दुख की बात पूछते। मालूम होता कि किसी लड़की का विवाह है, कोई घर मे कार्य-प्रयोजन है, तो

पूछते—"नारायण के के सलुको है ?" वह बोलता—"दादाजी, सो-एक रुपया की तो तजवीज है पण..." वह समझ जाते कि इसे सौ-पचास की जरूरत है, सो झट एकाध बोरी अनाज और कुछ रुपए भिजवा देते। वह रुपये गिनकर नही देते थे। मुट्ठी भरकर दे देते थे। हमारे यहाँ रुपए के बदरे (जाली की थैलियाँ) मचान पर रहते थे। रुपये वजन से ही प्राय. तोले जाते थे। सहायता पानेवालो मे ब्राह्मण, बनिये, किसान, मजदूर, हिन्दू, मुसलमान सभी रहते।

धार्मिक नियमो के पालन मे वह कट्टर थे, पर उनमे सेवा-सहायता के वारे में भेद-भाव नही था। वह श्रीरामानुज या श्रीविष्णु सम्प्रदाय के थे। हमारे यहाँ श्रीविष्णु भगवान की पूजा होती थी, जिन्हे व्यकटेश, वालाजी अथवा वेणीगोपालजी भी कहा जाता है। व्यकटेशजी के साथ रुक्मिणी और सत्यभामा की मूर्तियाँ भी रहती थी। घर में धार्मिक वातावरण था और छूआछूत भी बहुत रहता था। चिड़िया के घुस जाने से चौका धोया जाता था। मक्खीसे वचने के लिए परदा रखा जाता था। वाल-वच्चोवाली स्त्रियो का परिहडा (पानी रखने का स्थान) अलग रहता था। रसोई उस परिहडे के पानी से वनाई जाती थी, जिसमे ब्राह्मण नहाकर और रेशमी या सणिये की गीली धोती पहनकर पानी भरता था। इसी पानी से वनी रसोई से ठाकुरजी को भोग लगाया जाता था। टोटी (नल) के पानी का उपयोग नही होता था। मदिर जाते समय रास्ते में अगर उसका छींटा भी लग जाता तो स्नान करना होता था। मदिर जाते समय ठीकरी, चिन्धी आदि चीजो पर पैर न पड जाय, इसका पूरा ध्यान रखा जाता था। उन दिनो वच्चो का मल आदि ठीकरी मे ही उठाकर फेका जाता था व चिन्धी आदि भी, जिनसे वच्चो की टट्टी साफ की जाती थी, वाहर फेंक दी जाती थी। इसलिए उनको छूने से वचाया जाता था। पापड केले के झाड़ के रस से वनाये जाते थे। वडी (मगोडी) ब्राह्मण ही पीसते और तोडते।

घर पर तो शालिग्रामजी की पूजा होती थी और भोग भी चढता था, पर दर्शन-पूजन के लिए मदिर भी जाना होता था—खासकर एकादशी के दिन जव व्यंकटेशजी, रुक्मिणी और सत्यभामा की स्वर्ण-मडित मूर्तियो

का दूध-दही से अभिषेक होता था। मुझपर इस अभिषेक का बहुत प्रभाव पडता था। मै भक्ति मे गद्‌गद् होकर देखती रहती। माता-पिता के यहाँ भगवान की पूजा का जो रिवाज था वही अब भी चल रहा है।

मै मा के प्रभाव से एकादशी का व्रत रखने लगी और खर्च के लिएं मिले पैसे मदिर मे बैठे ब्राह्मणो को एक-एक दो-दो पैसा करके दक्षिणा में दिया करती। एक दिन मैंने शालिग्रामजी की पूजा करनेवाले पुजारीजी से पूछा कि किस नाम का जप करने से भगवान प्रसन्न होते हैं? उन्होने 'ॐ नमो नारायण' का जप करने के लिए कहा। मै छत पर जाकर यह जाप किया करती। मैंने सुना था कि माला फेरने या जाप की बात दूसरे को मालूम होने से पुण्य घट जाता है, इसलिए मै यह जाप चुपचाप ही करती। भला काम चुपचाप करना ही ठीक है—यह सस्कार मुझमे बचपन से ऐसा जम गया कि दूसरे से कहना या प्रचार करना मुझे अच्छा नही लगता।

कुटुम्बियो को मदद पहुँचाना या उनकी देखभाल करना पिताजी अपना कर्त्तव्य मानते थे। हमारे कुदुम्ब के एक दूर के भाई हमेशा पिताजी पर मामला-मुकदमा करके उन्हे तकलीफ देते रहते थे। पर पिताजी उनके बालबच्चो को कोई कष्ट न हो, इसका सदा खयाल रखते। बाजार मे फल खरीदते तो उसमे से कुछ उनके यहाँ भेज देते। कहते—"गोपाल तो कमाई करे नही, कोरट-कचेरी करतो फिरे। टाबर के खासी?[1] जा भाई, वीके छीके पर रख आ।"

कुटुम्बवालो को निभाना उनका स्वभाव ही बन गया था। हमारे ताऊ के लडके साथ ही रहते थे। उनके बहुत-से बाल-बच्चे थे। मेरे पिताजी की ग्यारह सन्तानें पहले चल बसी थी। हम तीनो भाई-बहन बुढापे मे हुए थे। पिताजी ही सब-कुछ करते थे। ताऊजी के बाल-बच्चो मे से किसी-न-किसी के शादी-ब्याह हुआ ही करते। जब मेरे ब्याह का समय आया तब गाँव की औरतो ने आकर मेरी मा से कहा—"दादीजी, जानीबाई को ब्याह आयो है, सो गेणा-कपडा कइया का कराश्यो?" मेरी मा बोली—

---

१. बच्चे क्या खायंगे?

"ज्यु ओरा के हुया वीश्याई इव के हो जासी ।" तब वे वोली—"बांके तो सावा खरचा होताई रेवे। थारे तो या एक ही है, दादीजी !" तब मेरी मा पिताजी से बोली–"जानकी के तांई गेणो-कपडो काई कराश्यो।" पिताजी ने जवाब दिया—"औरा के हुया जिग्या हो जासी ।" तो मा ने कहा—"औरा के रोज ही हुवे, आपणे तो या एक ही है।" तब वह वोले—"वाको बाके नसीब को लागे। वांको नाव क्यु लेवो, थाने जो कुछ करणो है, सो बता दो ।"

इस तरह कुटुम्ववालो मे प्रेमभाव वनाए रखने में भेद-भाव को उत्तेजना न मिले, इसका खयाल रखते थे। जैसा प्रसग आया, काम कर लिया, पर मन मे ईर्ष्या न आये, यह उनका प्रयत्न रहता था। और उन्होने अन्त तक अपने कुटुम्व को निभाया ।

हमारे यहाँ जो मुनीम, गुमाश्ते, नौकर-चाकर थे, उनको पिताजी ने कुटुम्व का ही वना लिया था। वह उनके सुख-दु ख का खयाल रखते थे। इनमें पडित-ब्राह्मण ज्यादा रहते थे, पर और जाति के लोग भी रहते थे। मुसलमान नौकर भी थे। उनके प्रति अनादर का भाव नही था। हाँ, छूआछूत इनके साथ चलती तो वे ध्यान रखकर ही चलते थे, पर उससे न किसीको वुरा मालूम पडता था और न आत्मीयता में ही कोई कमी होती थी। घर मे जो चीज वनती, उन्हे दी जाती। वे पत्तल पर खाने मे भी अपमान नही समझते थे।

परदे का वहुत कडा रिवाज था। पिताजी परदा वहुत मानते थे। एक वार देस (लक्ष्मणगढ़-राजस्थान) मे किसी शादी में हमारे घर की औरतें हनुमानजी के मदिर में दर्शन को चली गईं। उनकी निगाह स्त्रियो पर पड गई तो वहुत नाराज हुए।

हम लोग जावरे रहते थे। वह मुसलमानी राज था। पर राज मे पिताजी का वडा मान था। हमारे घर शादी-व्याह मे राज के वरदीवाले वाजे आया करते और लक्ष्मणगढ में भी हमारे घर के लोगों के साथ जाते। लक्ष्मणगढ में जव जावरा-राज के वरदीधारी वाजेवाले आते तो लोग उनको देखने उमड पड़ते थे।

पिताजी का जीवन सव तरह से ऊँचा ही रहा। व्यापार में उनकी

साख थी और वह जबतक रहे तबतक धन-धान्य से भरे-पूरे रहे। उनका यह स्वभाव-सा हो गया था कि थोडा-बहुत मुनाफा मिलता तभी वह माल बेच देते, ज्यादा लोभ मे न पडते।

उनका अफीम का धन्धा था। खेतो से अफीम के रस के घड़े-के-घड़े भरकर आते। कुछ दिनो रखे रहने के वाद उस रस को वडी-वडी परातो मे मथा जाता और फिर लड्डू जैसे गोले बनाए जाते। इसे अफीम की गोटियाँ कहते थे। कोठो मे लाखो की अफीम भरी रहती थी।

कहावत है कि लोभ गला कटता है। पिताजी के वाद घर के लोगो को प्राय घाटा ही उठाना पडा, क्योकि वे उनकी नीति के अनुसार नही चले। थोडे नफे मे सन्तोप माननेवाले को जोखम कम उठानी पडती है और वह लाभ मे ही रहता है। उनके जीवन मे कुटुम्ब की स्थिति सभी दृष्टि से अच्छी रही।

विवाह के वाद जव मैं ससुराल जाने लगी तब पिताजी ने कहा था—"वेटी, तू पराये घर जा रही है। वहाँ अच्छी तरह रहना। ज्यादा न बोलना। कोई चार बार कहे तो एक वार बोलना।"

जैसा उनका जीवन भव्य रहा वैसी हो उनकी मृत्यु भी। जिस दिन उनका स्वर्गवास हुआ, उस दिन सुबह वह मदिर गये, ग्यारह बजे तक चिट्ठियाँ लिखते रहे। फिर नहाकर धोती पहन रहे थे कि उनको चक्कर आ गया। कमरे मे आये और लेट गए। लोग इकट्ठे हो गए। डाक्टरो को वुलाया गया। इन्दौर से भी डाक्टर वुलाये गए, पर कुछ भी फायदा न हुआ। शाम को सात वजे उनका देहान्त हुआ। कहते है, उनका प्राण ब्रह्माण्ड मे से निकला। सिर ऊपर से फट गया था और खून गिरा। ऐसी मृत्यु किसी योगी या महापुरुष की होती हैं, ऐसा कहा जाता है।

उस समय मेरी आयु दस-ग्यारह साल की थी

: २ :

गोगली गाय

मेरी मा को घर तथा पास-पड़ोस के लोग 'गोगली गाय' कहते थे। 'गोगली' शब्द मारवाडी भाषा का है। इसका अर्थ है शात तथा मधुर। 'गोगल गाय' नामक एक काला जन्तु होता है, जिसके पैर पेट मे होते हैं और जो बडा मुलायम होता है।

किसी नौकर को कष्ट होगा, यह सोचकर मा प्राय. स्वय ही काम कर लिया करती थी। किसी काम मे हाथ घिरे हो और दियाबत्ती का समय हो जाता तो वह कहती—"अरे भाई, बैठ्यो रे, हाथ तो धोणा ही है, मैं ही दियाबत्ती कर लेस्यूँ।" रसोई ऊपर बनती थी और परिहडा नीचे था। इसलिए पानी नीचे से ऊपर ले जाना पडता था। यह काम प्रायः नौकर ही करते थे। यदि मा को ऊपर जाना होता तो वह स्वय ही पानी ले आती और कह देती—"रेणे दे रे, मैं ही ले आस्यूँ, मने आणो तो है ही।" नौकर-चाकर को अगर कभी ठोकर लग जाती तो वह उसके पट्टी बाँधती, उसे आराम करने को कहती। मुस्लिम रियासत का गाँव होने से हमारे यहाँ मुसलमानो का भी आना-जाना रहता ही था। कई मुसलमान नौकर भी थे। परिवार से सम्बन्धित जो बूढे नौकर-चाकर, पडित-पुरोहित और पास-पडोसी थे, उन सबके प्रति मा का बरताव बडा प्रेम-भरा और दयालुता का था। सरदी के मौसम में वह गोद तथा मेथी के लड्डू बनाकर रखती थी और इन बूढो को रोज दिया करती थीं। सुबह पाँच बजे बिस्तर पर ही दे आती, और किसी-किसी के घर पर भी पहुँचा देती। मा के इस स्वभाव के कारण कुटुम्बी लोग कहा करते थे—"दादीजी के पास रहे हुए आदमी का दूसरी जगह निभना कठिन है।" नौकरो से तथा चौका-बरतन, माथा-चोटी करने आनेवाली नेवगण (नाइन) तक से वह 'जी' कहकर

ही बोलती थी और हम लोगो को भी ऐसा ही बोलना सिखाता था।

बिना किसी धर्म या जाति-भेद के वह बीमारो को दवा दिया करती थी। मिट्टी के तेल के आड़े कटे कनस्तर मे जंगली जडी-बूटियाँ तथा सोठ, काली मिरच, दालचीनी, लौग, पीपल, मुलेठी, जायफल, अजवाइन आदि चीजो की छोटी-छोटी कोथलियाँ (थैलियाँ) बनाकर रखती थी। जब किसीकी बीमारी की बात सुनती या कोई बुलाने आता तब वह अपने उस कनस्तर से दवा निकालकर देती। लोगो को मा की दवा पर श्रद्धा और विश्वास रहता था।

सीने-पिरोने का तो मा को व्यसन ही था। सिलाई तथा पटवा-काम (जेवर गूँथने के काम) मे वह बहुत होशियार थी। किसीके यहाँ ब्याह-शादी होती, मुकलावा (गौना) होता, जन्म आदि होता तो वह कपडे सी देती, गोटा-किनारी लगा देती, उनकी चोटियाँ बना देती। लोगो की सिलाई का काम छबडी (टोकनी) मे पडा ही रहता। रात-दिन कुछ-न-कुछ सिलाई चलती ही रहती। यह देखकर कभी-कभी घर के लोग कह देते—"दादीजी, यह सब क्यो करती रहती हो ?" वह कहती—"भाई, ईमे म्हारे हाथ को काई बिगडे है, सिलाणैवाला का चार-आठ आना तो बच जासी।"

इसी तरह तीज-त्योहार पर कोई चीज बनती तो नौकर-चाकरो तथा पास-पडोस मे पहुचा आती। कोई अफीम माँगने आता तो अफीम दे देती, अनाज और वस्त्र भी देती रहती। एक प्रकार से वह सबके काम आती थी।

मा के भोलेपन की एक घटना तो बडी मजेदार है। एक बार लक्ष्मणगढ से जावरा लौट रहे थे। रास्ते में किसी कुएँ पर खाने के लिए ठहरे, खाना-पीना होने पर मा मेरे बदले दूसरे ही बालक को गोद मे उठाकर चल दी। साथवालो ने मुझे अकेल देखकर उठा लिया और मा से जाकर पूछा, "दादीजी, जानीबाई कठह ?" उसने कहा—"या है ना म्हारे कनै," पर इतना कहते-न-कहते वह सकपकाकर बोली, "अरे भाई, मैं कुआँ पर ही भूल आई, बा तो कुआँ मे पडगी होसी।" और यह कहकर कुएँ की ओर चलने लगी। पर साथवालो ने मा की गोद मे मुझे दे दिया। उस

समय मे कोई २-२॥ वर्ष की रही हूँगी।

जब मै चार वर्ष की हुई, तब मेरे माता (चेचक) निकल आई। मुझसे एक बड़े भाई थे और एक छोटे। मै बीच की थी। हम तीनो मे दो-ढाई वर्ष का अन्तर था। मेरे माता निकली, उस समय टीका लगाने का रिवाज कम था। बच्चो को दर्द न हो इसलिए माताएँ उन्हे टीका लगवाने से बचाती रहती थी। माता की बीमारी को शीतला माता मानकर पूजने का रिवाज था, जो अब भी चल रहा है। होली के बाद की सप्तमी को माता पूजते हैं। उस दिन राजस्थानी पहले दिन का बना हुआ ठडा भोजन खाते हैं। मेरे दोनो भाइयो को टीका लगवा दिया गया था। मै ही न मालूम कैसे बच गई थी, जिससे मुझे लगभग चार महीने तक यह बीमारी भोगनी पड़ी।

मुझे याद है कि माता निकलने पर मुझे गाय के नोहरे (गाय बाँधने के स्थान) मे बोरी या टाट पर जगली कडे की राख बिछाकर सुलाया जाता था। गाय के मूत्र, गोबर आदि की गन्ध से चेचक की तेजी शायद कम होती होगी। मा मेरे शरीर पर राख बुरकती रहती थी। मुझे पीड़ा होती थी या नही, यह याद नही पडता। पर मा ने मेरी खूब देख-भाल की थी। चार महीने तक वह रात-दिन मेरे पास बैठी रही थी।

मै पहले ही साँवली थी, फिर इस बीमारी से रग और गहरा हो गया। चेचक के दाग चेहरे पर उभर आये। शायद इसी कारण मैंने माता-पिता और कुटुम्बवालो का अधिक प्यार पाया। यो भी बहुत-से बच्चो के पहले ही चले जाने के कारण मै लाड़ली थी, फिर उस बीमारी के कारण मुझे और भी सहानुभूति प्राप्त हुई।

: ३ :

'रूप को तरसै करम की खाय'

मेरी उम्र कोई चारेक साल की थी। माता की बीमारी उठी से ही थी। मुँह पर चेचक के दाग उभर आए थे। पर बीमारी के बाद की सार-सम्हाल से कुछ मोटी हो गई थी। इसी समय वर्धा से मुझे देखने के लिए एक ब्राह्मण आए। उनका नाम मनीरामजी था।

उस समय लडका-लडकी देखने का काम ब्राह्मण या नाई ही करते थे। नाई तथा ब्राह्मणो पर समाज विश्वास रखता था। वे भी समाज के एक उपयोगी अग माने जाते थे। इनके साथ पारवारिक रिश्तो का-सा व्यवहार होता था।

मनीरामजी मुझे देखने सेठ बच्छराजजी के यहाँ से आये थे। इसलिए उनका खूब स्वागत किया गया होगा। पिताजी के यहाँ भले ही धन ज्यादा न रहा हो, पर रहन-सहन रईसी और नवाबी था। इस ठाठ-बाट और रहन-सहन का समाज मे वहुत प्रभाव था।

मनीरामजी स्वय वहुत होशियार थे। उन्होने वर्धा जाकर कहा होगा—"खानदान वहुत अच्छा है, धार्मिक है। लडकी सावली है, मोटी है, अभी-अभी माता की बीमारी से उठी है, सो मुंह पर चेचक के दाग हैं। पर वडी होने पर शायद दाग भर जायँगे।" वगैरा। इन शब्दो मे मेरी प्रशसा कहाँ थी, पर मनीरामजी ने यह वात कुछ ऐसे ढग से कही होगी कि वच्छराजजी के परिवार का झुकाव वढ गया। बच्छराजजी की पत्नी सद्दीवाईजी भरेपूरे खानदान और धार्मिक वातावरण की वात सुनकर सम्वन्ध करने को राजी हो गईं। वच्छराजजी के यहाँ सन्तान की ओछत थी। एक तो सन्तान होती नही थी और गोद लेते तो उसकी अकाल मृत्यु हो जाती थी या वह पागल हो जाता था। मेरी सास (रामधनदास की वाल-विधवा पत्नी)

ने अपनी सास (सद्दीबाईजी) से कहा—"आपणो टाबर गोरो और सोवणो है, तो बहू भी सोवणी ही लाणी चाइजे ।"

सद्दीबाईजी ने कहा—"बेटी, आपा सोवणी तो घणी ही हाँ, पर टाबरा ने तो तरसा ही हाँ। थारां भाभीजी (बिरधीचन्दजी पोद्दार की मा) ने ही देखो, वे कठै सोवणा है, पण सात रतन दिया है। आपाणै तो इसी लड़की चायजै जो कुटुम्ब बढावे । रूप मे काई पड्यो है।"

उसी समय जमनालालजी के जन्म के पिता कनीरामजी सीकर से वर्धा आ रहे थे। उनको भी जावरा उतरकर लडकी (मुझे) देख आने के लिए वर्धा से लिखा गया था। वह भी जावरा आये और मुझे देख गये।

पहले के लोग रूप की अपेक्षा खानदान को अधिक महत्त्व देते थे। माता-पिता जो सम्बन्ध कर देते, वही पक्का माना जाता था। कनीरामजी ने अपने लडके-लड़कियो के सम्बन्ध भी खानदान तथा आदमी देखकर किये थे। इसलिए मेरे लडके तो कभी-कभी उनसे कहा करते थे—"दादाजी, आपने चुन-चुनकर कैसी जोडियाँ मिलाई हैं !" क्योकि कुछ सयोग ही ऐसा हो गया कि वर्धा और सीकर के कुटुम्ब मे आदमी तो सुन्दर और सोवणे थे, लेकिन लडकियाँ सब मेरे जैसी ही आई । लेकिन आज तो ऐसे सम्बन्ध होना प्राय कठिन ही है। प्रत्येक लडके की इच्छा रहती है कि वह स्वय भले ही कुरूप हो, पर उसकी पत्नी तो सुन्दरी होनी चाहिए ।

माता-पिता तथा भाई-बन्धुओं में भी सगाई के बारे में विचार-विमर्श तो हुआ ही होगा। हमारी धार्मिक मान्यता वर्धावालो से भिन्न थी। जावरावाले वर्धावालो को 'घोग्या' कहते थे। राजस्थान के जो लोग दक्षिण की तरफ आ गये थे और जिनके रहन-सहन तथा खान-पान पर दक्षिण-निवासियो का असर पड गया, उन्हे 'घोग्या' कहा जाता था। राजस्थान और मालवा के लोग इनको कुछ हलकी नजर से देखते थे। पर वर्धावाले सम्पन्न थे, लडका सुन्दर था और इधर में सांवली तथा चेचक के दाग-वाली थी। इसलिए उन्होंने सोचा होगा कि भले ही वर्धावाले 'घोग्या' हो, हैं तो धनवान, इसलिए सम्बन्ध तो कर ही लेना चाहिए।

सगाई के बाद बहुत-सा जेवर मेरे लिए वर्धा से आया। गहना ठोस

सोने का था। पर इतने सारे गहनो को देखकर मेरे भाई-बंधुओ ने कहा—"सोनो तो टोकरी भर है, पण ढग को तो एक भी गेणो कोनी।" मेरे भतीजी के पति मजाक मे कहा करते थे—"कढी मे काले को छाँटो लागग्यो।" पहले-पहल तो मै इस मजाक को योही समझती रही, पर बाद में जाकर मालूम हुआ कि सोना तो बहुत आया, पर पहननेवाली बाई तो ऐसी है!

मुझे अपने रूप के कारण किसीसे मिलने मे भी सकोच होता था, यहाँतक कि मुझे काँच मे भी अपना मुँह देखने मे सकोच होता था।

जमनालालजी के महाराष्ट्रीय साथियो को तो अबतक अचरज है कि उन्होने मेरे साथ विवाह की स्वीकृति कैसे दे दी। महाराष्ट्र मे वर-वधू एक-दूसरे को देखकर ही प्राय स्वीकृति देते हैं, इसलिए उन्हे अचरज होना स्वाभाविक ही था। एक समय, जब जमनालालजी के सेक्रेटरी श्री महादेवलाल सराफ से बजाजवाडी मे किसीने कहा कि हमे सेठानीजी के दर्शन करने हैं, तब सराफ ने मजाक मे कह दिया—"इस घर मे जाइए और जो सबसे 'सुन्दर' दिखाई पडे उसे ही सेठानीजी समझ लीजिए।" श्री महादेवलाल विलायत से नए-नए ही लौटे थे। मैने उनसे मजाक मे कहा—"अभी तो जनाब की आँखे आसमान मे हैं। देखना तुम्हारे लिए भी कोई मेरे जैसी ही बहन बैठी होगी!" मै क्या जानती थी कि मेरी बात सच ही निकलेगी!

जो हो, मेरे लिए तो राजस्थान की यह लोकोक्ति ही चरितार्थ हुई—

रूप की तरसे करम की खाय,
रूप की घराणी पाणी भरवा जाय।

और मुझे 'करम की खानेवाली' बनने मे पूज्य सद्दीबाईजी का आशीर्वाद ही समझना चाहिए।

इसे मै भगवान् का उपकार ही मानती हूँ कि मै रूपवान होने से बची। सम्पन्न परिवार, जमनालालजी-जैसे सुन्दर पति तथा सब प्रकार की अनुकूलताओ को पाकर भी 'रूप' के कारण मै अहकार मे डूबने से बची। मुझमे जो सादगी आई, धर्म-ध्यान करने की रुचि बढी, उसमे शायद मेरी कुरूपता भी एक कारण रही हो।

: ४ :

'कागद कीयां बोले ?'

मै कोई छः-सात बरस की थी। एकदिन पिताजी के हाथ मे एक कागद था, जिसे वे मा को पढकर सुना रहे थे। कागद लम्बा था और चौडा कम। पहले ऐसी ही चिट्ठियाँ लिखी जाती थी। 'चिट्ठी' के लिए 'कागद' शब्द का ही इस्तेमाल होता था। पिताजी कह रहे थे कि कनीराम ने यह लिखा है, वह लिखा है। मुझे यह देखकर अचरज हुआ। मैं रह-रहकर कभी पिताजी की तरफ और कभी मा की तरफ देखती। मै विचार मे पड़ गई कि यह कागद कैसे बोलता है। मेरा अचरज बढता ही गया। मेरे लिए यह नई बात थी। मैंने मन-ही-मन सोचा कि मै भी सीखूंगी कि कागद कैसे बोलता है।

दूसरे दिन पट्टी-कलम लेकर मै जोशीजी के यहाँ पहुँची। देस मे पढानेवालो को जोशीजी कहते थे। मैंने उनसे कहा कि "कागद कीया बोले सो मनै बताओ।" (कागज कैसे बोलता है, यह मुझे बताओ।) वे मेरी समस्या को समझ गए और क ख ग घ ङ, ये पाच अक्षर पट्टी पर लिखकर दे दिए और कहा कि इसको घोखना। मुझे मानो मनमाँगी चीज़ मिल गई। मैं तो अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार यही समझती थी कि कागद में भगवान बोलते हैं। जोशीजी के लिखे अक्षरो को मैं मन लगाकर घोखने लगी।

जोशीजी के यहाँ से अक्षरो को लेकर जब मैं घर लौटी, दूकान के चौतरे पर पिताजी ने मेरे हाथ में पट्टी-कलम देखकर कहा—"बेटाजी, आज कठे गया था पाटी-कलम लेकर ?" मैंने हलके-हलके हँसकर पट्टी के अक्षर बता दिये। मुझे तो अक्षर घोखने की ही धुन थी। मै मन-ही-मन सोचने लगी कि मै जो काकाजी बोलती हूँ, उनका 'क' यही है।

पिताजी मेरा उत्साह देखकर मा से बोले—"एजी, अब तो बाई के ताईं जोगीजी राखन पडसी ।" और उन्होने मेरी पढाई की व्यवस्था कर दी। धीरे-धीरे मै बारह-खडी सीख गई और थोडा-बहुत टूटा-फूटा पढने भी लगी।

मै मा के साथ मदिर तो जाती ही थी। पूजा-पाठ, कथावाचन में भी उनके साथ रहती थी। पडितजी से मैने विष्णु-सहस्रनाम सीखना शुरू कर दिया। अर्थ तो क्या समझती पर टूटे-फूटे उच्चारणो मे पाठ करना शुरू कर दिया। सहस्रनाम सीखने पर तो मानो मुझे भगवान् मिल गए। भगवान् के एक हजार नाम लेना मेरे लिए कोई छोटी बात थोडे ही थी! मै सुबह-शाम सहस्रनाम का पाठ करके भोजन करने मे धर्म मानती।

तेरह-चौदह वर्ष की उम्र मे मुझे थोडा थोडा पढना आ गया था। उससे मुझे बडा लाभ हुआ। मुझे यह भी लगा हर स्त्री को पढना आना चाहिए। ससुराल मे मैने अपनी ननद और देवरानियो को पढाना शुरू किया। गाँव की और लडकियाँ भी पढने को मेरे पास आने लगी। हमारे यहाँ 'हतकार'[1] लेने के लिए जो ब्राह्मणकन्या आती थी, उसे मै अक्षर-ज्ञान कराने लगी और साथ ही सीना-पिरोना भी सिखाने लगी। उसकी देखादेखी दूसरी लडकियाँ भी आने लगी थी।

आज जब मै उस समय की अपनी पढाई का, भावना का और दूसरो को पढाने का विचार करती हूँ तब मुझे हर्ष भी होती है और हँसी भी आती है। हर्ष तो इसलिए कि चालीस-पचास वर्ष पहले, जब स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध मे कोई खास झुकाव नही था तब मै थोडा-बहुत पढ-पढा सकी और हँसी इसलिए आती है कि मेरा अक्षर-ज्ञान टूटा-फूटा, फिर भी मैं पढाने लगी।

मेरे माता-पिता नये घर मे रहने गये थे। वहाँ कोठे (कमरे) में

---

१. चौके में जो रसोई बनती है, उसम से एक व्यक्ति का भोजन ब्राह्मण को दिया जाता है, उसे 'हंतकार' कहते हैं। आजकल तो यह प्रथा बन्द-सी हो गई है।

मुझे एक भडारिया दिया गया। भडारिया दीवार मे लगी छोटी-सी आलमारी को कहते हैं। वह खेल-खिलौने रखने के लिए था। मेरी इच्छा उसमे भगवान् का चित्र लगाने की थी। इसलिए मैंने उसमे एक कील ठोकी। मा ने मुझे देख लिया, उसने अत्यन्त करुण मुद्रा मे मुझसे कहा—"ए बाई, यो खीलो क्यूँ ठोक्यो, चूना की भीत मे खरुट उतर जासी न।" ये शब्द इतने करुण स्वर से कहे कि मेरे हृदय पर अंकित हो गए। मैं समझने लगी कि दीवार और लकडी को भी दुःख होता है। तबसे कही भी किसी को कील ठोकते देखती तो मुझे ऐसा लगता, मानो मेरी छाती मे कील ठोकी जा रही है। आज भी ऐसा ही लगता है।

: ५ :

मेरा विवाह

वर्धा से विवाह के लिए पत्र आने लगे। इस समय मै कोई साढे आठ वर्ष की थी। वर्धा वालो का कहना था कि उनके परिवार में यह एक ही विवाह है और इसके लिए जमनालालजी की विधवा मा का, घर मे अकेली होने के कारण, विशेष आग्रह था। पिताजी और माताजी मे भी चर्चा हुई। पिताजी सरल स्वभाव के थे और सबका मन रखते थे। उन्होने मा से कहा—"बाई तो छोटी है, पण काई करा, एक तो वर्धावाला को आग्रह है और सास्तर मे भी तो 'अष्टवर्षा भवेत् गौरी' लिख्यो है।"

पिताजी ने वर्धावालो की बात मान ली।

विवाह का निश्चय होने पर हम सब लोग वर्धा आ गए। घर के लोगो के सिवा नाई, ब्राह्मण, नौकर-चाकर आदि सब मिलाकर अन्दाजन पचास आदमी होगे। वर्धा मे जाजोदिया कुटुम्ब के श्री दत्तूरामजी रहते थे। दत्तूरामजी का बच्छराजजी के यहाँ आना-जाना था। हम लोगो की सारी व्यवस्था एक प्रकार से दत्तूरामजी ने ही की थी।

भारतीयो में विवाह के समय पीठी या हलदी लगाने की प्रथा है। विवाह के पहले नाइन पीठी लगाती है। शरीर पर बेसन, तेल, हलदी आदि का उबटन लगाने को पीठी कहते है। इससे शरीर मुलायम होता, मैल छूटता और कान्ति आती है। ऐसी पीठी कई बार लगाई जाती है।

वर की गोद भरने का भी रिवाज है। विवाह के पहले जमनालालजी की गोद भरी गई थी। इस दस्तूर के लिए वह अपने साथियो के साथ मडप मे आये थे। उनके हमारे यहाँ आने पर औरतो या बहू-बेटियो मे बात होने लगी—"बीद तो भोत सोवणो है, जाणे गुलाब को फूल।"

शायद मुझसे भी किसीने कहा। मेरी भी इच्छा उनको देखने की हो गई। उस समय किवाड एकदम कसे नही होते थे। कुछ ढीले होते थे। मुझे याद पडता है कि उसी समय मैंने किवाड मे से उनको एक नजर में देख लिया था। उनकी गोद भरी गई। उसमे फल, नकद आदि के अलावा पाँचो कपडे भी थे। कोट-टोपी की मखमल पर सलमे-सितारे का काम था। उस समय समाज मे मखमल तथा जरी के कपडो का रिवाज था। चाँदी के खिलौने भी थे।

विवाह के समय वींद हाथी पर बैठकर तोरण मारने आए थे। हौदे पर वर के साथ उनके पिता तथा दो भाई बैठे थे। लोगो ने कहा कि चारो जने भाई-से ही दीखते हैं। रात के लगन थे। मुझे फेरे के लिए नींद मे ही कपडे पहनाकर पाटे पर लाकर बैठा दिया गया था।

फेरे के समय कन्या को बिना धुला कोरा सफेद कपडा तथा कच्चे सूत की मोली से सीकर लहँगा तथा चादर ओढा दिया जाता था और उसपर सवा गज के कसूवल कपडे से घूघट निकाला जाता था। जेवर या जरी के कपडे आदि फेरे के वाद पहनाए जाते थे। फेरे के समय कन्या के कान मे एकाध माशा सोने की नली और बाएँ हाथ मे चार-छः माशा चाँदी की पतरी दोनो तरफ छेद करके कच्चे सूत से वाँध दी जाती थी। पाणिग्रहण-सस्कार कैसे हुआ, इससे मैं वेखवर ही रही। आठ-नौ वरस की उमर की मैं क्या जानती कि फेरे क्या होते हैं।

विवाह खूब ठाठ-वाट से हुआ। वर-पक्ष की ओर महफिल सजाई गई। नाचने-गाने वाली भगतणे भी वुलाई गई थी। वच्छराजजी के वश मे यह विवाह महत्वपूर्ण था। उन्होंने अपने पोते के विवाह में दिल खोलकर खर्च किया। आतिशवाजी भी खूब छोडी गई।

फेरे के वाद मुझे प्रथा के अनुसार सारे जेवर पहनाये गए। विवाह घूघट में ही हुआ था। यह आज से पचास वर्ष पहले की वात है। उस समय की अपनी स्थिति तथा आज की सामाजिक स्थिति पर विचार करती हूँ तो दो विरोधी चित्र मेरी आँखो के सामने खडे हो जाते हैं। आज जिन प्रथाओं को हम कुरीतियाँ कहते हैं, उस समय वे रिवाज अच्छे समझे जाते थे।

विवाह के बाद वधू के आने पर 'रतजगा' की प्रथा थी, जिसमे रात-भर देवी-देवताओ के गीत गाये जाते थे। वर-वधू से देवी-देवता की धोक दिलाई जाती थी। उसी समय वधू की मुँह-दिखाई होती थी। हम दोनो को एक कमरे मे बन्द कर दिया गया। स्त्रियाँ किवाडो की चीर मे से देखती रही। नेग के लिए पाच-सौ रुपए की थैली रख दी गई थी और जमनालालजी से कहा गया था कि मुँह देखकर रुपया दे देना। वह कमरे में चुपचाप बैठे रहे। उन्होने एक रुपया उसमे से बजाकर थैली में वापस डाल दिया। जब बाहर की स्त्रियो ने देखा कि दोनो बिलकुल चुपचाप बैठे हैं, तब दरवाजा खोल दिया। मै स्वय तो नासमझ थी ही, पर वे भी शरम की मूर्ति ही थे।

एक बात का अफसोस मुझे आज भी रह-रहकर होता है, वह यह कि पूज्य सद्दीबाईजी मेरे विवाह के दो साल पहले ही इस ससार से विदा हो चुकी थी। उनके आशीर्वाद से मेरी सगाई उनके पोते के साथ हुई थी और वह चाहती थी कि पोते की बहू का मुँह तो देख ले। पर मैं उनके पैर पकडकर आशीर्वाद नही ले सकी।

: ६ :

विवाह कैसे छूटे ?

विवाह के बाद मैं माता-पिता के साथ जावरा गई। पर जल्दी ही वर्धा से पत्र आने लगे कि बीनणी (बहू) को भेजो। बच्छराजजी के यहाँ गनगौर पूजी जाती थी। उनके यहाँ कोई लडकी नही थी, इसलिए गाँव की दस-पद्रह लर्डाकयो को बुलाकर पंद्रह रोज तक गणगौर पूजी जाती थी। चैत सुदी तीज के दिन गणगौर यानी शिव-पार्वती की मूर्त्तियो को सजाकर जलूस निकाला जाता है। वर्धा मे वडा घर होने से हमारे यहाँ से गणगौर निकाली जाती थी। विवाह के वाद पहले वर्ष गणगौर की पूजा वधू को करनी पडती है। जमनालाल-जी की माँ की यह स्वाभाविक ही इच्छा थी कि इसके लिए वहू को बुलाएँ। मेरे माता-पिता तो एकेश्वरवादी थे। वे विचार मे पड गए कि "आपा तो एक भगवान का उपासक हॉ, उठे तो वाई नै गौरणगौर्या पूजनी पडसी।" पर बच्छराजजी की इच्छा का खयाल कर पिताजी ने मुझे वर्धा भेज दिया। मेरे साथ एक नेवगण आई थी। उसके शरीर पर भी वहुत सारे गहने थे। फरक इतना ही था कि मैं सोने के गहने पहने थी और वह चाँदी के।

ससुराल मे मेरा यह पहला आगमन था। मुझपर माता-पिता के धार्मिक सस्कार की छाप थी। मैंने जब यहाँ देखा कि टोटी का पानी पिया जाता है, तब मुझे वहुत खेद हुआ। वहाँ तो टोटी के पानी का छीटा लगने मे स्नान करना पडता था और यहाँ उसे पीते थे। पानी भरने वाला जाट था। पहले तो मैं उसे कोई ब्राह्मण ही समझी, पर बाद में पता चला कि वह तो जाट है तो मुझपर तो मानो घडो पानी पड गया। यहाँ तो धर्म ही डूब गया। मैंने मन-ही-मन सोचा कि माँ के पास जाकर

पचगव्य लूँगी और फिर टोटी का पानी कभी नही पिऊँगी ।

यहाँ का खान-पान भी जाजोदियो-जैसा स्वादिष्ट नही था । खान-पान में तुअर की दाल तो मुझे भाती थी, बाकी खाते समय जावरा की याद आती रहती थी ।

जावरा मे तो मै खुली थी, आजाद थी, इधर-उधर खेलती-कूदती रहती थी, पर यहाँ तो घूघट मे बैठी रहती । मुझे ऐसा लगता था कि मै एक जेल मे छोड दी गई हूँ । पिताजी ने तो मुझे बच्छराजजी के आग्रह पर गणगौर पूजा के लिए पद्रह रोज के लिए भेजा था । पर फिर तारा लग जाने से ढाई महीने तक नही भेजा जा सकता, ऐसा बच्छराजजी ने पिताजी को लिख दिया । अब तो मुझे वर्धा मे पल-पल भारी लगने लगा । मै सोचने लगी—"हे भगवान, मेरा ब्याह कैसे छूटे ?" मै मन मार-कर रहने लगी । मन में रोना आता था, पर आँखो पर आँसू नही आने देती थी । अगर किसीको मालूम हो गया तो कैसे बताऊगी कि मै क्यो रोती हूँ । मै नौ-दस वर्ष की बच्ची क्या जानू कि विवाह कैसे छूटता है या नही छूटता ? मै तो यही प्रार्थना करती कि किसी तरह मेरा ब्याह छूट जाय । 'ब्याह कैसे छूटे' उस समय के ये शब्द भी कितने विकारहीन थे। और इसलिए मै सतोष कर लेती हूँ कि सरलता या विकार-हीनता में निकला हुआ कोई वचन विपरीत परिणाम नही लाता, जबकि आज मै समझती हूँ कि किसी समझदार भारतीय नारी के मुँह से ऐसे शब्द निकलना कितना .....

लेकिन इन्ही दिनो एक घटना हो गई । जमनालालजी की उमर कोई तेरह वर्ष की होगी, फिर भी उनकी माँ के मन मे लाड-प्यार और नेग-दस्तूर करने की इच्छा रहती ही थी। मारवाडी-समाज मे यह एक रिवाज था कि विवाह के बाद वर-वधू को एक स्थान पर सुलाया जाय। इसमे उमर का विशेप खयाल नही किया जाता था। जमनालालजी अपने दादा बच्छराजजी के साथ ही सोते थे । बुढापे मे प्यार विशेप रहता है । जमनालालजी गोद के लडके थे, सुन्दर थे, इसलिए उनपर बच्छराजजी का प्यार रहना स्वाभाविक था ।

एक दिन जमनालालजी की माताजी ने नौकर से कहकर हम दोनो

को एक कमरे मे सुलाने का विचार किया। मुझे उस कमरे मे सोने के लिए भेज दिया गया। मै बच्ची ही तो थी। जाते ही सो गई। मेरे पास नेवगण बैठी रही। जमनालालजी सदा की भाँति अपने दादा के साथ सोए थे। उनकी माँ मन-ही-मन अधीर और बेचैन हो रही थी। वह जमनालालजी को किसी तरह बुलाना चाहती थी। पर उनकी हिम्मत नही हो रही थी। अन्त मे उन्होने अपने नौकर से कहा—"अरे खेता, जमन ने बुला।" वे आए। उनके मेरे कमरे मे आते ही नेवगण बाहर निकल गई और बाहर से कुन्दा लगा दिया गया।

मै तो भर नीद मे थी। उन्होने शायद मेरे पैर मे चिकोटी काटी। यह बात तो उन्होने किसीके सिखाने से ही की होगी, क्योकि वह स्वय तो बहुत लजीले थे। मै जागी और चौक पडी। मैने जमनालालजी को विवाह से पहले किवाड की आड से ही एक बार देखा था। मै घबराई कि यह कौन बालकटी (लडकी) मेरे साथ सोई है—नेवगण मुझे दिखाई न दी। मैं भी चुप और वह भी चुप। मै उठी और जोर-जोर से किवाड खटखटाने लगी। आवाज बच्छराजजी तक पहुँची और उन्होने जमनालालजी को पास न देखकर समझ लिया कि हो-न-हो यह सब उनकी माँ ने करवाया होगा। वे गुस्से होकर गालियाँ बकने लगे। बोले—"छोरी नै दुःख देवा के ताई बुलाई है ?" डर के मारे सास ने किवाड खोल दिये और नेवगण भीतर आ गई। इसके बाद जितने दिनो तक मैं ससुराल रही, ऐसी कोई बात न होने पाई।

कुछ दिनो बाद होली आई। होली के दूसरे दिन को 'छारडी' कहते हैं। उस दिन रग खेला जाता है। नए वर-वधू को भी आपस मे रग खेलने के लिए कहा जाता है। यह एक मौज-शौक का दिन होता है। मेरी सासूजी हम दोनो का रग खेलना देखना चाहती थी। उन्होने रग के बरतन भराकर रख दिये। हम दोनो को बुलवाया। जमनालालजी के हाथ मे पिचकारी दी गई और मेरे हाथ में गिलास। हम दोनो आमने-सामने कोई आठ-दस गज की दूरी पर खडे थे। दोनो मे से कोई रग न उछालता था। दोनो चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह खडे रहे। सासूजी हम दोनो ने बार-बार कहती, पर हम तो जैसे चेतना-शून्य हो

गये थे। सासूजी जमनालालजी से कहती—"अरे, एक पिचकारी तो छोड दे।" और मुझसे कहती—"तू ही एक गिलास उछालकर शगुन करदे।" पर मेरी स्थिति तो ऐसी थी, मानो फाँसी के तख्ते पर लटके हुए आदमी से लड्डू खाने के लिए आग्रह करना। सासूजी की आज्ञा के बिना हम दोनो का वहाँ से हट सकना भी कठिन था और शरम इतनी थी कि कोई किसीपर रग उछालता न था।

: ७ :

सास की मृत्यु

ढाई महीने ससुराल रहकर भाई के साथ मै जावरा लौट आई। भाई से जाते समय ससुरालवालो ने जल्दी भेजने के लिए कह दिया था। इधर मैं जावरा पहुँची और उधर फिर पत्र आने शुरू हो गए कि बीनणी को लेने के लिए आदमी भेजते हैं। इससे घरभर मे चर्चा शुरू हो गई कि 'बाई ने छोडे तो कोनी, बाइ नै लेणै ताईं आदमी आ जासी। दादी सुसरा बूढा है, सो बोले है कि मै मर जाऊँ तो म्हारे हाथ कियाँ लागै। घर मे सासु बालविधवा एकेली है। घर मे देखण नै काई है ?' ऐसी चर्चा सुनकर मैं तो सुन्न रह जाती। मुझे कुछ भी सूझ न पडता था कि क्या बोलूँ। मेरी हालत वैसी ही थी, जैसे जेल से छूटे हुए उस कैदी की होती है, जिसके हाथ मे नया वारण्ट होता है। छूटने का आनन्द तो उसे होता है, पर वारण्ट देखकर जी धक्-धक् भी करने लगता है। मैंने सोचा कि जानकी-मगल और मोरध्वज की कथा सीख लेनी चाहिए, सासरे मे कौन सिखायगा। विष्णु-सहस्रनाम भी एक-एक श्लोक कागज पर लिखकर शुद्ध पाठ करने की कोशिश करने लगी। श्लोकवाले कागज के टुकडे को गोज्या (जेब) मे रखती। मन्दिर जाते समय रास्ते मे उसे देखती और फिर गोज्या मे रख लेती, यहातक कि पाखाने मे भी घोखती रहती। मेरे मन में यही डर बना रहता था कि कौन जाने कब ससुराल चला जाना पडेगा, इसलिए जितना हो सके सीख लूँ। माँ भी कहती कि 'टाबर बठै कुणस्यू बोलसी ?' टाका (सीना-पिरोना) तथा कलाबत्तू काटने आदि सीखने का भी मुझे बडा शौक था। एक दिन मैं घर से कपडो की कुछ कतरने पडो-सिन के यहाँ ले गई। उससे एक गुड़िया की अगी और कुरता सिलवाकर खुशी-खुशी घर आई। माँ देखकर बोली—"बाई, टाको तो मैं घणो ही

सिखा देस्यू , सीखसी तो।" मुझे कपडो पर, हाथ पर मेहदी से या दीवार पर मोर माडने का वडा चाव रहा है। अव भी जहा मोर के पख देखती हूँ, उन्हे वटोर लेती हूँ। यह काम करते समय भी मुँह से घोखना चलता ही रहता। रसोई के वारे में माँ कहती रहती—"रसोई भी लुगाई ने सीखणी तो चाये, पण एक तो छोटी है, दूसरा आपणे अठै विरामण (ब्राह्मण) पड़दै मे रसोई करै, छुआछूत चालै नही और बठैसी रसोई करणै ने रसोइया तो है।" दोनो जगह रसोइया होने से मुझे रसोई सीखने का मौका ही नही आया। इस काम में मै कच्ची ही रह गई। चूल्हा जलाने, वरतन मलने और झाड़ू लगाने से मुझे परहेज-सा ही रहा।

अन्त में ससुराल से मुझे लेने के वास्ते आ ही गए। मैं सोई हुई थी। माँ मेरे पास आकर सो गई और प्यार से हाथ फेरते हुए कहने लगी—"जानी, तने लेणेवाला तो आगा।" मैंने सुन तो लिया, पर न आँख खोली और न कुछ वोली मानो मै तो निर्जीव पत्थर की मूर्ति बन गई थी। मेरा जी भीतर-ही-भीतर घुटने लगा।

माँ मेरी विदाई की तैयारी करने लगी। सिर धुलाया गया माथा गूथा गया और मेंहदी लगाई गई। मारवाडियो में माथा गूँथने का रिवाज था। एकवार माथा गूँथ देने पर आठ-दस दिन तक उसे खोला नही जाता था। वालो मे मेण लगाकर मीढियाँ वनाई जाती और सोने का वोर वाँधा जाता था। पीछे तीन फुट की ऊन की आँटी रहती थी। दूसरी स्त्री की सहायता के विना माथा गूँथा नही जाता। माथा प्रायः नेवगणे ही गूँथती थी। धीरे-धीरे यह प्रथा कम होती जा रही है।

घर की स्त्रियाँ चर्चा करती—"राधा तो विचारी विधवा होगी। वा तो अठे ही पडी रेवै। वीनै कुण वुलावै।" ये शब्द मेरे मन मे ठस गए। वचपन मे माँ की ओर आकर्पण होता ही है। ससुराल मुझे जेल-जैसा लगता था। मै माँ के निकट रहना चाहती थी। मैंने देखा कि राधा विधवा होने से यही रहती है। मै भी विधवा होती तो माँ के पास रह सकती थी। पर विधवा होना मेरे हाथ में थोडा था ! उस समय माँ के पास रहने का आनन्द ही मै जानती थी। विधवापन किसको कहते हैं, इसे मै थोडे ही जानती थी ?

दुवारा ससुराल आने पर सासूजी मेरे वडे लाड-चाव करने लगी। मेरे लिए वह तरह-तरह के गहने वनवाती, बम्बई से मोती तथा कपड़े मँगवाती। गोटा-किनारी भी खरीदती। वर्धा से जो भी आदमी बम्बई जाता वह वच्छराजजी से मिलकर ही जाता, उसके साथ सामान मगाने की फेहरिस्त जाती। मा से मैंने थोडा-बहुत सीना-टोबना सीख लिया था, इससे सासूजी बहुत खुश रहती। दस बरस की बहू सीना-टोवना जाने, यह सासूजी के लिए खुशी की बात थी।

उसी समय वर्धा मे प्लेग फैल गया। वच्छराजजी सपरिवार अपने बगीचे मे रहने के लिए चले गए। आज जहाँ मगनवाडी है, वही उनका बगीचा था। वहाँ कई झोपडियाँ खडी की गई और गाँव के जान-पहचानवाले और सम्वन्धित लोगो को भी रहने के लिए बुला लिया गया। बगीचे मे जाने के तीसरे दिन ही सासूजी को प्लेग हो गया और वह चल बसी।

अब क्या किया जाय ? वच्छराजजी गाँव के मुखिया थे। दूरदर्शी और व्यावहारिक थे। जिन लोगो को उन्होने बगीचे मे रहने वुलाया था, उन्हे हटाना तो अच्छा नही लगा, इसलिए खुद वहाँ से हमको लेकर पुलगॉव चले गए। वहाँ उनकी दूकान थी।

मैं दस बरस की वच्ची ही थी! मेरा मन यहाँ क्या लगता! और, अब तो सासूजी भी चल वसी। रह-रहकर मुझे माँ की और ज्यादा याद आने लगी। इधर जो स्त्रियाँ वैठने—शोक प्रकट करने—आती, वे मुझसे कहती—"पल्लो लिया कर", "सासूजी-सासूजी कहकर रोजे।" मारवाडी समाज मे पल्ला लेने की प्रथा है। मौत के वाद दस-वारह दिन तक और वाद में भी जव कोई स्त्री-पुरुप 'वैठने' आते हैं, तव घर की स्त्रिया मरे हुए का नाम लेकर रोती हैं। न रोने पर टीका-टिप्पणी भी होती है। इन दिनो घर की औरतें गोटा-किनारी के तथा नये कपडे नही पहन सकतीं, वैठने आनेवाली स्त्रियाँ भी सादे वस्त्र पहनकर आती हैं। इस रोने की वात से मेरा मन और दुखी हो गया। परिवार की महिलाएँ वार-वार कहती कि 'पल्लो ले'। मेरे मन मे जो दुःख था, उसे मैं रोकर कैसे प्रकट करती ? मैं दस वरस की वच्ची क्या जानूं कि रिवाज का रोना क्या

होता है ! मैं तो यह सोचने लगी कि किसी तरह माँ के पास पहुँच जाऊँ तो सब दु ख दूर हो जाय ।

इधर मेरे पैर मे नारू (एक प्रकार का फोडा) निकल आया । तकलीफ वढने लगी । मेरे पीहरवाले चिन्ता में पड गए कि मेरा अकेली का वहाँ मन कैसे लगता होगा ? वर्धा मे मेरे पास दूसरी कौन है, जो मुझे धीरज दे, मुझपर प्रेम प्रकट करे ! वे मुझे बुलाना चाहते थे। मेरे भाई मुझे लिवाने आये । पर बच्छराजजी मुझे भेजना नही चाहते थे । उन्होंने कहा—"साहाजी, सब बात करणा, पर छोकरी नें लेजाणे की बात नही करणा ।" और दो-चार गालियाँ भी सुना दी । बोले—"मैं गोद क्यो लाया ? मैं मरूँगा, तब बेटा-बहू का हाथ लगना ही चाहिए।" बच्छराजजी के इस तरह के दो-टूक जवाब से भाई निराश हो गए। पहले तो बच्छराजजी ने मेरे भाई को खूब गालियाँ सुना दी, फिर राजी भी कर लिया। बोले—"साजी, मेरी गाली तो घी की नाली है।" पर भाई को चैन कहाँ ? वह तो यही सोच रहे थे कि बहन को कैसे ले जाऊँ। लेकिन बच्छराजजी के सामने उनकी एक न चली और वह लौट गए।

नारू के निकलने से मेरा पैर सूज गया। उसमें चटखे चलने लगे। बच्छराजजी बम्बई से डाक्टर बुलाना चाहते थे। वे भी बहुत चिन्तित थे। मेरी यह हालत हो गई थी कि नौकर गोदी मे उठाकर पाखाने के पास बिठा जाते थे। इस हालत मे भी मैं माँ के पास जाने को तडपती रहती। पीडा मे पीहर की याद और भी तीव्र हो उठती थी।

मै मन-ही-मन रोती रहती। रोटी भी नही भाती थी। पर अपना दुःख प्रकट करने की अकल भी मुझमे कहाँ थी ! जमनालालजी इतने कोमल थे कि अगर उनको मालूम होता कि मैं दु खी हूँ तो मुझे पीहर भेज भी देते। पर मैं क्या जानूँ कि उनको कैसे कहा जाय, और यह भी पता नही था कि उनको कहने से भी कुछ हो सकता है या नही ?

प्लेग खत्म होने जाने पर हम लोग वापस वर्धा आ गए और प्रेस मे रहने लगे। परिवार की एक महिला मेरे पास आकर तरह-तरह की बाते बनाने लगी। वह कहती—"घर मे सासूजी की मौत हुई है तो बारह महीने तक ब्राह्मणों को जिमाना चाहिए।" एक वर्ष पूरा होने पर उस महिला

ने उस ब्राह्मणी को कुछ कपडे दिलवा दिये। मै समझती थी कि ऐसा करना धर्म की दृष्टि से आवश्यक होता है। उस समय घर का सारा इन्तजाम मेरे छोटे होने के कारण बच्छराजजी ही करते थे। इसलिए मेरे पास तो मेरे ब्याह के समय के माँ के दिये हुए पहनने के कपडे ही थे। मैंने वे बता दिये और उन्हीमे से उसने एक रेशम और गोटे के घाघरे का बेस निकाला और एक सूती। रेशमी वेस घरके जोशीजी [1] को दिलवा दिया और सूती ब्राह्मणी को।

यह बात बच्छराजजी को मालूम हो गई। उन्होने उस महिला को खूब गालियाँ सुनाई और कहा कि औरते आ-आकर छोरी (बहू) को ठगकर ले जाती हैं। इसलिए पीछे का दरवाजा बन्द करवा दिया। उन्होने यहाँतक कहा कि उस औरत को मैं गाँव के बाहर निकाल दूँगा। बच्छराजजी को पता लग गया, यह मालूम होते ही उस महिला के होश-हवास उड गए और उसे अपने पति का भी डर लगने लगा। वह दौडती हुई मेरे पास आई और मुझे ही डाँटने लगी—"मैंने कब कहा था कि वेस जोशीजी को दे। तूने ही दिया।" मै तो एकदम सिटपिटा गई। उसने ये बाते अपने बचाव के लिए कही थी, पर नौकरानी ने झट कहा—"थेई तो कपडा दिराया और थे ही लडो हो, या टाबर के समझे?"

अब मैं अपना नित्य कर्म—जैसे पूजा-पाठ सहस्रनाम का पाठ आदि—करती और आराम से रहती। कुछ दिनो तक मैं नौकरानियो तथा हतकार के लिए आनेवाली लडकियो के साथ ताश भी खेलती रही। फिर भी इसमे मेरा मन नही लगता था। ताश खेलना बन्द कर दिया। मुझे तो सीने-टोवने मे ही आनन्द आता था। पूजा-पाठ में भी समय अच्छी तरह कट जाता था। सिलाई का सामान माँ भेज दिया करती थी। गाँव की स्त्रियाँ भी मेरे पास कुछ काम दे जाती थी। छावडी में यह सब सामान पडा रहता। इससे मेरा समय भी कट जाता और सिलाई मे भी सफाई आने लगी।

---

१. राजस्थानी समाज में हर कुटुम्ब के ब्राह्मण, नाई आदि आत्मीय जैसे होते हैं। इनमें से जो ब्राह्मण-कुटुम्ब हमारे घर का था उन्हें घर के लोग जोशीजी कहते थे।

आज जब मै विचार करती हूँ तो मुझे यही लगता है कि बच्छराजजी ने औरतो का आना-जाना बन्द करके मेरा भला ही किया था। जिसके पास सास नही होती उसकी कई सासे हो जाती हैं और नई बहू को सबका आदर करने मे बहुत-कुछ सहन करना पडता है।

: ८ :

'एक दिन मरना अवश्य है'

जमनालालजी पाँच वर्ष की उम्र मे गोद आये थे। उन्हे यहाँ दादीजी का बहुत प्यार मिला। वह वृद्धा थी और गोद लिया हुआ जवान बेटा शादी के बाद ही चला गया था, इसलिए जमनालालजी को उनका प्यार करना स्वाभाविक ही था। सद्दीबाईजी स्वय बहुत सरल स्वभाव की, और धार्मिक वृत्ति की थी। उनके यहाँ साधु-सन्तो की पगते सदा लगती रहती थी। जमनालालजी भी आनेवाले साधुओ से मनुष्य-जीवन की सार्थकता आदि के बारे मे प्रश्न पूंछते और सुनते रहते। दैवयोग की बात कि उनके ग्यारह वर्ष के होते-न-होते दादीजी का स्वर्गवास हो गया। इससे वह अनमने-से रहने लगे।

उनकी विधवा माँ (रामधनजी की पत्नी) भी उनसे बहुत प्यार करती थी। उनके लिए विवाह के तुरन्त बाद ही पति की मृत्यु हो जाने से और दादी के भी चल बसने से जमनालालजी ही प्रेम के अवलम्ब रह गये थे। उनका लाड़-चाव, खिलाना-पहनाना वह करती थी। पर दादी-जैसी प्रौढता इनमें कैसे आ सकती थी? आदमी ज्यो-ज्यो बडा होता है, त्यो-त्यो प्यार की गहराई बढती जाती है, इसलिए कहते हैं कि 'बालक-बूढे एक समान'। फिर भी विधवा माँ ने जमनालालजी का जी बहलाने मे कोई कमी नहीं रखी। दो वर्ष बाद हमारा विवाह हो गया। विवाह मे खूब लाड-प्यार किया गया। पर दुर्भाग्य से विवाह के दस महीने बाद ही इन माँ का भी देहान्त हो गया। इसमे भी जमनालालजी के मन पर बड़ा असर हुआ।

विवाह के अवसर पर जमनालालजी के जन्म के पिता कनीरामजी सपरिवार मारवाड से आये थे। उनके तीन पुत्र थे। पहले, माधवलालजी तो उनके साथ ही रहने और बच्छराजजी के पास काम सीखने वर्धा आये

थे। दूसरे जमनालालजी गोद आ चुके थे। तीसरे बद्रीप्रसादजी थे जो विवाह के समय उनके साथ आये थे। पर दैव की लीला को किसने जाना है! उन्हे मियादी बुखार हुआ और नौ दिन के बाद ही बद्रीप्रसादजी चल बसे। उनकी उम्र ग्यारह वर्ष की थी। विवाह के बाद वर्धा मे ही यह दुर्घटना हुई। इसने सबको दु ख के सागर मे डाल दिया। कनीरामजी के लिए तो यह असह्य वेदना की बात थी। एक बेटे का अभी विवाह हुआ, हलदी का रग भी नही छूटा और दूसरा बेटा चल बसा। अभी तो घरवालो के हौसले भी पूरे न हो पाये थे कि यह महान् सकट आ पडा। कनीरामजी के लिए वर्धा मे पानी पीना तक असह्य हो गया। बच्छराजजी ने बहुत समझाया कि अब यही रहो, इसीको अपना घर समझो, पर कनीरामजी कैसे मानते। वह स्वाभिमानी थे। आखिर कनीरामजी की मानसिक स्थिति को देखकर माधवजी को उनके साथ थोडे दिनो के लिए मारवाड भेजना पडा। कितनी उमग से रास्ते भर मगल गीत गाते हुए आये और लौटते समय का यह कैसा करुण दृश्य था!

बच्छराजजी भले ही तेज स्वभाव के रहे हो और यह भी ठीक है कि उनके मुँह से सदा गालियाँ 'घी के नालो' की तरह बहती थी, पर जमनालालजी को प्यार तो वह इतना करते थे कि रात को अधिकतर अपने साथ ही सुलाते। दादी और माँ के बाद तो घर मे सबकुछ बच्छराजजी ही थे। सारा भार उनपर ही था। मै तो बच्ची-जैसी थी। मेरा उतना परिचय भी नही बढा था। जब जमनालालजी सोलह-सत्रह वर्ष के रहे होगे तभी बच्छराजजी का भी स्वर्गवास हो गया था। अब परिवार मे हम दोनो रह गये। बडे भाई माधवलालजी कारोबार देखते थे। बच्छराजजी परिवार के आधार-स्तम्भ थे। अब ऐसा कौन था जो हमे प्यार करता, हमे अपनी बालसुलभ गलतियो से बचाता, हमारी सुख-सुविधाओ का खयाल रखता? लेकिन जमनालालजी ने अपने बडे भाई को निकट पाकर धीरज रखा।

माधवलालजी बच्छराजजी के हाथ के नीचे व्यवहारिक शिक्षा पा चुके थे। वही कारोबार चलाते थे। हट्टे-कट्टे स्वस्थ थे। पर किसे पता था कि अभी दु खो की सीमा आना बाकी है।

थोडे समय वाद ही माधवलालजी को भी वही मियादी बुखार आया और वह भी नौ दिन मे ही चलते बने। यह अचरज की वात थी कि आठ दिन तक वह भर बुखार मे भी स्नान करके रुई की खरीद के लिए जाते रहे और किसीको कुछ भी बताया तक नही। नवे दिन एकाएक सन्निपात हो गया। उस दिन जब उनसे पूछने गये तब भी उन्होने कहा, "मादगी भी मजा है, जिससे लोग सोये हुए की खबर लेते हैं।" इलाज के लिए वडी दौड-धूप की गई, पर उन्हे वचाया नही जा सका। इससे जमनालालजी के धैर्य का वाँध टूट गया और रह-रहकर उनकी आँखो के आगे मौत का दृश्य आने लगा। दादी का निर्मल प्यार, माँ का लाड, दादाजी का स्नेह और भाई की ममता की याद उन्हे सताने लगी। अब वह अपनेको आपे मे न रख सके। इस घटना का उनके दिल पर इतना असर हुआ कि उन्हे भी १०४ डिग्री वुखार चढ आया और वह बेहोश हो गये। सोचने लगे—अब पिताजी को मुँह कैसे दिखाऊँगा। हम तीन लडको में से अब उनका एक भी न रहा; उनके तीनो लडके वर्धा की भेंट चढ गये, दो चल बसे और ये भी पराए हो गये। इसी सोच में वह अस्वस्थ हो गये। उनका जन्मजात वैराग्य और भी तीव्र हो उठा और वह साधु बनने तथा गगा किनारे कुटिया बनाकर रहने की वात सोचने लगे।

इन घटनाओ ने उन्हे और सजग बना दिया। वह मौत को सदा सिर पर देखने लगे। कौन जाने मृत्यु कब आ जायगी? इसलिए उन्होने अपने जीवन में कई बार मृत्यु-पत्र बनाये और एक वाक्य तो सदा ही उनके मुख पर रहता था—"एक दिन मरना अवश्य है—अन्याय से डरो।" यह वाक्य छपाकर अपने कमरे में तथा अन्य जगहो पर भी टाँग रखा था।

: ९ :

डालूराम की सेवापरायणता

मेरे भाई दो बार मुझे लेने के लिए आये, लेकिन बच्छराजजी ने इन्हे खाली लौटा दिया। अब मेरी ओर से निराश हो गये और उन्होंने समझ लिया कि मुझे पीहर ले जाना कठिन है। उस समय दत्तूरामजी जाजोदिया के यहाँ डालूराम चौबे नौकरी करता था। मेरे विवाह के कामकाज मे उसका मेरे पीहरवालो से सम्बन्ध आया था। इसलिए मेरे पीहरवाले भी डालूराम को जानते थे। मेरे भाई ने सोचा कि यदि डालूराम बच्छराजजी के यहाँ नौकरी करने लगे तो बाई की खबर मिलती रहेगी और वह बाई की सार-सम्हाल भी करता रहेगा। उन्होंने डालूराम े कहा कि तुम बच्छराजजी के यहाँ नौकरी कर लो तो हमे बाई की चिन्ता कम रहेगी।

डालूराम ने कहा—"बच्छराजजी के यहाँ ? बाप रे बाप ! उनकी गालियाँ कौन खायगा ?"

भाई ने कहा—"वह जो गाली देगे हमपर लगेगी, पर तुम उनकी नौकरी बाई के वास्ते कर लो।"

मेरे भाई डालूराम को साथ लेकर बच्छराजजी के पास गये और बोले कि आप डालूराम को काम पर रख लीजिए।

बच्छराजजी ने कहा—"हाँ, वह खुशी से रह सकता है।"

भाई ने कहा—"पर इसका कहना है कि आपके मुँह से गालियाँ बहुत निकलती हैं।"

इसपर बच्छराजजी ने कहा—"साजी, मेरी गालियाँ तो घी की नाली हैं, मेरा स्वभाव हो गया है, क्या करूँ ?"

तब मेरे भाई ने डालूराम को समझाते हुए कहा—"भाई, जब यह खुद ही ऐसा कह रहे हैं, तब इनकी गालियो का खयाल नही करना चाहिए।"

इस तरह डालूराम हमारे यहाँ काम करने लगा।

पहले तो डालूराम गाँव के चलते-पुर्जो की टोली मे माना जाता था और उसी वातावरण मे रहता था, पर हमारे यहाँ आने के बाद उसमे जिम्मेदारी की भावना जगी। उसने सोचा कि जमनालालजी का क्या भरोसा, चाहे जब साधू बन सकते हैं। बाई की उम्र छोटी है और जावरा-वालो ने इसकी जवाबदारी मुझपर छोडी है, तो मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए। जावरावालो के सम्बन्ध के कारण डालूराम मेरे साथ धर्म-बहन का व्यवहार करने लगा। वह मेरा इतना ध्यान रखता कि मुझे किसी बात की तकलीफ न होने पावे। नीचे की सीढियो के पास से ही मेरे बारे मे वह नौकरानियो से पुछवाता रहता। मै अगर ऊपर गैलरी पर कभी खडी दीखती तो कहलवा देता कि बाई से अन्दर जाने को कहो। कोई देख लेगा तो क्या कहेगा। बहू-बेटियो को भीतर ही रहना चाहिए। मैं गहने जो पहनती, उनकी वह यादी (सूची) बना लेता। मै बच्ची ही जो थी। स्नानघर मे या कही भी कोई गहना छोड देती, इसीलिए डालू-राम इस मामले मे चौकस रहता। उसने हमारे यहाँ के बरतनो आदि सारी चीजो की भी फेहरिस्त बना ली थी।

वह हमारे घर का एक प्रकार से सुपरिन्टेण्डेण्ट हो गया था। मुझे तो ऐसा लगने लगा कि मै पूरी तरह जेल मे बन्द करदी गई हूँ और डालूराम जेलर की तरह मेरा ध्यान रखता है। पर वह जेल ऐसा था जिसमें कोई बन्धन नही था और वह जेलर ऐसा था जो अपने आपको सेवक समझता था। वह तो मुझे हर तरह सुख देना चाहता था, पर उसकी कडाई इतनी होती थी कि वह मुझे 'सास' जैसा ही लगता था।

डालूराम पढा-लिखा था। वह मुझे सती सीता-सी बनाना चाहता था। इसके लिए उसने मुझे 'पति-भक्ति' नामक एक पुस्तक भी पढने के लिए भिजवाई। उसने अपने आपको हमारे परिवार में समर्पित कर दिया था। वह मुझे इतनी लज्जावती के रूप में देखना चाहता था कि समाज में मेरी प्रतिष्ठा हो। उस समय समाज में परदा आदि की प्रतिष्ठा थी ही। मै मन्दिर जाती तो वह दूसरो को हटा देता, चौके में भोजन करने का समय होता तो दूसरो को आने से मना कर देता। मेरी छाया भी

कोई न देख पाये यह उसकी इच्छा रहती थी। मैं भी इन वातो में अपनी प्रतिष्ठा समझती थी। मैं जब कभी अपने ममिया ससुर विरदीचन्दजी पोद्दार के यहाँ जाती-आती तो वन्द घोड़ागाडी में ही जाती और उसके दरवाजे पर भी चादर डाल दी जाती थी। समाज में तो यह रिवाज नही था, परन्तु मेरे उम्र मे छोटी होने के कारण वह जैसा करता, वही चल जाता। वह अपने घर नही जाता और हमारे यहाॅ रहता था। उसने सचमुच हमारे यहाँ हनुमान वनकर कार्य किया।

जव मेरे वाल-वच्चे हुए, तव वह उनको खिलाता रहता। एक वार जमनालालजी ने सोचा कि डालूराम पढा-लिखा है, इसलिए इससे योग्य काम लिया जाय तो ठीक रहेगा। उसे रोकड का काम सौपा गया। पर डालूराम भी अपनी धुन का एक ही था। वचा हुआ रोकड का काम रात को दो-दो वजे तक पूरा किया करता और दिन मे वाल-वच्चो को ही अधिकतर सभालता रहता।

वह मुझे अपनी वहन मानता था। उसने एक दिन पण्डित से पूछा कि कोई अगर वहन के यहाँ नौकरी करे तो भोजन करना चाहिए कि नही? इसपर ब्राह्मण ने कहा कि नौकरी कर ली तो भोजन करने में हर्ज नही है। फिर भी वह हमारे ऊपर की चीजे न खाता और नीचे जो रसोड़ा चलता था, उसीमें भोजन करता।

सन् १९१७ मे देशभर मे इन्फ्लुएजा फैल गया था। हजारों आदमी इस वीमारी मे मरने लगे। हमारे यहाँ भी सव वीमार हो गए। डालूराम की खूव देखभाल की गई, पर टूटी को वूटी नही लगती। वर्षो तक उसने हमारे परिवार की निष्ठा और भक्ति के साथ सेवा की थी। अन्तिम समय उससे पूछा गया कि तुम्हारी जो इच्छा हो सो कह दो। उसने कहा—"गगा नाम की नौकरानी को नही छोडना, नही तो वच्चे कुएँ में गिर जायगे।" उसने यह वात इसलिए कही थी कि मन्दिर का कुआ नजदीक ही था और वच्चे वहाँ खेला करते थे तथा मेरे तेज स्वभाव के कारण वच्चे मेरे पास टिकते न थे।

उसके माता-पिता और पत्नी तो पहले ही चल वसे थे। दो भाई थे, उनके वारे में भी उससे पूछा गया। पर उसने कुछ नहीं कहा, केवल हाथ

हिला दिये। उसके दोनो भाइयो को बोर्डिंग हाउस मे पढने के लिए भरती कर रखा था। दोनो के विवाह भी जमनालालजी ने ही किये थे और उन्हे काम पर लगा दिया था।

: १० :

संस्कार तथा शिक्षा

धार्मिक संस्कार मुझे बचपन मे मा से मिले थे और ये सस्कार उम्र के साथ बढते गये। जो भी किताब मै पढती, उसकी सब बातो के पालन का प्रयत्न करती, क्योकि मै यही समझती थी कि किताबो में जो कुछ लिखा हुआ होता है वह सब भगवान का ही लिखा हुआ या वेद-वाक्य है। मै अधिकतर धार्मिक किताबे ही पढती थी। जब डालूराम ने 'पतिभक्ति' नामक पुस्तक मेरे पास भेजी थी तो मैने उसे इसी भावना से पढा था और उसमें लिखी बातो के अनुसार चलने की कोशिश भी करने लगी।

पहली बात, जिसका मुझपर असर हुआ, वह यह कि पति या बडो के बाद ही भोजन करना चाहिए। मैं ऐसा करने लगी। बच्छराजजी तथा जमनालालजी प्रात.काल कलेवे में बादाम का हलुआ और कुछ नमकीन खाकर काम में लग जाते और मेरे लिए भी ऊपर ये चीजे आ जाती। बच्छराजजी नौकरानी से पूछते भी रहते कि बीनणी ने कलेवा कर लिया क्या? मैं बिना कलेवा किये ही 'हाँ' कहला देती और पूजापाठ तथा सीने-पिरोने में ही लगी रहती। दो बजे भोजन करती। वे सुबह कलेवा कर लेते हैं तो मैं भी कलेवा कर सकती हूँ, यह समझना मेरे लिए कठिन था। जब बच्छराजजी तथा जमनालालजी भोजन कर चुकते तभी मैं भोजन करती थी। इसमें दो बज जाया करते थे। नियम-पालन का इतना खयाल रखती थी कि कभी कोई चीज खाने की इच्छा भी हो जाती तो भी मुह में डालने से बचती। पीहर मे तो मै दिनभर में कई बार खा-पी लेती थी। पर अब तो मेरा खाना-पीना पतिभक्ति की भावना के अनुसार होने लगा। दूसरे, मैं पति की जूठी थाली मे भोजन करने को पतिभक्ति

समझती थी । इसलिए मै जमनालालजी की थाली रखवा लेती और उसीमे भोजन करती ।

इस तरह अनियमित भोजन का मेरे शरीर पर असर होने लगा। मेरे पेट मे गाँठे होने लगी । टट्टी जाते समय बहुत कष्ट होता । शरम के कारण यह बात किसीसे कहने मे सकोच करती और यह सोचकर रह जाती कि इसमे दूसरा कोई क्या करेगा । परिणाम यह हुआ कि मुझे मस्से की बीमारी (बवासीर) हो गई जो बाद मे बढती ही गई ।

जमनालालजी के मामा बिरदीचन्दजी पोद्दार वेदान्ती थे । वह अपने बगीचे मे जाकर ध्यान आदि किया करते थे । जमनालालजी अपने बगीचे मे शिवजी की पूजा करते थे और रुद्राक्ष की माला गौ-मुखी मे डालकर फेरते । उनके कमरे मे योगियो के चित्र भी टँगे रहते थे ।

जब जमनालालजी से मेरा परिचय बढा तब मैंने उनसे कहा कि पूजा घर पर ही किया करे। उन्होने यह मान लिया और पूजा का सामान बगीचे से घर मँगवा लिया । वह स्नान करके पूजा मे बैठते और मैं उनकी धोती धोकर उनकी पूजा करती । उनकी धोती धोने की मैंने नौकरो को मनाई कर दी थी। मैने पढा था कि पति का पादोदक, जैसे वैष्णवो मे गुरु का लेते हैं, लेना चाहिए और सफेद फूल से पूजा करनी चाहिए । इसलिए मैने एक गमला ऊपर रख लिया था और उसमे से रोज एक फूल उतारकर चढाती और श्लोक का पाठ करते हुए चाँदी की कटोरी मे दाहिने पैर के अँगूठे को धोकर उस जल को पी जाती ।

जमनालालजी को ये दोनो क्रियाएँ—जूठी थाली में भोजन करना और अँगूठे को धोकर पीना—अच्छी नही लगती थी । जूठी थाली मे भोजन करना तो कुछ समय के बाद बन्द ही कर देना पडा । एक तो उनकी अरुचि थी, दूसरे जूठे थाल पर मक्खी आदि बैठती थी सो मुझे भी ठीक नही लगता था । पर पादोदक का लेना मेरे आग्रह के कारण चलता रहा । मेरे आग्रह के आगे उन्होने भी फिर कुछ कहना फिजूल समझा और यह क्रिया चलती रही । जब वह जेल आदि चले जाते तब मैं उनका पादोदक शीशी मे भरकर रख लेती और जब कभी उनसे मिलने जाती, चुपचाप पैर धोकर ले आती ।

एक बार हम लोग चित्रकूट गए थे। चित्रकूट की मिट्टी का कण-कण पवित्र है। वहाँ की मिट्टी मैं लाना चाहती थी। पर मिट्टी लाने मे मेरा उद्देश्य यह भी था कि जमनालालजी के पैरो की रज और भी पवित्र रहेगी। इसलिए जवतक हम वहाँ रहे तवतक मैंने एक काम किया कि जव भी वह बाहर से आते तब उनका दाहिना अँगूठा धोकर वहाँ की मिट्टी के पेडे-से बना लिया करती। आज भी ये पेडे मेरे पास रखे हैं। प्रतिदिन स्नान के बाद अब भी उसका एक कण मुँह मे रख लेती हूँ।

भादो की अमावस्या को स्त्रियाँ सती की पूजा करती हैं। मैंने सोचा कि मैं भी सती बन जाऊँ तो मेरी भी पूजा होगी। पर सती होऊँ कैसे ? अगर पति के पहले मर गई तो सती होने का मौका हाथ से निकल जायगा—ऐसे विचार मन मे आते रहते।

जब जमनालालजी से जान-पहचान बढने लगी, तब उनके मन में आया कि मेरी पढाई आगे वढे तो अच्छा हो। उनकी पढाई भी बचपन मे कम ही हो पाई थी। इसका कारण था उनके दादाजी का बहुत ज्यादा प्यार। उन्हे इसका अफसोस रहता था और अपनी पढाई की भी कोशिश करते रहते थे। एक तो व्यापार के कारण उन्हे फुरसत बहुत कम मिलती थी, दूसरे बचपन मे नियमित पढाई न होने से जमकर पढने की आदत नही थी। लेकिन वह एक पढे-लिखे आदमी को हमेशा मन्त्री के रूप में रखते थे, जो उन्हे पढाने का भी काम करता।

मेरे पास काम-काज भी कुछ न था। बाल-बच्चे भी बाद मे ही हुए थे। इसीलिए एक मास्टरनी रख दी गई। उन दिनो यहाँ मराठी की ही पढाई होती थी, इसलिए मराठी मास्टरनी का ही मिलना आसान था। वर्धा की बोल-चाल की भाषा भी मराठी ही थी। इसलिए यह भी दृष्टि रही कि मराठी का ज्ञान वढे तो अच्छा। पर मुझे 'इकडे-तिकडे' मे रस नही आया। कोशिश करने पर भी मेरी प्रगति मराठी मे अधिक न हो सकी। मास्टरनी साल-दो साल तक आती तो रही पर अधिक समय वात-चीत मे ही चला जाता।

इसके बाद एक पारसी बहन को मुझे पढाने के लिए रखा गया।

उसे मेरा सामान्य ज्ञान बढाने का काम सौपा गया। वह मुझे अखबार पढकर सुनाती। इससे नए-नए शब्द सुनने को मिलने लगे। मेरी इसमे रुचि बढने लगी। मुझे केवल सुनना पडता था, पढ़ने-लिखने की मेहनत तो करनी थी नही। जहाँ हम रहते थे, वहाँ चौगान (दालान) मे रोज व्याख्यान होते रहते थे। वही अब गाधीचौक कहलाता है। इस तरह मेरा सामान्य-ज्ञान धीरे-धीरे बढता गया।

उन दिनो मै परदे मे रहती थी, स्वभाव भी मेरा सकोची था, इसलिए सामाजिक और राजनीतिक बातो को मैं क्या जानती ? लेकिन अखबार की पढाई तथा सभाओ से मेरी जानकारी बढती गई। जैसे-जसे घर पर बडे-बडे लोगो का आना-जाना बढा, और मैं भी बाहर जाने लगी तब बहुत-सी बातो का ज्ञान मुझे हुआ। चर्चाओ तथा सभाओ से कई बाते जानने को मिलती। धार्मिक पठन-पाठन तो प्रायः होता ही रहता। लेकिन वाचन अधिक न हो सका। इसलिए किताबी ज्ञान की अपेक्षा सभाओ तथा चर्चाओ से ही मेरा ज्ञान बढा। जमनालालजी मुझे अपनी डाक पढने के लिए भी कहते रहते। लेकिन एकाध पत्र से अधिक पढने मे मेरा मन नही लगता था। बाल-बच्चे होने पर तो पढाई का सिलसिला कुछ समय के लिए टूट-सा गया।

यो सीखने की इच्छा तो आज भी वैसी ही है, पर सीखने की लगन का अभाव मुझमे बचपन से ही रहा। लगन तो तपस्या है। यह मुझसे नही हो सकी। यही कारण है कि जमनालालजी की तथा अपनी बहुतेरी कोशिशो के बाद भी मै आगे न पढ सकी। फिर भी जैसे वातावरण में मै रही, उससे मुझे काफी जानकारी मिली और मै उससे अपना काम चला ही लेती हूँ

: ११ :

बच्छराजजी का स्वर्गवास

सद्दीबाई धार्मिक वृत्ति की थी। उन्होने अपने जीवन मे धर्म-कार्यों मे दिल खोलकर खर्च किया और अन्तिम समय भी वह अपनी रकम से लक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर बनाने के लिए कहकर सिधारी। उनका एक लाख रुपया दुकान मे जमा था।

बच्छराजजी का ध्यान व्यापार की तरफ अधिक रहता था। इसलिए मन्दिर का काम शुरू करने की ओर उनका ध्यान नही गया। लेकिन जमनालालजी इस बात को नही भूले थे। एक तो दादीजी का उनपर अत्यन्त प्यार था, दूसरे वह स्वय धर्मभाववाले थे और ली हुई जिम्मेदारी को पूरी करने की तत्परता भी उनमे थी। इसलिए उन्होने मन्दिर का काम शुरू करने के लिए दादाजी से पूछा। उनकी मजूरी मिल गई और काम शुरू हो गया।

मन्दिर का काम हीरालालजी फतेहपुरिया (ओसवाल) की सलाह से होने लगा। काम की देखरेख मे सुविधा हो, इसलिए मन्दिर के पासवाले मकान में हम रहने लगे। जैसे-जैसे मन्दिर का काम बढने लगा, बच्छ-राजजी की दिलचस्पी भी इसमे बढने लगी।

मूर्तियो के लिए बम्बई के माधवबाग के मन्दिर का नमूना दिया गया, पर मूर्तियाँ उससे बडी ही आई। मूर्तियो की जरी की पोशाके बनाने के लिए बम्बई से कारीगर बुलाये गए। जेवर बनवाते समय बच्छ-राजजी ने कहा, "छोकरी से पूछो कि भगवान के लिए गहना घर से देना है या नया बनवाना है ?" बच्छराजजी मुझे 'छोकरी' ही कहा करते थे। मुझपर उन दिनो भक्ति का रग चढा हुआ था। मैने कहला दिया कि जो मूर्तियो के पहनने मे आ सके वह जेवर तो घर का ही चढा दिया

जाय तथा हाथ के जेवर मूर्ति के माप के बनवा लिये जाय। करीब बीस हजार के जेवर घर से दिये गए और बाकी नये बनवाये गये। प्रतिष्ठा के दस महीने पहले से ही कारीगर बैठाये गये थे। प्रतिष्ठा तक काम चलता रहा। मै भी रात के दस-दस बजे तक मूर्तियो के कपडे सीती रहती। हम तीनो को बस यही धुन लग गई थी कि मन्दिर बढिया बने, जेवर तथा पोशाके सुन्दर हो, और प्रतिष्ठा ठाट से हो।

सद्दीबाईजी के स्वर्गवास के कारण बच्छराजजी का स्वास्थ्य गिरता गया। वह पलंग पर पड़े-ही-पडे वही से काम-काज की बाते करते रहते। मूर्तियाँ उनके पलग के पास ही रखी हुई थी। वह कहने लगे कि मरने से पहले प्रतिष्ठा देख लू तो ठीक। उनपर भक्ति का रग चढने लगा था। सचमुच यह उनके जीवन का बहुत बडा परिवर्तन था, क्योकि उनकी सारी उम्र व्यापार मे ही बीती थी।

सद्दीबाईजी के जीते-जी, जिनका धर्म की ओर बिल्कुल ध्यान नही गया, वह अब धर्म में रग गये। यह सद्दीबाईजी का पुण्य-प्रताप ही समझना चाहिए। प्रतिष्ठा बहुत ठाट-बाट से हुई। बनारस के प० शिवकुमारजी कई पण्डितो के साथ आए थे।

सद्दीबाईजी ने मन्दिर के लिए एक लाख रुपया छोडा था। लेकिन काम शुरू होने पर हम सब उसमें इतने लीन हो गये कि खर्च का ध्यान ही न रहा और लगभग पौने दो लाख रुपया खर्च हुआ। मन्दिर का भविष्य मे खर्च अच्छी तरह चलता रहे, इसलिए मन्दिर के लिए एक ट्रस्ट बनाया गया और मन्दिर के नाम पर काफी जायदाद कर दी गई। वह ट्रस्ट अबतक चल रहा है।

बच्छराजजी को मसे की बीमारी थी। इस कारण उनका स्वास्थ्य ठीक न रहता था, दादीजी के स्वर्गवास के बाद तो और भी बिगड़ गया। मन्दिर की प्रतिष्ठा के बाद एक दिन उनको अचानक हिचकी आई। माधवजी दौडकर बालूरामजी चूडीवाला के पास गये और बोले—"भाया, दादाजी न हुचकी आई, चलो।" बालूजी समझ गये। उन्होंने दान-पुण्य के लिए अनाज, घी, शक्कर आदि सामान मगाया। बालूजी आये तबतक दादाजी चल बसे थे।

दादाजी के प्राण मन्दिर की सन्ध्या की आरती के समय निकले। मारवाडी-समाज मे सूर्यास्त के बाद दाह-सस्कार का रिवाज न होने से रात-भर हम लोग उनके शव के पास बैठे रहे। सबेरे ठाट-बाट से उनकी अरथी निकली। सडक की सफाई की गई पानी छिडका गया। अरथी पर पैसो की बखेर की गई। गरमी के दिन थे, अरथी उठाते समय वर्षा हो गई। वातावरण मे ठडक आ गई। दाह-संस्कार बगीचे में किया गया, जहाँ दादीजी-सद्दीबाईजी का भी सस्कार हुआ था। दोनो के स्मारक के रूप में छत्री बनी हुई है। छत्री के नीचे गुफा बनाई गई थी, जहाँ साधु-सन्यासी ध्यान आदि किया करते थे और उनके लिए दूध, भोजन आदि घर से भेजा जाता था। वह बगीचा 'सद्दीबाई पार्क' कहलाता है।

बच्छराजजी की मृत्यु के बाद गरीबो को खिलाना शुरू हुआ, जो बारहवी तक चलता रहा। बारहवे दिन ब्राह्मणो तथा जातिवालो को जिमाया गया। उस दिन बहुत लोग जीमनेवाले थे। ब्राह्मणो तथा जातिवालो के लिए तो टट्टे बँधवाकर छाया कर दी गई थी, पर गरीबो के लिए तो ऐसा करना असम्भव था। जेठ की गरमी में उनको तपना पडेगा तथा हरिद्वार फूल ले जाने के लिए स्टेशन तक जानेवालो को धूप मे नगे पैर जाने मे कष्ट होगा, ऐसे विचार मन मे आ ही रहे थे कि बादल छा गए। स्त्री-पुरुष भजन गाते हुए स्टेशन पर पहुँचे। अभ्यागतो ने भी बादल की छाया में आराम से भोजन किया। जो लोग फूल लेकर गए थे, वे गगाजल के आठ घडे भरकर लाये। उपयोग में लाते-लाते अन्त मे जमनालालजी के स्वर्गवास के समय एक घडा बच रहा था। उसी जल से उन्हे स्नान कराया गया। सचमुच यह बडे आश्चर्य की बात थी कि चालीस वर्ष के बाद भी इस पानी मे किसी प्रकार का विकार नही आया था, न कोई जन्तु ही पैदा हुआ था।

वर्धा की तरह ही मारवाड मे भी बारहवी होनी चाहिए, इसलिए वर्धा से बालूरामजी चूडीवाला को भेजा गया। वहाँ कनीरामजी ने तथा बालूरामजी ने ब्राह्मणो तथा जातिवालो को ठाट से जिमाया। ब्राह्मणो को दक्षिणा में एक-एक रुपया दिया गया। दस-दस कोस से कई ब्राह्मण बाल-बच्चो सहित आए। उस समय देश मे एक रुपये की

दक्षिणा बहुत बडी बात मानी जाती थी। उस समय कलदार रुपए को चेरासाही[1] कहते थे। दक्षिणा 'माथा दीठ' चुकती थी। इसलिए लोग साथ मे जानवर भी ले ग्राते थे।

उस जमाने मे इस तरह का भोज प्राय: सभी जगह होता था। इसके लिए तैयारिया भी खूब करनी पडती थी। बहुत-से पुरुष तो मिठाइयाँ लोटे मे और बहने घाघरो मे छिपाकर ले जाती थी। एक बहन के घाघरे का तो लड्डुग्रो के बोझ से .टॉका ही टूट गया। ४० लड्डू गिरे। जमनालालजी को जब यह बात मालूम हुई तो इसका उनके दिल पर बड़ा भारी ग्रसर हुग्रा ग्रौर उन्होने सोच लिया कि यह प्रथा रोकनी चाहिए, क्योकि दक्षिणा लेनेवालो मे दीनता ग्राती है ग्रौर देनेवालो मे ग्रहकार। खर्च करनेवाला तो लाखो रुपया खर्च कर सकता है, पर ये बेचारे लालच मे ग्रपनेको गिरा देते हैं। इसी कारण जब कनीरामजी (उनके जन्म-पिता) की मृत्यु हुई, तब उन्होने जीमन ग्रादि का कार्य-क्रम बन्द रखा, हालाकि इससे जमनालालजी की जननी बिरदीबाई को दुख हुग्रा। उन्होने कहा,

"थारा काकाजी घर का रुपया लगाकर, लोगो का कारज सुधारता हा, ग्राज वाको ही मोसर कोनी होवे जद दुख तो होवें ही।"

इसपर जमनालालजी ने कहा, "माँ, मैं काकाजी के नाम पर ऐसा काम करूंगा, जो उनकी कीर्ति को इससे भी ज्यादा बढायगा और उनकी आत्मा को सतोप देगा।"

जमनालालजी ने कनीरामजी के नाम पर सीकर मे हरिजनो के लिए एक पाठशाला खुलवा दी। यह 'कनीराम हरिजन पाठशाला' ग्राज भी ग्रपना कार्य कर रही है।

बच्छराजजी की मृत्यु के बाद उनके निमित्त भागवत की कथा कराने तथा बदरीनाथ की यात्रा करने का मैंने सकल्प किया था। मैं स्वय तो जा नही सकी,लेकिन बहुत बादमें बापूजीके पुराने साथी स्वामी ग्रानद जब बदरी-

---

[1] 'चेरासाही' ग्रर्थात् चेहराशाही। यानी ग्रंग्रेजी शासन में चेहरे-वाला रुपया निकला था, जो देशी राज्यों के रुपये से ग्रधिक कीमत का था।

नाथ जाने लगे तो मैंने उनसे कहा कि आप ठीक समझे तो मेरे लिए यह यात्रा कीजिए। उन्होंने अपनी सहज उदारता से यह स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार विनोबाजी की प्रेरणा से उनके शिष्य कु दर दिवाण ने लक्ष्मी-नारायण के मन्दिर मे भागवत कथा कही। बहुत बरसो बाद भी किसी प्रकार अपना सकल्प यो पूरा कर सकी, इससे मन मे सन्तोप हुआ।

वच्छराजजी के जाने से मानो जमनालालजी के सिर से छत्र उठ गया। पर बडे भाई माधवजी के कारण उनको कोई अडचन महसूस नही हुई। दादाजी का प्यार तो वह भुला ही कैसे सकते थे ? पर दैव की लीला तो कुछ और ही थी। एक दिन माधवजी भी चल बसे। यह जमनालालजी से न सहा गया। वह बे-सुध हो गए और पिताजी को तार देने तक की हिम्मत उनमे न रही। मानीराम नामक ब्राह्मण को देश भेजा। कनीरामजी पर तो माधवजी की मृत्यु से जैसे वज्रपात ही हो गया। वह पागलो की तरह जगलो मे भागते-फिरते थे। झाडो से सिर फोडते थे। जमनालालजी की मा और गाँव के लोग पीछे-पीछे रहते थे। लोग सम्हालते, पर उनकी वेदना बहुत अधिक थी। जमनालालजी उनके पास गए। वह चाहते थे कि माता-पिता साथ ही रहे, पर कनी-रामजी वर्धा आने को राजी न हुए।

कनीरामजी की इमारती कामो मे रुचि थी। जमनालालजी ने सीकर के रावराजा माधोसिहजी से जमीन लेकर एक मकान बनाने का काम उन्हे सौंप दिया। इसे आज 'कमरा' कहते हैं। वहाँ बगले को कमरा ही कहा जाता है। सीकर में माधवजी के नाम पर 'माधव दवा-खाना' खोल दिया। यह दवाखाना भी अबतक चल रहा है।

: १२ :

गहना छूटा, घूंघट हटा

मेरी उमर तेरह-चौदह बरस की रही होगी। एक दिन हमारे यहाँ एक मेहमान आये। उनकी कमर में सोने की तगडी थी। यह देखकर मैंने सोचा कि अपने यहाँ तगडियाँ पडी हुई हैं। जमनालालजी पहने तो अच्छा। मैंने उनसे कहा, "थे भी सोना की तागडी पेर्यां करो।" उन्होंने उत्तर दिया—"सोना तो भगवान का रूप है। उसे कमर के नीचे नही पहनना चाहिए।" मै चुप हो गई और मेरे सामने यही प्रश्न उपस्थित हो गया कि मैं क्या करूँ। वाद-विवाद करने-जैसी मेरी स्थिति नही थी। जो कुछ मुझसे कहा जाता, चुपचाप श्रद्धा से सुन लेती और मान लेती। जब जमनालालजी सोने को भगवान-रूप बताया तब मैं भी कमर के नीचे सोना कैसे पहनती? पर तगडी का मोह छोड़ना भी कहाँ आसान था! मैं सगाई के समय से तगड़ी पहनती आ रही थी और स्त्रियो के शृगार में तगडी का विशेष स्थान माना जाता था। पहनने-ओढने के मामले में मै उन दिनो बड़ी चौकस रहती थी। पर अन्त में मन को पक्का करके तगडी छोडना ही ठीक समझा और उसे निकाल दिया। आगे चलकर अग्रवाल-महासभा में जमनालालजी ने तगडी के बारे में एक भाषण दिया। तबसे बजाज-परिवार में तगड़ी बनवाने की किसी की हिम्मत ही नही हुई।

तगडी ही क्या, एक दिन तो ऐसा आया कि सारे गहनो का त्याग कर देना पडा। जब बापू ने बहनो से कहा कि जेवर मत पहनो, तब जमनालालजी ने मुझे एक पत्र लिखा कि बापू का आदेश है, गहने त्याग दो। यह बात वह रूबरू कहते तो शायद मैं उनसे बहस भी कर बैठती। पर उनकी चिट्ठी तो मेरे लिए वेद-वाक्य जैसी थी। चिट्ठी का एक-एक शब्द मेरे लिए भक्ति-भरा था। चिट्ठी मेरे सामने थी और मैं एक-एक गहना

उतारकर सामने धरती पर रखती जा रही थी। इस बार मुझसे कहा गया, "सोना कलि का रूप है। दूसरो मे ईर्ष्या पैदा करता है, खो जाने का और चोरी का डर रहता है, शरीर पर मैल जम जाता है। नाक-कान मे दुर्गन्ध आती है। इससे ब्याज का भी नुकसान होता है।" मुझपर इन सब बातो का बडा असर हुआ।

मारवाडी-समाज मे स्त्रियो मे पैर की चाँदी की कडी खोली नही जाती थी। गरीब-से-गरीब के पैर में कडी तो रहती ही थी। पर जब कोई गहना पहनना ही नही था, तो फिर झूठे मोह को भी त्यागा। कड़ी निकालने पर लोगो को अचरज हुआ और कई बहने मुझे बिना कड़ी पहने देखने को भी आई।

वर्धा मे अग्रवाल-महासभा का अधिवेशन होने वाला था। अधिवेशन की सारी तैयारियाँ हो गई थी। पडाल बन गया था। निमत्रण-पत्र भेज दिये गए थे। लेकिन उसी समय देश भर मे इन्फ्लुएजा की बीमारी फैल गई। लोग तडातड मरने लगे। इसलिए अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। फिर भी कुछ लोग निमन्त्रण पर आ ही गए।

जमनालालजी ने अपना जो भाषण तैयार किया था उसमे परदा-प्रथा के विरोध में कुछ लिखा था। वह जानते थे कि मै तथा मेरी देवरानी आदि घू घट काढती हैं। जमनालालजी जो कुछ कहते थे, शुरुआत घर से करते थे। इसलिए उनकी हमपर नजर जाना स्वाभाविक था।

हमारी स्थिति बडी विचित्र थी। घूघट का सस्कार एक-दो दिन या एक-दो पीढियो का थोडे ही था। वह एकाएक छूटे कैसे? घूघट की प्रथा उस समय और बहुत जगह तो कल तक भी थी। राजस्थानी समाज में घूघट प्रतिष्ठा, सभ्यता और कुलीनता का चिह्न माना जाता था।

श्रीकृष्णदासजी जाजू को जमनालालजी अपना बडा भाई मानते थे। उन्होने जाजूजी से कहा, "आपको घर की औरतो से बात करनी चाहिए और उनमे सस्कार डालने चाहिए। वे निचली श्रेणी यानी नौकर-चाकरो से ही बातचीत करती हैं। इससे उनमे ऊचे विचार कैसे आयगे? आप जैसे लोगो को सकोच छोडकर उनके सकोच को दूर करना चाहिए।" पर जाजूजी तो जाजूजी ही थे। उनसे कोई बोले तो वे बोले, अन्यथा चुप।

आखिर एक दिन जमनालालजी ने अपने पिता कनीरामजी को तैयार किया और हमसे कहा, "आपणे घर मे घूंघट छोड़नो है, सो पेली काकाजी से ही शुरूआत करनी है। नीचे चालो, काकाजी नै तैयार करके आयो हूँ।" मैंने अपनी देवरानी (गगाबिसन बजाज की पत्नी) से कहा, "बीनणी, सुसराजी के पास चालणो है।" उसने कहा, "जेठाणीजी आगै तो थानै ही चालणो पडसी।" बडा सकट था। हम कैसे उनके पास जाती? हम तो यह बात सुनकर ही पसीना-पसीना हो गईं। खैर, किसी तरह हम दोनो उनके पास नीचे गई और कुछ प्रणाम किया, कुछ नही किया कि भाग छूटी। उन्होने हमको आशीर्वाद दिया, "सुखी रहो बेटा।" वहभी पसीने से तर हो गए। हमारे घर मे यह प्राचीनता के अन्त और नवीनता के उदय का सन्धिकाल था। एक बार पहाड की चोटी पर पहुँच जाना सरल होता, समुद्र को लाँघ जाना भी सरल होता, पर उस समय हमारे घर मे ससुर के पास बिना घूघट के बोलने के लिए जाना बहुत बड़ी बात थी!

इसके बाद माथे पर बोर लगाना छूटा। उसके छूटने से घूघट भी छूटने लगा और घाघरे भी लहँगो मे बदलने लगे।

उस समय घाघरे चालीस से लगाकर पचास गज तक के होते थे और उनमे तीन सौ से लगाकर चार सौ तक कलियाँ होती थी। चार सौ कलियो का घाघरा तो मै भी पहन चुकी हूँ। ऐसे बडे घाघरे कई दिनो तक धुलते भी नही थे।

घूंघट रखने मे मैं लज्जावती का भाव देखती थी। समाज में घूंघट की ही प्रतिष्ठा थी। लेकिन मैं सुन्दर न थी, इसलिए भी चाहती थी कि मुँह ढका रहे तो ठीक। पर जब मालूम हुआ कि घूँघट छोड़ने में ही प्रतिष्ठा है, तब मैंने हिम्मत की। लेकिन यह हिम्मत आने में बहुत कठिनाई हुई। अहमदाबाद-काग्रेस के समय भी कुछ घूँघट था। जब साबरमती आश्रम मे रहने गए तब वह पूरी तरह छूटा।

मेरा घूँघट छूट गया तो मुझे दूसरी बहनो का घूंघट खुलवाने की धुन लग गई। कई बहनो को मै सभाओ में मच पर घूँघट खुलवाकर खीच लाई। जहाँ-जहाँ मै गई, मेरा यही काम हो गया। जो बहनें हिम्मत

करके मच पर घूँघट खोल देती थी, उनमे से कुछ तो उसे निभाती थी, कुछ को समाज तथा परिवार के डर के मारे फिर घूँघट मे रहना पडता था।

आज से बाईस बरस पहले कलकत्ते में मारवाडी-महिला-सम्मेलन हुआ था। वहाँ वालो ने मुझे उसकी अध्यक्षा बनाया। उस अवसर पर बापूजी ने बडा सुन्दर सन्देश बहनो के लिए घूँघट-प्रथा के बारे मे दिया था—

वर्धा, २५-१०-३३

प्रिय भगिनि,

आप बहनो से परदा तुडवाने के लिए कलकत्ता जा रही हैं, इसलिए धन्यवाद। परदा वहम नही है, उसमें मुझे पाप की बू आती है। परदा किससे रखे? क्या पुरुष-मात्र विषयासक्त रहते है? क्या स्त्री अपनी पवित्रता बगैर परदा नही रख सकती है? पवित्रता मानसिक बात है, सभी पुरुषो मे सहज होनी चाहिए। यदि इस बुद्धि-प्रधान युग मे स्त्री धर्म की रक्षा करना चाहती है तो उसे दरिद्रनारायण की सेवा करनी होगी, शिक्षण लेना होगा। दरिद्रनारायण की सेवा करने का अर्थ है खादी प्रचार, कातना इत्यादि। हरिजन-सेवा का अर्थ है अस्पृश्यता-रूपी कलक धोना। ये दो बडे भगवान के कार्य है, और विद्या पाने का कार्य परदा रखने के साथ कभी नही चल सकता है।

परदा रखकर सीता रामजी के साथ जगलो मे भटकी होगी? सीता से बडी पवित्र स्त्री जगत् मे कभी हुई है? बहनो से कहो—परदा तोडो, धर्म रखो।

आपका—

मोहनदास गाधी

अभी तीन-चार बरस पहले जब मै विनोबाजी के साथ राजस्थान के दौरे पर गई थी तब भी बीकानेर-जैसे राजस्थानियो के गढ मे मैंने सभा-मच पर कुछ बहनो का घूँघट खुलवा दिये।

मै मानती हूँ कि परदा छोडना साहस की बात है, उससे दिल तथा दिमाग खुल जाता है। काम करने की हिम्मत बढती है। लेकिन

परदा छोडने का मतलब अगर स्वच्छन्दता या उच्छृंखलता हो तो उसे ठीक कैसे कहा जा सकता है ? मुझे ऐसा लगता है कि पहले की बहनो मे जो लाज-शरम और बडो की मर्यादा का भान था वह अपनाने जैसी चीज है। सुधार हमको ऊँचा उठावे तभी उसकी सार्थकता है।

: १३ :

खादी का प्रवेश

जमनालालजी तो स्वदेशी कपडा पहनते थे, पर मेरे साथ सभी तरह का चलता था। नागपुर-काग्रेस के समय जब गाधीजी वर्धा आये तब मैने मोटी साडियाँ मगाई। मोटी साडी ही पहनकर मै काग्रेस मे गई। मैने सोचा कि मोटे कपडे को ही खादी कहते होगे। पर जब महादेव-भाई ने कहा कि यह तो मिल का कपडा है, खादी नही, तब खादी और मिल के कपडे की बात मेरी समझ मे आई।

काग्रेस से लौटने पर मैने एक आदमी के साथ कुछ सूत कामठी भिजवाया और खादी बुनवाकर मगवाई।

कामठी से जो खादी का थान बुनकर आया वह पनहे मे छोटा था और मोटा भी था। पर उसे देखकर जो खुशी हुई, उसका वर्णन करना कठिन है। खादी तो आ गई, पर छोटे पनहे की होने से पहनी कैसे जाय? बीच मे जोड लगाया गया और हलदी मे रगकर पहनी।

खादी की यह एक ही साडी थी। रात को पुरानी साडी पहनकर सो जाती और सुबह नहाकर खादी की साडी पहन लेती। तीन-तीन दिन तक यह साडी धुल नही पाती थी। अब दूसरी साडी की चिन्ता हुई। हम तीन-चार बहने अर्जुनलालजी सेठी के पास गई और उनसे कहकर अहमदाबाद से खादी का एक थान मगवाया। यह थान तो कामठी के थान से भी मोटा था। इस थान को भी हलदी मे रग डाला अब मेरे पास दूसरी साडी हो गई, जिससे रात को पुरानी साडी बदलना बन्द हो गया।

गरमी के दिन थे। रात को इस साडी को पहनकर सोती तो नीद न आती। बेचैनी-सी रहती। ऐसा लगता कि टाट पर सो रही हूँ। पर मन मे यह भी भावना उठती रही कि सीताजी-जैसी राजकुमारी ने वल्कल

धारण किया था, यह तो खादी है। इसके पहनने से न तो चमड़ी ही छिली, न खून ही निकला। इसलिए तो अच्छी ही है। कई दिनों तक इसी तरह की भावनाए मन मे उठती रही।

जो कपड़ा बच गया था, उसके बच्चो के कपड़े सिलवा दिये। वर्षा की गरमी एक तो पहले ही तेज, ऊपर से ये मोटे कपडे! पसीने से बच्चों के अलाइयाँ उभर आई। कोरी खादी पहनने से बच्चो की कोमल चमडी छिल गई। छाती मे घाव-से हो गए। धोबी के यहाँ धुला लेने पर शायद यह कष्ट होता, कपड़ा मुलायम हो जाता, पर धोबी के यहाँ धुलाना जचा नही, क्योकि एक तो खादी के कपडे कम थे, दूसरे धोबी से धुलाने मे जल्दी फटने का डर था। पहली साडी मैने ढाई साल तक पहनी और बाद मे उसकी चादरे बनवा ली।

कई वर्षो बाद जब मैने खादी अपनी पहनने की बात दूसरी बहनो से कही तो कुछ ने मुझसे कहा, "आपके लिए क्या है, ज्यादा पैसा खर्च करके आप तो आन्ध्र की महँगी खादी भी पहन सकती हैं। हम इतनी महँगी खादी कैसे खरीदे ?" तब मैंने कहा कि मै भी तुम्हारी तरह मोटी खादी ही पहनूगी।

कुछ बहनो ने खादी पहनना मजूर किया और मगवा देने को कहा। उनके लिए खादी मगवाकर हलदी मे रगकर उनके घर भेजने लगी। इससे हमारे यहाँ बहनो का आना-जाना कम होने लगा। वे आपस में चर्चा करती—"सेठानीजी तो विधवा-जैसे कपडे पहनने की बात करती हैं। वहाँ कौन जाय ? गहने मत पहनो, काग्रेस को पैसा दो और विधवा जैसे कपड़े पहनो, यह कौन करे बाबा ?"

जब खादी पहनना शुरू किया तब हमारे यहाँ घूघट था। खादी मोटी होने से घूघट में बडी कठिनाई होती थी। बापू से पूछा, "और सब अडचनें तो निभ जायगी, पर घूंघट काढने पर दीखेगा कैसे ?"

इसपर बापू ने कहा, खोजे जातिकी औरतों की तरह आखो की जगह जाली लगवा लो।" बापू की यह बात विनोद-भरी ही थी। बड़ी हँसी आई। बापू की इस बात मे विशेषता दिखाई पडती है। उन्होने बात का जवाब दिया, घूंघट हटा देने को नही कहा। वह घूघट के पक्ष में नही थे, पर सामनेवाले के दिल को दुखाकर कोई काम नही करते थे।

बाद मे हम अहमदाबाद-काग्रेस मे गए। वहाँ खादी-प्रदर्शनी हुई थी। खादी की दूकाने देखी। मुझे ऐसा लगा, मानो भूखे को रोटी या निर्धन को धन मिल गया। धडाधड खादी खरीदने लगी। पैसे का तो कोई प्रश्न था ही नही। मै तो खादी पर ऐसे टूटी, मानो आगे मिलेगी ही नही। मन भर कर खूब खादी खरीदी और एक गट्ठा बिस्तर की तरह बँधवा लिया। उन दिनो हमारे साथ सामान ढेर-सा होता था। जहाँ भी काग्रेस मे जाते, वहाँ चौका साथ चलता था और उसकी व्यवस्था के लिए सामान भी काफी ले जाना पडता था। नौकर-चाकर भी रहते थे। ऐसी धूमधाम रहती, मानो शादी ही हो। एक तो काग्रेस की भीड, फिर हमारे पास बहुत अधिक सामान का होना। इसलिए किसी चीज़ का छूट जाना सम्भव था। दैवयोग से खादी का वह गट्ठा ही छूट गया। नौकरो ने बहुत खोज-बीन की, पर गट्ठे का पता लगा ही नही। मै तो एकदम सन्न रह गई। खादी खो जाने की बात कहने की हिम्मत भी नही होती थी और कहे बिना रहा भी नही जा सकता था। अन्त मे हिम्मत कर जमनालालजी से कहा ही। सुनकर उन्होने कहा, "जो ज्यादा लोभ करते हैं, उनपर ऐसी ही बीतनी चाहिए। अच्छा ही हुआ। जो ले गया, वह भी खादी पहनेगा। खादी का ही प्रचार हुआ।"

: १४ :

चरखे की धुन

खादी और मोटे कपड़े का असली फर्क महादेवभाई ने समझाया और मुझे खादी की लगन लग गई, पर चरखा कातने को तो खुद बापू ने कहा। हम लोग बम्बई गये हुए थे। नरोत्तम मोरारजी के यहाँ पहले-पहल बापू के दर्शन हुए। वह चरखा कात रहे थे। मैंने उनसे पूछा, "सूत कातना क्या अच्छा है?" उन्होने कहा, "सूत कातना बहुत अच्छा है।" उन्होंने यह बात इस ढग से कही कि वह मेरे मन में जम गई। वर्धा आकर सासूजी (जमनालालजी की जन्ममाता) से कहा कि मुझे कातना सिखादो, गाधीजी ने कहा है। उन्होने दो-तीन दिन मे सिखा देने को कहा। मैंने एक चरखा मँगवाया, जो सात रुपए मे बना था। सात दिन में मैं सूत कातना सीख गई।

कातना सीखने पर मन मे होने लगा कि दूसरो को भी सिखाऊँ। धीरे-धीरे घर पर साठ चरखे इकट्ठे कर लिये और कताई का वर्ग ही शुरू कर दिया। वर्ग मे लडके, लडकियाँ, सभी आते थे। समय की कोई पाबन्दी तो थी ही नहीं। जब भी जो आ जाता, सब काम छोड़कर उसे सिखाने बैठ जाती। उत्साह की सीमा न थी। पर व्यवस्था के बारे मे मैं ढीली ही रही और यही कारण है कि मैं किसी का समय न बाँध सकी, न यह कह सकी कि चरखा या सामान ठीक तरह से रखा जाय। कोई पोनी को चरखे पर लगी छोड जाता, किसीका कचरा योंही पडा रहता, किसीकी माल टूट जाती तो किसीका तकुआ टेढा हो जाता। इन सब कामो में ऐसी जुट गई कि दूसरा कोई काम ही न सूझता था। भोजन में भी रात के आठ-नौ बज जाते। खाते-पीते भी कोई आ जाता तो थाली छोडकर दौड़ पड़ती।

पहले-पहल सूत की कुकडियाँ निकालकर बापू के पास भेजी। देखकर उन्होंने लिखा कि सूत को लपेटकर आटी बनाकर भेजना चाहिए। तब वैसा करने लगी।

सूत के ढेर लग गये। कुछ सूत कामठी बुनने के लिए भेजा, पर बाकी का सूत योही पडा रहा। यह सूत बाद मे विनोबाजी के पास भेज दिया।

सूत टूटता भी बहुत था। उसे जमा करती रहती। उससे तकिए और मसनद भरवाए गये। कताई का काम घर पर ही नही चलता था, दूसरो के यहाँ जा-जाकर भी चरखे सुधारती और चलवाती। इस तरह ज्यादा-से-ज्यादा चरखे का प्रचार हो, यही बात मन मे जम गई थी। लोग चरखा-तकली सीखने मे उत्साह तो दिखाते, पर खादी का शास्त्र तैयार न होने से अच्छी तरह सूत कातकर कपडा बुनवाने में कठिनाई भी थी। इसलिए सूत कातने पर भी खादी न मिल सकने से लोगो की रुचि नही बढी। धीरे-धीरे लोगो का उत्साह कम होने लगा। जो लोग समझ-बूझकर कातने लगे थे वे तो कठिनाइयो मे से रास्ता निकालकर सूत का उपयोग करने लगे। वे अपने सूत की खादी बुनवा लेते और उनका कातना चलता रहा, पर जिन्होने आन्दोलन के उत्साह मे कातना शुरू किया था वे लोग धीरे-धीरे कम होने लगे। जिन्होने कातना कायम रखा, वे अब भी कात रहे हैं। आज भी जब कोई मुझे कातना सिखाने या चरखा सुधारने के लिए कहता है तो मेरा उत्साह जाग उठता है।

कताई के काम मे मदता रहने मे पूनी की भी अडचन रही है। अच्छी साफ पूनी के बिना सूत भी अच्छा नही निकलता, बार-बार तार टूटता है। इससे कातनेवाला ऊब जाता है। इसका मुझे अनुभव हुआ। जबसे मैं बजाजवाडी की खेती की ओर ध्यान देने लगी तबसे मै इसका भी ध्यान रखने लगी कि पूनी के लिए अच्छी किस्म की कपास बोई जाय। कपास मै स्वय बच्चो तथा नौकरो से चुनवाती हूँ। इस तरह की चुनवाई में काफी समय लग जाता है। कपास चुनने के बाद हाथ से उसकी रुई निकालती हूँ और पूनियाँ बनवाती हूँ। इन पूनियो से मै खुद कातती हूँ, घरवालो को देती हूँ और नियमित कातनेवालो को भी

देती हूँ।

मेरी इच्छा यही रहती कि इतनी मेहनत से तैयार की गई रुई का अच्छा उपयोग हो। इसलिए पिछले दो-तीन साल तक रुई मेरे पास रखी रही। मेरे देवर ने कई बार कहा कि घर पर रुई क्यो रखती हो, जीन मे भेज दो यहाँ तो चूहे वगैरा खाते हैं। खराब करते हैं। पर मैंने वहाँ भेजी नही। किसी सस्था को देने मे मुझे अच्छा लगता है। इस वर्ष मैंने अपनी तीन साल की कपास गोपुरीवालो को दे दी।

इस साल मैंने २५ सेर पूनी बनाई। कपास चुनने और पूनी बनाने के काम मे मेरा चार-पाँच महीने का समय लग गया। ये पूनियाँ बहुत महँगी दिखाई दी, पर हम सब लोग यह काम फुरसत के समय करते रहते हैं, इसलिए समय का भी उपयोग हो जाता है और अपने हाथ के काम मे आनन्द भी आता है। मुझे तो ऐसे काम मे प्रार्थना से भी अधिक आनन्द आता है।

गाधीजी के एक शब्द ने जो धुन लगा दी थी, वह अबतक बराबर चल रही है।

: १५ :

विदेशी कपड़ों की होली

जब कॉग्रेस के सभासद बनाने की बात सामने आई तव मै भी उसमे जुट पडी। वहनो को घर-घर जाकर सदस्य वनना शुरू कर दिया। मेरे इस काम से बहनो मे जरा घबराहट हुई। जो मुझे पहले आदरपूर्वक बुलाती थी और जो जान-पहचानवाली थी वे भी अव चाहने लगी कि मै उनके यहाँ न जाऊँ तो ठीक। दरवाजे वन्द कर लेती और कहलवा देती कि घर पर नही हैं। कुछ वहने साफ-साफ भी कह देती या कहलवा देती कि सेठानीजी आप हमारे यहाँ मत आना। वात केवल चन्दा देने की नही थी, औरतो के नाम लिखाने और अगूठा आदि कराने की भी थी। इसलिए कठिनाई तो थी ही। सवसे अधिक सदस्य हरिजन मुहल्लो मे बने। वे हमे प्रेम से वुलाते, आदर करते और पूरा मुहल्ला सदस्य वन जाता। ये लोग पैसे की थैलिया भर कर देते थे। पहले के सस्कारो के कारण हरिजनो के मुहल्लो मे जाने मे झिझक तो होती थी, पर काम की धुन मे हम वहाँ भी पहुँच ही जाती। धीरे-धीरे विचारो मे परिवर्तन हुआ, पर हरिजनो के साथ मेल-मिलाप की वात आचार मे आने मे अव भी कठिनाई का अनुभव करती हूँ। सस्थाओ मे हरिजनो के साथ उठने-वैठने, खाने पीने मे संकोच नही होता, पर घर जाकर स्वच्छता के सस्कारो के कारण ऐसा करने मे कठिनाई मालूम होती है। उन दिनो हरिजन तथा गरीबो मे कॉग्रेसके प्रति ज्यादा प्रेम था और सामान्य जनता में उत्साह था।

कॉग्रेस के सदस्य वनाने के वाद काग्रेस के काम और प्रचार की शुरुआत हुई। मैं हर शनिवार को एक सभा करती और उसमें काग्रेस की वाते समझाती। इसी समय विदेशी कपडो की होली की वात सामने आई। जमनालालजी ने मुझसे कहा, "गाधीजी का कहना है कि विलायती कपड़ा

राक्षस के रूप मे अपने देश मे घुस पडा है । इस पाप को हिन्दुस्तान मे से निकालना है । अपने घर मे भी एक टुकडा न रहे ।" गाँधीजी की बात का असर उनपर हुआ और उनकी बात का मुझपर । अब यह काम कैसे करूँ ? घर मे, दूकान मे, मन्दिर मे, सब जगह विलायती कपडे थे । सबकी सफाई कैसे की जाय ? जमनालालजी से सलाह की। उन्होने कहा, "ऐसा भी विचार चल रहा है कि नये कपडे शायद बाहर भेजे जाय ।" इसलिये मैंने नये कपडे एक तरफ जमा किये और पहनने के एक तरफ । होली का समय नजदीक आते ही कपडो पर से जरी और गोटा-किनारी फाड-फाडकर अलग निकाली गई । मन्दिर की पोशाकें भी बाहर निकाली गईं । जहा-जहाँ विलायती कपडा दीख पडा, निकाल दिया । घरके कपडे निकाले, दुकान से वे कपडे निकाले जो विवाह-शादियो के अवसर पर वर के लिए खास तौर पर तैयार होते हैं। चपरासियो के कपडे निकाले और गण-गौर के कपडे भी निकाले । बच्चो नें अपनी गुडियो के कपडे भी लाकर दे दिये। फर्नीचर पर लगे हुए कपडे फाड-फाडकर इकट्ठे किये गए, यहाँतक कि जमनालालजी के विवाह की पगडी, कसू बी बागा आदि जो शकुन के कपडे अलग बचे थे, वे भी निकाले गये । इन मांगलिक वस्त्रो को होली में होमते समय मन मे झिझक तो हुई, पर बाद मे मन को पक्का कर लिया और सोच लिया कि इन कपडो के जलाने से उमर थोडे ही कम होती है । ये कपडे घर में रक्खे कैसे जा सकते थे ? पाप को घर मे कोई थोडे ही रखता है ? विवाह के समय वर पर जो छत्र लगाया जाता है, उसे कैसे जलाया जाय ! जब हम स्वराज्य लेने चले हैं, तब छत्र जलाना तो ठीक नही । छत्र जलाना मुझे भी नही जचा । मैंने उसे मगनवाडी के कुए में डलवा दिया ।

सब कपडों को इकट्ठा करके और सजाकर जुलूस निकाला गया । गाँव के लोगो ने भी अपने-अपने कपडे उसमे डाले । लोगो ने ज्यादातर तो टोप ही डाले । टोप के बारे में उपयोगिता की जगह उसके विलायती रूप का ही भाव अधिक था । कपडो में जरी के और रेशमी कपडों को देखकर लोगों को बडा दर्द हुआ और कहने लगे कि इन कीमती कपडो को जलाने मे क्या फायदा होगा ? हमें ही दे दो । लेकिन

विलायती कपडा तो हिन्दुस्तान का पाप है। पाप कैसे बाँटा जा सकता है? पाप तो जलाने की ही चीज होती है। अन्त मे सब कपडो की होली की गई। होली मे जरी के भी बहुत सारे कपडे थे। इनमे मन्दिर की पोशाके और घर के कपडे भी थे। जरी अलग से निकल जाय, इसलिए गाधी-चौक में दोनो चबूतरो पर दो होलियाँ जलाई गई। हमे तो चाँदी का खयाल ही नही रहा, पर कनीरामजी दादाजी को इसका खयाल आ गया। उन्होने रात भर पहरा दिया और उसमे से करीब ढाई सेर चाँदी निकाली गई।

मुख्य होली के बाद सात दिन तक छोटे-बडे कपडे निकलते रहे और होलियाँ होती रही। होली की हवा बच्चो तक मे फैल गई। मेरी बच्ची ओम् उस समय डेढ-दो वर्ष की थी। वह भी अपने शरीर के वस्त्रो को 'या तो खादी कोनी, या तो खादी कोनी' (यह खादी नही है) कहकर फाडती रहती थी।

: १६ :

झण्डा-सत्याग्रह

१८ मार्च १९२३ की बात है। जबलपुर मे कुछ स्वयसेवक राष्ट्रीय झण्डा फहराते हुए छावनी की ओर बढ रहे थे। महात्माजी के कारावास-दिवस पर यह जलूस निकला था। पुलिस ने उसे उधर जाने से रोक दिया।

राष्ट्रीय सप्ताह मे जलियावाला बाग के हत्याकाण्ड की याद मे जब नागपुर मे जलूस निकला और वह सिविल लाइन मे जाने लगा तब वहाँ स्वयसेवको को पीटा गया। पकडकर मुकदमा चलाया गया और दो-दो महीने की सजा दी गई।

इस घटना पर विचार करने के लिए वर्धा के सत्याग्रह-आश्रम मे प्रान्तीय काग्रेस-कमेटी की सभा हुई। आश्रम तब आज के बजाजवाडी के स्थान पर था, जिसे पहले घास का बँगला कहते थे। सत्याग्रह करने का निश्चय हुआ। सत्याग्रही भेजकर सत्याग्रह को जोरो से चलाने का भार जमनालालजी, बाबासाहब देशमुख तथा भगवानदीनजी ने लिया। १८ मई को सत्याग्रह नागपुर से शुरू हुआ। जमनालालजी ने प्रतिदिन कम-से-कम दस आदमी तैयार करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। उस समय स्वयसेवक तैयार करना बडा कठिन था। अगर पुरुष और लडके तैयार हो जाते तो स्त्रियाँ और माताएँ रोकती। इतनी कठिनाइयाँ होते हुए भी जमनालालजी ने काफी स्वयसेवक तैयार किये। पर थोड़े ही दिनो में जमनालालजी स्वय गिरफ्तार हो गए और उन्हे १८ महीने की सजा तथा तीन हजार रुपए का जुरमाना हुआ।

उनकी यह पहली गिरफ्तारी थी। इससे वर्धा-भर मे सन्नाटा छा

गया। उस समय तक जेल के बारे में लोगो मे यही मान्यता थी कि वहाँ तो चोर, डाकू, और खूनी अपराधी ही जाते हैं और जेल मे भयानक कष्ट दिये जाते हैं। जेल जानेवाला समाज की नजरो मे गिर जाता था। देशभक्ति मे भी लोग जेल जा सकते हैं, इसकी कल्पना जनता को उस समय कहाँ थी ? इसलिए जमनालालजी के जेल जाने की बात से घर के नौकरो-चाकरो तथा गाव के लोगो मे हाहाकार मच गया।

जुरमाना न देने के कारण हमारी मोटर और घोडागाडी जब्त कर ली गई। पर उनके लिए सारे मध्य-प्रदेश में कोई बोली बोलनेवाला न मिला। अन्त मे मोटर को सौराष्ट्र मे ले गए। सौराष्ट्र तब काठियावाड कहलाता था और वहाँ बहुत छोटे-छोटे राज्य थे। किसी राज्य के अंग्रेज अधिकार को वह मोटर कुछ सौ मे बेची गई। जमनालालजी की गिरफ्तारी के बाद सत्याग्रह का काम सरदार वल्लभभाई पटेल ने सम्हाला। चारो ओर से जेल जाने के लिए लोग आने लगे। कुछ स्त्रियाँ भी सत्याग्रह के लिए पहुँची। यह सत्याग्रह बडा सफल रहा। सार्वजनिक रूप से किया गया यह पहला सत्याग्रह कहा जा सकता है।

अन्त में सत्याग्रह की विजय हुई और गोकुल-अष्टमी के दिन सबके साथ जमनालालजी जेल से छूटे। गाँव-भर मे आनन्द की लहर दौड गई। लोग सडको पर उत्साह से इधर-उधर घूमने लगे और कहने लगे—"कृष्ण जन्मला, आणि सेठजी सुटले।"

वर्धा मे जमनालालजी के स्वागत की तैयारियाँ होने लगी। सारा शहर सजाया गया। लोगोमे अपूर्व उत्साह था। वह दोपहर को वर्धा आए। स्टेशन पर हजारो लोग उनके स्वागत के लिए गये। उन्हे देखकर लोगो के हृदय भर आये। उनका जलूस निकाला गया और माताओ और बहनो ने अबीर-गुलाल लगाया, कुकुम लगाया, घी-शक्कर मुँह में दी।

घरो के सामने लोगो ने अपने-अपने पास जो चीज थी उसीके तोरण लगाए। बरतनवालो ने बरतनो के, कपडेवालो ने कपडो के, किरानेवालो ने किराने की चीजो के और मालिनो ने हरी मिर्च, शाक-सब्जी के तोरण लगाए। अपूर्व सजावट थी। मालाओ और फूलो का तो कोई ठिकाना ही न था। ऐसा अपूर्व स्वागत देखकर आँखे तृप्त हुई जा रही थी।

यद्यपि जमनालालजी को 'ए' श्रेणी मे रखा गया था, तथापि उन्होंने सबके साथ 'सी' श्रेणी का खाना खाया था। उनके जीवन मे यह पहला ही अवसर था, जब उन्होंने बिना घी-दूध के केवल ज्वार की रोटी खाई और इतना कष्ट उठाया। इसका शरीर पर ऐसा परिणाम हुआ कि लोगो से देखा नही गया। चरबी सूख गई थी। कोमल और सुन्दर चेहरे पर लाली के बदले कालिमा छा गई थी। दाढी बढ गई थी और शरीर सूखकर काँटा हो गया था। उन्होंने जब घर के कपडे पहने तो ऐसा लगा मानो किसी के माँगे कपडे पहने हो।

उनके मित्रो ने कहा कि अगर यह मालूम होता कि दो महीने में छूट आयँगे तो हम भी साथ-साथ जाते। इसपर वह हँसकर बोले कि यह कैसे कहा जाता कि दो महीने मे छूट जायँगे। तैयारी तो लम्बी ही करनी चाहिए।

जब जमनालालजी छूटकर आए तब उनके साथ वे १५०० साथी भी आए, जो जेल से छूटे थे। भोजन की व्यवस्था के लिए पहले ही तार आ गया था, सो भोजन शाम को तैयार था। उन दिनो घर मे बगीचे के बहुत-से कद्दू आए हुए रखे थे। शामको कद्दू का साग बना। दूसरे दिन भी कद्दू का ही साग बनवाया और तीसरे दिन भी जब उसीका साग बना तो जमनालालजी को बहुत दुःख हुआ। वह बोले, "तीन दिन से एक ही तरह का साग बनता है। क्या गाँव में दूसरा साग नही मिलता? यह क्या बात है? जेल मे तो एक तरह का साग मिलता ही था।" मैंने कहा, "जी, घर मे खेती का साग आया हुआ था, इसलिए वही बनवा लिया।" तब वह बोले, "ये लोग क्या रोज-रोज अपने घर आने वाले हैं।" यह बात उन्होंने इतने दर्द के साथ कही कि मुझे भी छू गई और मुझे भी दुःख हुआ, लेकिन अब हो क्या सकता था!

: १७ :

बड़ों की वेदना

मै जव घूघट निकालती थी तव एकदम राजपूतनियो की तरह और जव छोडा तव ऐसा कि लोगो मे जाकर व्याख्यान भी देने लगी । यह वात घर के वडो को और वूढी औरतो को अखरने लगी । जमनालालजी की माताजी कहने लगी—"पडदो कर्यो तो इश्यो कर्यो के कोई नख भी देख नही सके, और छोड्यो तो इश्यो छोड्यो के मोटयारा की सभा में व्याख्यान छाटे लागी !" मैने हँसकर जवाव दिया—"थे तो व्याया जद से जाओगा जठ ताई अयाकाई रेवोगा और म्हारा तो सात जनम एकई जनम मे पूरा हो जासी ।"

मेरे ससुरजी कनीरामजी को भी मेरे घूघट खोलकर कॉंग्रेस के काम मे पडने से कुछ दर्द-सा होता था । वह मुझसे वचने लगे । मै निकलती तो खुद ही मुँह फेर लेते । मेरे प्रति तो उन्हे अन्त तक सहानुभूति ही रही । वह मानते थे कि मै जो कुछ कर रही हूँ वह जमनालालजी के कहने से ही । कनीरामजी का अपने वेटे पर भी ऐसा स्नेह था कि वह उन्हे भी कुछ कहते नही थे । पर उनको गुस्सा था गाधीजी पर । उनका खयाल था कि घर में यह जो कुछ हो रहा है, उसकी जड गाधीजी हैं । उन्हे गाधीजी की खादी तो अच्छी लगती थी । कहते थे—"खादी तो देश का जीवन है ।" खुद खादी पहनते थे । मेरी सास ने तो ढेरो सूत कातकर कपडे वनाए थे । पर उन्हे गाधीजीकी दूसरी वाते अच्छी नही लगती थी । मेरा गहना उतार देना मेरी सास को अच्छा नही लगा था । वह कहती,"या टावर तो सगला गेणा खोल दिया और म्हे पेरा, चोखो कोनी लागे ।" इस तरह स्वाभाविक रीति से गहना कुटुम्ब में कम होता गया ।

ससुरजी देवली जीन मे रहते थे । मैं एक वार देवली में व्याख्यान

देने गई और मैंने व्याख्यान मे कहा कि तमाखू-बीड़ी पीना अच्छा नही। जब ससुरजी ने यह बात सुनी तो कहा—"बीदणी तो लोगो ने तमाखू पीणे से बरजे है तो मै किया पीऊ?" बस उसी दिन से उन्होंने तमाखू पीना छोड दिया।

केवल कुटुम्बियो को ही नही, घर के जोशी तथा नौकरो को भी दर्द होता था। यो घर के जोशीजी एक प्रकार से कुटुम्ब के ही माने जाते थे। वह खादी तो सेठजी के साथ शुरू से ही पहनते थे। हमारे कुटुम्ब के सिवा दान-दक्षिणा उन्होंने कभी और किसीसे नही ली। उनको जब मालूम हुआ कि घूघट छोडकर मै बाहर काग्रेस के काम से घूमने लगी हूँ तो वह मेरे सामने आने से घबराने लगे। जिधर से मै निकलती, उधर छिप जाते कि कही मै बोल न लू। उन्होंने कहला दिया कि मेरे सामने सेठानी जी न आवे और न बात करे, नही तो मै या तो कुएँ मे गिर जाऊगा या वर्धा ही छोड दूगा। जोशीजी परम्परा-प्रिय थे और घूघट मे ही वह प्रतिष्ठा देखते थे। मैंने भी अबतक उनसे बात नही की। उनको मैं भी टाल ही देती हूँ।

जोशीजी मन्दिर मे कोठार का काम देखते थे, लेकिन जब मदिर मे हरिजनो का प्रवेश हुआ तब उन्होंने बडे दुख के साथ मन्दिर को छोड दिया और करीब पच्चीस साल तक मन्दिर मे पैर भी नही रखा। खादी तो नही छोडी, लेकिन गाधीजी की भरपेट बुराई करते रहे। गांधीजी के स्वर्गवास के बाद गाली आदि देने मे कमी हो गई और खुशी की बात है कि अभी-अभी जमनालालजी की ग्यारहवी श्राद्ध-तिथिके दिन से जोशी-जी मन्दिर में भी आने लगे। अब वह कहते हैं, "मुझे सेठजी की प्रेरणा ही मन्दिर में ले आई।" जमनालालजी के लिए गाधीजी की निन्दा बरदाश्त से बाहर थी। फिर भी वह इन जोशीजी तथा इनके परिवार को तो अत-तक निभाते ही रहे और अब भी निभाया जा रहा है, क्योंकि इन जोशी-जी ने कभी कोई कमाई का काम नही किया। हर आदमी मे सरलता होती है, पर सस्कारो और रूढियो के कारण वह कभी-कभी ढक जाया करती है। समय और परिस्थिति की अनुकूलता से ही विकास होता है। मुझे उस दिन जोशीजी के मन्दिर जाने की बात से बडी खुशी हुई।

इसी तरह हमारे यहाँ छोटूजी नाम का रसोइया था। १४ साल की उम्र से हमारे यहाँ काम करता था। सारी उम्र हमारे ही यहाँ बिता दी। वह भी घर का-सा ही था। घर का इतना खयाल रखता था कि कहता, "बच्छराजजी बोत दोरो कमाया है, सेठजी लुटाय रया है। सेठजी ने काई समझ है, या गाधी टोपीवाला वेने विगाड देसी।" मुझे कोठार तक मे घुसने न देता। कहता, "अठे गरमी है, थे ऊपर चालो।" पीछे कहता, "थे वामणिया आई, ठगने ले जासी।" उसे मेरे तथा बच्चो के खाने-पीने का बहुत खयाल रहता था। पर वह दूसरो को भी ऐसे खिलाता जैसे वे घर पर ही खा रहे हो। भले ही सौ आदमी आ जायँ, पर अकेला भोजन करा देता। कभी 'ना' न कहता। वह कहा करता—"सेठजी को घर भर्यो पड्यो है, अठे नही क्यू ?" थोड़ी-थोडी सब चीज वह घर मे सम्हालकर रखता। कभी आदमी ज्यादा आ जाते और साग कम पड़ जाता और जीमनेवाला साग माग लेता तो वह 'ना' न कहकर दाल या कढी परोस देता। जीमनेवाला कहता कि दाल नही चाहिए, साग चाहिए, तो फिर दाल या कढी डाल देता। अन्त मे मॉगनेवाला थक जाता, पर वह 'ना' तो कहता ही नही था।

जब मैं प्रसूती के समय चौके मे नही जीमती थी तब वह ऊपर मेरे कमरे मे थाली देने आता। नर्स या डाक्टरनी कहती, "महाराज, अन्दर ले जाओ।" पर मेरे सोते रहते वह अन्दर कैसे आए ? और थाली वह दूसरे को देना नही चाहता था, क्योकि उसे डर रहता था कि कही नजर न लग जाय। इसलिए आटा ढँकने का कपड़ा लाता, उससे अपनी आँखे ढक लेता और थाली रखकर चला जाता। मेरी तरफ देखता भी नही था।

: १८ :

मेरी ननद और उनके बच्चे

मेरे तीन ननदे थी। तीनो ही मुझसे छोटी थी। एक जो दातारामगढ ब्याही थी, विवाह के बाद एक बच्चा होने पर चल वसी। वह वच्चा भी न रहा। वाकी की दो ननदो मे से एक केशरबाई और दूसरी गुलावबाई थी। गुलावबाई का विवाह लोसल के श्री डेडाराजजी खेतान से हुआ था। उनके कोई बाल-बच्चा नही हुआ। केशरबाई की शादी करीब १२ वर्ष की उम्र मे जोरावरमलजी पोद्दार फतेहपुरवालो के साथ हुई। वे लम्बे, सुडौल, सुन्दर और भले स्वभाव के थे। अपनी विधवा चाची की गोद गये थे। फतेहपुर मे ही चाची का पीहर था। चाची का नाम भूरी-बाई था। भूरीवाई के पीहरवाले भी धनी थे और भूरीवाई के पास भी धन था। वे शक्की और तेज स्वभाव की थी। उन्हे सदा यही शक रहता कि गोद का लडका कही उनके असर के वाहर न हो जाय! इसलिए वे जोरावरमलजी को किसीसे ज्यादा हिलने-मिलने या वात न करने देती। वे किसी के साथ प्रेम से रहे, यह भी उन्हे न सुहाता। विवाह के वाद लडका अपनी पत्नी के कहे मे न हो जाय, इसलिए वह पहले ही से अपनी वहू की वूराई करने लगी। जोरावरमलजी को केशरवाई से वात भी न करने देती। कहती, "यह तो गावडे की है। इसमें कुछ भी अक्ल नही है, मूर्ख है।" केशरवाई से वहुत काम करवाती, उन्हे कष्ट भी देती। इस तरह चार-पाँच वर्ष निकल गये। केशरवाई कुछ भोली थी। उनका सारा वच-पन काशीवास मे ही वीता था।

जमनालालजी की अपने कुटुम्वियो को हमेशा सुखी वनाने की इच्छा रहती। केशरवाई के कष्ट की वजह से उनके माता-पिता को भी क्लेश बना रहता। उसको हलका करने के लिए वे हमेशा ही प्रयत्न किया करते।

केशरबाई पर होने वाले अन्याय से घर के सारे लोग दुखी थे। यही नही था। भूरीबाई ने जोरावरमलजी का दूसरा व्याह करने का निश्चय कर लिया। जब यह बात मालूम हुई तो जमनालालजी ने सीकर के रावराजाजी को तार देकर विवाह को रुकवा दिया और जोरावरमलजी का केशरबाई से मेल-मिलाप कराने के लिए देश गये। सीकर मे रहकर इन्होने अनेक प्रयत्न किये, लेकिन कोई सफलता न मिली, क्योकि भूरीबाई ने उनकी बात जोरावरमलजी से होने ही न दी। हताश होकर जमनालालजी सीकर से कुछ पचो को लेकर फतेहपुर गये। दो महीने तक सब तरह से कोशिश की, मिन्नते की, पर भूरीबाई टस-से-मस न हुई। जोरावरमलजी का घर से बाहर निकलना कतई बन्द कर दिया गया। यह बहाना बताती रही कि जोरावर 'मधुरा' (विषम ज्वर) से बीमार है और यह डर बताकर कि कही किसी को 'छोत' न पड जाय, किसीको घर मे भी नही आने देती।

राजवाले गाव के लोग, यहाँतक कि जोरावरमलजी के जन्म के माता-पिता, बडे सज्जन थे और जमनालालजी के पक्ष मे थे, लेकिन थे लाचार। करते भी क्या ? एक तो भूरीबाई तेज स्वभाव की थी और फिर रही विधवा ! वे बुरी-बुरी गालियाँ देती रहती। सभी चाहते थे कि समझा-बुझाकर कोई रास्ता निकल आवे तो अच्छा। जब कोई भी प्रयत्न सफल होता दिखाई न दिया तो राजवालो ने एक युक्ति रची। भूरीबाई पीहरवालो के यहाँ आती-जाती थी। एक रात को पचास राजपूतो को लेकर जमनालालजी गये, साथ में हमारी नौकरानी को भी लेते गये। उसने दरवाजे के पास जाकर 'भूरीबाई-भूरीबाई' करके आवाज लगाई। भूरीबाई ने यह समझकर कि उनके पीहर से कोई ब्राह्मणी आई है, जोरावरमलजी को दरवाजा खोलने को कहा। जोरावरमलजी ने दरवाजा खोलकर ज्योही एक पैर आगे को रक्खा कि जमनालालजी ने उनका हाथ पकडकर बाहर खीच लिया और राजपूत उन्हे घेरकर अपने डेरे पर ले जाने लगे। कुछ गडबडी की आहट सुनकर भूरीबाई बाहर आई और जब उन्होने देखा कि जोरावरमलजी को ले जा रहे हैं तब बडे जोरो से चिल्लाने लगी, "बेटा तू कहाँ जावे है ?" और पीछे हो ली। जोरावरमलजी अपनी माँ को ढाढस बँधाने के लिए बोले, "माँ, तू आगे मत ना

आव। म्हार सागे म्हारो सालो है।" जोरावरमलजी बडे सकोची और शर्मीले थे, पर भूरीवाई कैसे मानती ? वह रोती-चिल्लाती और बीच-बीच मे गालियाँ देती पीछे-पीछे आने लगी। गालियो से उत्तेजित होकर कुछ राजपूतो ने उन्हे डाँटा। पर जमनालालजी ने बीच मे पडकर स्थिति सभाली। ये लोग अपने डेरे—हीरालाल रामगोपाल के नोरे मे आ गये। जोरावरमलजी को जमनालालजीने अपने चौवारे(कमरे)मे ही साथ सुलाया। नीचे पहरा था ही। काफी देरतक भूरीवाई चिल्लाती रही, लेकिन उसका कुछ असर न हुआ। फिर वह थाने मे गई, पर वहाँ भी उनकी कोई सुनवाई नही हुई तो दुबारा आकर जब वह रोने लगी तो जमनालालजी को दया आ गई। उन्होने पूछा कि वे क्या चाहती हैं। भूरीवाई बोली, "मुझे मेरे बेटे का मुँह दिखा दो।" यह पूछने पर कि फिर तो चली जाओगी न, उन्होने कहा कि मुझे एक घटा उनसे बात करने दो। दुबारा पूछने पर कि बाद में तो चली जाओगी न, भूरीवाई बोली, "मेरे घर एक घटा बात करने को जोरावर को भिजवा दो। बाद मे मैं वापस भिजवा दूगी।" तब चार आदमियो को साथ देकर जोरावरमलजी को भूरीवाई के साथ उनके घर भिजवा दिया और बातचीत करवाकर वापस बुलवा लिया।

जमनालालजी दूसरे दिन ही सीकर और वहाँ से वर्धा के लिए रवाना हुए। केशरवाई और मै तो रथ में बैठी। जोरावरमलजी और जमनालालजी ऊँट पर चढे। भूरीवाई कुछ दूर तक पीछे-पीछे आई और कहने लगी, "हे जमनालालजी, अब थारी भेणने राजी राखसु। थे जोरावर ने और थारी भेण ने म्हारे पास छोड जाओ। म्हे थारी गाय हूँ।" जमनालालजी ने कहा, "माजी, एकबार तो म्हाने वर्धा जाण दो। फेरूँ थारे कन्हे भेज देस्या।" हम लोग सीकर आये। वहाँ मेरे सास और ससुर का आशीर्वाद लेकर वर्धा के लिए चल पड़े।

वर्धा मे मैंने केशरवाई को अच्छी तरह से नहलाना-धुलाना, रगीन छापे की साड़िया पहनाना और ठीक ढग से रहना आदि शुरू करवाया। यो तो दोनो में कुछ बात थी नही, पर सारा झगडा भूरीवाई का खडा किया हुआ था और धीरे-धीरे दोनो प्रेम से और अच्छी तरह से रहने लगे। एक-आध महीने के बाद ही भूरीवाई वर्धा आई और गांव में अलग रह-

कर यह कोशिश करने लगी कि जोरावर-केशर को उनके साथ भेज दिया जाय, लेकिन उनकी बात नही मानी गई। कुछ दिन बाद जमनालालजी ने ही सोचा कि जोरावरमल और केसरवाई को एक बार भेज देना ठीक होगा। उन्होने जोरावरमलजी को जाने के लिए कहा। जाते समय जमनालालजी ने जोरावरमलजीसे कहा, "तुम्हारी मा को और केशर को ठीक ढग से रखने की जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है। थोडे रोज देश रहकर तुम दोनो को लेकर वम्बई चले आना। वहाँ व्यापार-धन्धा करने का कुछ सोचेगे।"

कुछ महीने देश मे रहकर वे बबई आये। पाच छ साल तक वे वहाँ रोजगार करते रहे और बीच-बीच में देश जाते-आते रहे। इसी बीच मे उनके तीन बच्चे हुए। उनके नाम प्रह्लाद, नर्मदा और श्रीराम रक्खे गये। बाद मे उन सबको वर्धा बुला लिया गया। इन लोगो के वर्धा आने से हमे बडी खुशी हुई। मै शादी के बाद अकेली ही रहती थी। जब मैं अपने ममिया ससुर बिरदीचन्दजी पोद्दार के घर जाती तो उनका घर भरा-भरा लगता। केशरबाई के आजाने से हमारे घर मे मेरे तीन और केशरबाई के तीन, ऐसे छ बच्चे हो गये। घर मे चहल पहल हो गई और घर भरा-भरा भी लगने लगा तथा केशरबाई के रहने से मेरा अकेलापन दूर हो गया। मै केशरबाई को पढाना-लिखाना और सीना-पिरोना बडे चाव से सिखाने लगी और गॉव की दस-पॉच दूसरी लडकियॉ भी आने लगी।

मै चौके मे से ऊपर ही भोजन मगवा लेती और सब बच्चो को साथ बैठाकर खिलाती। प्रह्लाद सबमे सुन्दर था। उसके चेहरे को देखती तो वह बहुत ही सुहावना लगता। बच्चो की पढाई घर पर ही शुरू हुई। पढने का कमरा अलग से बनाया गया। एक पडित तो घर मे ही रहते थे। बाहर से भी मास्टर पढाने आते। इस तरह सबका समय आनन्द से बीतने लगा।

एक बार जमनालालजी कही बाहर गये हुए थे। इसी बीच जोरावर-मलजी बीमार हो गये। उन्हे विषम ज्वर हो गया। बालारामजी चूडीवाले जमनालालजी के ममेरे भाई थे। सबसे बडे और समझदार थे। उनकी सलाह से वैद्य का इलाज चला। इलाज मे किसी प्रकार की कमी नही रखी गई, फिर भी जोरावरमलजी की तबीयत दिनो-दिन बिगडती ही गई। हम सब

लोग चिन्तित तो थे ही, लेकिन अब तो घबराहट हो गई। जमनालालजी को भी सारे समाचार दिये गए और जल्द आने को लिखा। वह आये, लेकिन तबतक तो तबीयत और भी ज्यादा बिगड चुकी थी। बचने की कोई उम्मीद नही रही। अन्त समय निकट आ गया। जमनालालजी जोरावरमलजी के पास बैठे हुए थे तब उन्होने केशरबाई को दु खभरी निगाह से देखा और बच्चो की तरफ से भी चिन्तित हैं, ऐसा उनके भावो से व्यक्त हुआ। जमनालालजी ने जोरावरमलजी से कहा कि तुम्हे हिम्मत रखनी चाहिए और केसर और बच्चो के बारे मे किसी प्रकार की भी चिन्ता नही करनी चाहिए। तुम्हारे और अपने बच्चो को मै एक-सा रक्खूँगा।

जोरावरमलजीको विश्वास तो था ही, फिर भी जमनालालजी के इस तरह से कहने से उन्हे बहुत तसल्ली हुई दिखाई दी। मैंने केशरबाई को पास बुलाकर जोरावरमलजी के पाव का अँगूठा धोकर चरणामृत पिलाया। जमनालालजी के बडे भाई माधवजी—राधाकृष्ण के पिताजी—पाँच वर्ष पहले ही २७वर्ष की जवानी मे इसी बीमारी से वर्धा मे चल बसे थे। वह घाव अभी ताजा ही था। पूरी तरह भर भी नही पाया था कि जोरावरमलजी भी चले गये। केशरबाई मूर्च्छित होकर गिर पडी। हम लोगो पर तो दु ख का पहाड ही टूट पडा। जमनालालजीको भी बहुत ही आघात पहुँचा। एक तरफ माता-पिता के दु ख का पूरा कारण था, दूसरी तरफ विधवा भाभी थी। अब विधवा बहन का दु ख भी सामने आ गया। लेकिन किया भी तो क्या जा सकता था? मेरे लिए तो यह एक-पर-एक चोट थी। मै तो कुछ समझ ही न सकी और सुन्न-सी रह गई। कुछ ही दिन पहले हम सब लोग कितने आनन्द मे रहते थे। एकदम ऐसा क्या हो गया कि जिससे सन्नाटा छा गया। सारा परिवार दु ख से विह्वल हो गया।

जमनालालजी ने अपने आश्वासन को निभाने का ध्यान जीवन के अन्त तक जारी रखा। जमनालालजी अपने बच्चो से भी अधिक बहन के बच्चों का खयाल इसलिए भी रखते, क्योकि खुद के बच्चों की तो देखभाल नौकर-चाकर भी कर लेते थे। मुझसे तो जमनालालजी बार-बार कहते थे कि केशर दुखी है, उसका और उसके बच्चो का अधिक

ख्याल अपनेको रखना चाहिए। मुझको इस बात का भी ध्यान बना रहता कि उन्होंने यह आश्वासन जोरावरमलजी को उनके अन्त समय मे दिया था। केशरबाई को किसी तरह से बुरा न लगे, इसलिए मै विशेष-तौर से पहनने-ओढने, खान-पान और रहन-सहन मे, सब तरह से सादगी रखती। सभी बच्चो के लिए एक-सी चीज आती और उनमे बरा-बर-बराबर बाँटी जाती। खाने मे, पहनने मे, केशरबाई के या मेरे या लडको या लडकियो मे किसी प्रकार का भेद-भाव न रखा जाता। यदि कभी ऐसा मौका आ ही जाता तो मै अपने बच्चो पर ही इसकी कसर निकालती, जिससे कि केशरबाई को किसी प्रकार की कमी महसूस न हो। मेरी मझली लडकी मदालसा को छोडकर मेरे और बच्चो के मुकाबले मे केशरबाई के बच्चे कमजोर थे और नर्मदा कुछ विशेष कमजोर थी। मा का स्वाभाविक रूप से कमजोर बच्चे पर अधिक लाड-प्यार रहता है और उसके खाने-पीने का अधिक ध्यान और चिन्ता रखती है। इसी वजह से केशरबाई नर्मदा का विशेष ख्याल रखती और वह अच्छा खावे-पीवेगी तो स्वस्थ होगी, यह सोचकर उसे दूध मे मलाई या पौष्टिक खाना देने का उनका प्रयत्न रहता।

मेरे बच्चो को तो शुरू से ही छानकर दूध पीने की आदत होने की वजह से उन्हे न तो मलाई पसन्द आती और न उन्हे इस तरह की बात का कुछ ख्याल आता, पर नौकरो को इसमे भेद-भाव लगता और वे इसकी चर्चा करते। जमनालालजी के लडके तो बिना मलाई का दूध पिये और ये सब लोग मलाई खावे, यह खास करके कुछ पुराने नौकरो को पसन्द न आता और वे भी छिपाकर मेरे बच्चो को अच्छी चीज खिलाने की कोशिश करते। वे इस बात का भी विशेष ध्यान रखते कि मुझे भी इस बात का पता न लगने पावे, लेकिन कभी बच्चो के कहने से या अन्य किसी घटना के द्वारा इस तरह की बाते सामने आ जाती। कुछ ऐसे भी नौकर थे, जो इस तरह की बातो को कुछ बढा-चढाकर कहते रहते। उसमे उनका कही सकुचित स्वभाव का दोष रहता तो कही आपस मे एक-दूसरे को भिडाने की या कटुता फैलाने की इच्छा छिपी रहती। शुरू मे तो मेरे मन पर भी इस तरह की बातो का कोई असर न

हुआ और मैं नौकर-चाकरो को धमका देती। जमनालालजी के सामने भी कोई शिकायत जाती तो वे केशरबाई के बच्चों का ही पक्ष लेते। लेकिन समय पाकर मेरे मन पर भी कुछ असर होने लगा और कभी-कभी ऐसा लगता कि जमनालालजी से लेकर सभी घर के लोग केशरबाई के ही बच्चो का पक्ष लेते हैं। इस तरह के भाव मेरे मन मे जब आते तो मैं उनको हटाने का प्रयत्न करती। मेरे मन मे यह डर भी बना रहता कि किसीको मालूम न हो कि इस तरह का भाव भी मेरे मन मे आया है। इस वजह से मैं किसीसे कहती भी नही थी। मन मे इससे एक सघर्ष शुरू हुआ और उससे मेरी ननद के साथ मे मेरा जो स्वाभाविक प्रेम था, उसमे कुछ कमी आई। यह तो मैं भी समझती थी कि केशरबाई पर तो दुख पडा है और मेरे तो सब कुछ है। इसलिए भी उनके या उनके बच्चो के लिए कुछ अधिक किया जाय तो वह सब प्रकार से उचित है। यह सम्भव है कि प्रारम्भ मे ही यह सारी बात मुझे विश्वास मे लेकर मेरे ऊपर छोड दी जाती तो मेरे मन पर किसी प्रकार की बुरी प्रतिक्रिया न होती। जमनालालजी का दिल निर्मल था और हेतु साफ। कई बार वे धर्म-सकट मे पड जाते और दूसरी तरफ से भी गलती होती तो भी मुझको ही समझाते और उसका मुझपर असर भी होता। लेकिन उन्हे महीनो बाहर जाना पडता और धीरे-धीरे उनका बाहर रहना अधिकाधिक होने लगा। थोडा-बहुत घर मे रहते भी तो अधिकतर समय दूसरे कामो मे लगा रहता। घर के कामो के लिए या बच्चो से बात करने के लिए उन्हे फुरसत भी नही मिल पाती थी। कभी थोडा समय होता भी तो मुझे यह ख्याल होता कि वे थके हैं, उनको घर की बातो में डालकर और कष्ट क्यो दिया जाय। इस प्रकार महीनो-के-महीने और कभी-कभी तो साल-के-साल भी बिना इस तरह की बात किये गुजर जाते। यह भी एक विशेष कारण था, जिससे हम लोगो मे गलतफहमी पैदा होती और हमारे प्रेम में विशेष अन्तर आता गया। मेरे स्वभाव में अपने-पराए का इतना ख्याल नही था, फिर भी एक प्रकार की कजूसी थी। मेरा दिल जमनालालजी की तरह उदार नही था और कभी उदारता दिल मे आ जाती तो भी वह सदा-सर्वदा उनकी तरह टिकती नही थी। गुस्सा

भी मुझमे विशेप था और सहन-शक्ति की भी कुछ कमी थी। मेरे स्वभाव मे ये स्वाभाविक दोप थे और मेरी ननद की भी कुछ व्यक्तिगत कमजोरियाँ थी। घर के अन्य लोगो ने और नौकर-चाकरो ने भी, खास करके जमनालालजी की अधिकतर लम्बी गैर-हाजिरी की वजह से हमारी इन त्रुटियो से गलत-फहमी को बढाया और उससे अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न किया।

सस्कार तो हमको पूज्य बापू, विनोबा और जमनालालजी के मिले थे और वे सभी तरह से अच्छे थे, लेकिन स्वभाव के दोष भी उतने ही प्रबल थे। विचारो से बात समझ में आती थी, फिर भी वृत्तियो को उनके अनुकूल करना आसान न था। जब इन लोगो मे से किसीका भी सतत् सम्पर्क लम्बे अर्से तक न रहता तो मेरी कमजोरियाँ मुझे आकर दबा लेती। इन्ही सब कारणो से मेरे अहकार को चोट लगी। मैं अपने आपको पूरी तरह सम्भाल न सकी और मुझे भी यह भेद-भाव कुछ अश में ही सही, स्पर्श कर गया। फिर भी सबके लिए चीज एक-सी ही आती, परन्तु विचारो मे जो एक प्रकार की निर्मलता थी, वह न रही। ऐसा विचार भी आता कि सबके लिए चीज एक-सी ही बनानी पडेगी तो सादी ही क्यो न बना ली जाय। यो तो घर का वातावरण ही ऐसा था कि गहना-गाठा पहनने का चाव किसी बच्चे को न था, पर मेरे मन मे यह भी भाव आ जाता कि घर के बच्चो के लिए बनाये हुए गहने तो घर में रह जायँगे, लेकिन केशरबाई के बच्चो का बनाया हुआ वक्त पर घर मे थोडे काम आयगा।

यह बात सही है कि मेरी आदते कुछ सकुचित थी, लेकिन फिर भी मेरे मन मे कभी यह विचार नही आया कि मेरे बच्चे और मैं तो जेवर पहने और केशरबाई और उनके बच्चे न पहनें। मेरे मन मे कुछ अपने-पराये का भाव पैदा हो जाने के बावजूद भी मै उसे हमेशा बुरा समझती थी और बच्चो पर उसका असर न हो, इसका ध्यान रखती थी। बच्चो पर अच्छे-से-अच्छे सस्कार पडे, यह मेरी बराबर इच्छा थी। विचारो के अनुसार तो मुझे यही कबूल था और इसी तरह का मेरा प्रयत्न भी रहता लेकिन स्वभाव की कमियो की वजह से जितना सुन्दर वातावरण बनाने

की इच्छा रखती, वह न बन पाता। कई बार मैं ऐसा भी सोचती कि अपना मन बडा कर लूँ और पहले की तरह ही भेदभाव न रखकर बरतूँ, पर कोई ऐसी बात हो ही जाती, जिससे अपने विचारो के अनुसार चलने मे अडचन आ जाती।

केशरबाई को भी कोई खास लोभ न था और न वे मुझे दुखी बनाना चाहती थी। नौकर चाकरो की वजह से इस तरह का कुछ दूषित वातावरण बन गया तो वे जमनालालजी से कहती, "भाईजी, मुझे अलग रहने दीजिये। मैं अपना १००) महीने मे खर्च चला लूँगी, पर मुझे नौकरो की झझट से छुडाइये। भाभी को भी कष्ट रहता है यह अच्छा नही।" पर जमनालालजी को बहन और उनके बच्चो के अलग रहने की कल्पना भी असह्य थी। उनका हमेशा यही प्रयत्न रहता कि हम दोनो ननद-भौजाई प्रेम से मिल-जुल कर रहे। वे भी यह नही चाहते थे कि मै दुखी होऊँ। सभी अपनी-अपनी तरफ से दूसरो के सुख और भावनाओ का ख्याल रखते लेकिन फिर भी व्यवहार मे कुछ ऐसी स्थिति पैदा हो गई थी, जिससे सभी को कुछ-न-कुछ असतोष ही रहता। हमारी आपस की गलतफहमी साबरमती आश्रम मे अधिकतर लम्बे अर्से तक साथ रहने से बढी और जब वर्धा आकर बजाजवाडी मे रहने लगे तब वह और भी ज्यादा हो गई। बीस-पच्चीस साल तक हम लोग इकट्ठे रहे। अब बच्चे भी बडे हो चुके थे। जमनालालजी का भी जेल अथवा अन्य कामो की वजह से घर मे कम ही रहना होने लगा। यह भी एक बडा कारण था, जिससे हम लोगो की सहन-शक्ति कुछ कम हुई।

जमनालालजी का मन बडा था। वह हमेशा यह चाहते कि मेरे बच्चो से भी मेरी बहन के बच्चो का सभी अधिक ख्याल रखे। इसमे उनको चाहिए, जैसी सफलता नही मिल पाई। मेरी इच्छा यह रहती कि उनके कहने पर सबकुछ अर्पण कर दू, लेकिन प्रारम्भ मे पैदा हुई छोटी-छोटी बाते, स्वभाव-सी बन गई और हम सबको उन्होने विवश कर दिया।

मेरे ससुर कनीरामजी कहते, "केसर, तू जमन की बात मत सुन, दुख पाओगी।" बात यह थी कि कुछ तो व्यवहार की दृष्टि से वे यह मानते थे कि केशरबाई अपने भाई पर भरोसा करने की जगह मुझपर भरोसा

करके अपना वर्ताव करे तो उनके हित मे होगा, क्योकि घर के काम-काज मे आखिर स्त्रियाँ ही जो कुछ करे वह होता है। दूसरी बात मेरे दिमाग मे यह भी थी कि इन्होने अपने भतीजे राधाकृष्ण को आश्रम मे भर्ती करा रखा था। राधाकृष्ण कहता था कि मुझे विवाह नही करना है और उसके विवाह सम्बन्ध की जमनालालजी कोशिश भी नही करते थे। इससे स्वाभाविक ही यह डर हो जाता कि कही जमनालालजी प्रह्लाद और कमल को भी कुँवारा ही न रक्खे। प्रह्लाद वडा था। जब वह देश मे गया तो वहाँ पर उसकी सगाई जमनालालजी से बिना पूछे ही करदी। वह सगाई उन्होने छुडवा दी। एक तो लडकी पढी-लिखी न थी और वे लोग पुराने विचारो के थे, दूसरे लड़की कुछ वडी थी और प्रह्लाद उस समय वच्चा ही था। जब प्रह्लाद और कमल सगाई के लायक हुए तो जितनी भी सगाइयाँ आई पहले प्रह्लाद के लिए चर्चा की गई। उसका सम्वन्ध श्री सीतारामजी सेक्सरिया की लडकी पन्ना के साथ किया गया। फिर नर्मदा और मदालसा के सम्वन्ध की वात थी। मदालसा तो फक्कड थी और विवाह भी करेगी कि नही, इसका भरोसा तक न था, फिर भी जितने सम्बन्ध आये, जमनालालजी ने पहले नर्मदा को वताये। नर्मदा के लायक सम्वन्ध ठीक हो गया, उसके वाद ही मदालसा का सम्वन्ध निश्चित करने मे सहूलियत हुई।

इस बीच वजाजवाडी मे ही केशरबाई और उनके वच्चो के लिए एक मकान बनवा दिया, जिससे वे अपनी शादी-शुदा बच्चो के साथ स्वतन्त्ररूप से रह सके और वजाजवाडी मे ही होने की वजह से हम सबके नजदीक भी थे। कुछ वर्षो तक तो केशरबाई उसमें रही। वाद मे वच्चो के काम की वजह से बम्बई और कलकत्ते रहना पडा, इसलिए केशरवाई ने मकान दे देने के लिए इच्छा बनाई और वह मकान मेहमानो के लिए ले लिया गया।

जब मै अपने पिछले जीवन की सारी बातो को मन मे दुहराती हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे कितनी क्षुद्र बाते होती थी, जिनकी वदौलत आपस मे गलतफहमी पैदा होती थी और क्लेश का कारण बन जाती थी। थोडी समझदारी और विवेक के साथ छोट-मोटी बातो को दुर्लक्ष करके कुछ सहन कर लिया जाय तो आपस का प्रेम, सद्भाव और आदर उससे बढता है और उसमे एक प्रकार का अपूर्व समाधान और सुख मिलता है।

: १८ :

साबरमती-आश्रम में

नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह के बाद हम लोग साबरमती-आश्रम मे रहने के लिए गए। जमनालालजी ने सोचा कि आश्रम मे रहने से बालको को विकास के लिए अच्छा शिक्षामय वातावरण मिलेगा, हाथ से काम करने का अभ्यास होगा और मै भी कुछ घर-गृहस्थी के काम सीख सकूँगी।

पीहर मे तो मुझे कोई काम नही करना पडा और वर्धा मे सारे काम नौकर ही करते थे। इस तरह मेरे जीवन मे व्यवस्था आई ही नही। जमनालालजी भी मेरी आदतो और कमजोरियो को जानते थे और इस कारण हैरान भी थे। मेरी ननद केशरबाई तो हमेशा ही विनोद में कहा करती—"राम मार्यो विधाता भूलगो तनै मोट्यारा की जगा लुगाई बणा दी," (विधाता ही चूक गया जिसने तुझे पुरुष की जगह स्त्री बना दिया)। इसीलिए जमनालालजी ने साबरमती जाने का विचार आने पर बापूजी से कह दिया था कि आश्रम के नियमो के अनुसार जानकीदेवी का निभाव कठिन होगा। यही कारण था कि सारी बातो का विचार करके बापू ने आश्रम की हद के बाहर, लाल बँगले के पास एक मकान दिया और कहा कि अलग मकान मे रहने से जानकीदेवी सारे नियमो की पाबन्दी से बच सकेगी और निकट सम्पर्क के कारण वातावरण का लाभ मिलेगा और धीरे-धीरे नियमो के पालन की ओर बढेगी।

हमने सुना था कि आश्रम में तो साप-बिच्छू आदि किसी भी प्राणी को मारा नहीं जाता है। वहाँ कुत्ते भी बहुत थे। हर क्षण कुत्तो से परेशानी रहती थी। मेरी परेशानी तो और भी अधिक थी। वर्धा में हम ऊपर बँगले में रहते थे, नीचे चौक में पहरा रहता था। दरवाजे आदि

बन्द रखने की भी हमारी आदत नही थी। आश्रम मे हम कोठार से सामान लाते और इधर-उधर रख देते, पर कुत्ते आते और सामान ले जाते। इस तरह कुत्ते हिल गए। एक दिन हमारा एकादशी का व्रत था। शहर आश्रम से चार मील दूर था। नौकर फल वगैरा लेने शहर गया। शाम हो रही थी। मैंने और मेरी ननद गुलाबबाई ने सोचा कि कुएँ से पानी ले आवे। अन्धेरा होने जा रहा था। आश्रम की दौडधूप मे भूख जोर से लगती थी। बरामदे मे सब तैयारी करके रखी कि भगीरथ फल लेकर आए तो फलाहार करे। इतने मे रामकृष्ण ने पानी मे चप्पल डाल दी। वह उस समय तीन-चार वर्ष का था। अब अन्धेरे मे पानी लेने कौन जाय ? आँखो पर हाथ धरकर पानी की चिन्ता करने लगे। इतने मे कुत्ता आया और सामने रखा दूध लप-लप करके पीने लगा। अब दूध कहाँ मिलेगा, यह चिन्ता कर ही रहे थे कि दूसरा कुत्ता सूखे अजीर की माला लेकर भाग गया। एक तीसरा कुत्ता आया और वह पपीता ले भागा। एक तो एकादशी के फलाहार की गडबडी, दूसरे सन्ध्या की प्रार्थना का समय हो गया था। अजीब परेशानी हो गई।

रात को बरामदे मे हम सब और पाँचो बच्चे जमीन पर ही सोते थे। सबके लिए खटिया का मिलना कठिन था और यो हमे भी खटिया की इच्छा नही थी, पर साँप-बिच्छू का डर तो बना ही रहता था। सुबह की प्रार्थना मे जाते समय हम बच्चो को कपडे ओढाकर जाते। जब प्रार्थना से लौटकर आते तो उनके पास रोगी खुजलीवाले कुत्ते सोए हुए नजर आते देखकर बडी सूग चढती।

रसोई-घर को बन्द करके रखने की भी हमारी आदत नही थी। मक्खन निकालकर तपेली मे रखकर कोठार मे दूसरा सामान लेने जाती कि कुत्ते आकर मक्खन ले जाते। मक्खन की तपेली देखने जाती कि गुड का डला दूसरा कुत्ता ले भागता। गुलाबबाई थी तो बडी होशियार, पर आश्रम के नवीन जीवन मे उनकी अकल और शरीर भी काम नही देते थे। एक दिन आश्रम की बेलाबहन दोपहर का खाना-पीना निपटने पर हमारे यहाँ आईं। आते ही उन्होने कहा, "अबतक तुम लोगो का भोजन भी नही हुआ। चलो, मै रोटी बना देती हूँ।" इसपर

मे राजी हो गई। मै बेसन पीसकर लाई, तब जाकर कढी बनी। वेला बहन रोटी बनाकर जाने लगी कि इतने मे एक कुत्ता लपककर, जितनी उसके मुँह मे आई उतनी रोटी लेकर, भाग गया। हम सब पहले दिन के भूखे थे, बची रोटियाँ खाकर भूख बुझाई। वेला बहन ने ये सारी बाते किशोरलाल-भाई से कही। उन्होने अपने गुरु नाथजी (केदारनाथजी) से कहा कि आप जाकर देखिए। जमनालालजी स्वय तो नौकर को लेकर घूम रहे है और स्त्री-बच्चो को विना रसोइया और नौकर के छोड गए हैं। मै समझती हूँ कि जमनालालजी जानबूझकर ऐसा करते थे, क्योकि वह कहा करते थे कि स्त्रियो को अपने घर की रसोई बनानी तो आनी ही चाहिए। मुझे रसोई बनानी आ जाय इसी दृष्टि से वह रसोइये को अपने साथ ले जाते थे।

नाथजी ने आकर देखा कि दो कुत्ते एक कमरे मे और दो दूसरे में और वाकी बरामदे मे हाजिर है। उन्होने छोटे-छोटे पत्थरो का ढेर इकट्ठा किया और कुत्तो पर फेकना शुरू किया। वे पत्थर इस प्रकार फेकते थे कि कुत्तो को चोट तो न आती, पर वे डर जाते। कुत्ते सचमुच इतने डर गए कि फिर आना ही भूल गए और हम भी यह सबक सीख गए। बच्चो को भी यह नया शस्त्र हाथ लग गया। बाहर से कठोरता और भीतर से नम्रता का यह गुण हमने प्रत्यक्ष देखा।

आश्रम मे समय के अनुसार बार-बार घटियाँ होती थी, लेकिन हमें समय का कोई भान न रहता था, इसलिए घंटी बजते ही दौडधूप मच जाती और हम बिखरे बालो, अव्यवस्थित कपडो मे ही जैसे-तैसे पहुँच जाते। हमारी यह दशा देखकर सब लोगो को दया भी आती और हँसी भी। नदी पर स्नान के लिए जाते तो बच्चो को पहले भेज देते। कमला रोती-रोती कपडे गिराती जाती। दूसरे लोग कपडे उठाते जाते। नदी पर हम कपडे धोते रहते और उधर घटी बज जाती।

एक रोज कमलनयन काका कालेलकरजी के वर्ग मे जा रहा था कि रास्ते मे से ही लौट आया। बोला कि रास्ते मे सॉप है। मैने कहा कि साप तो चला गया होगा। यह सुनकर कमलनयन तो वर्ग मे गया; लेकिन उस रास्ते से जाने की मेरी हिम्मत न हुई। दूसरे रास्ते से ही

वर्ग मे गई। मैं तो डरती थी, फिर भी चाहती थी कि बच्चे निर्भय बनें।

कुछ दिनो बाद आश्रममे अलग-अलग रसोडो को बद करके एक सार्वजनिक रसोडा शुरू किया गया। उसमे गाय के ही घी-दूध के उपयोग का नियम था। सबकी राय से यह नियम बना था। जमनालालजी ने मुझसे कहा कि तुम वर्धा चली जाओ, क्योकि एक तो रसोडा एक हो गया, दूसरे सपत्तिवाले यहाँ रह नही सकते। तब मैंने कहा कि सपत्ति की बात तो आप जाने, मुझे तो रसोडे मे बना-बनाया खाना मिलेगा। मेरी तो खाना बनाने की आफत ही मिटी। जब हम लोग रसोडे मे खाने के लिए जाने लगते, तब पहली घटी पर न पहुँचने से दूसरी घटी तक बाहर खडे रहना पडता था।

मै भोजन बहुत धीरे-धीरे किया करती हूँ। दूसरी बहने तो भोजन करके अनाज आदि साफ करने बैठ जाती और फिर अपने-अपने यहाँ बाल-बच्चो के लिए दूध का समय होने पर दूध के लिए भी आ जाती। पर मै तो भोजन ही करती रहती। इससे मेरा अनाज आदि साफ करने का समय भी भोजन मे ही चला जाता।

एक दिन मै भोजन के बाद दूध के लिए रसोडे मे खडी थी। दूसरी बहनो ने कहा कि आगे होकर ले लो। ऐसे खडे रहने से तुमको कौन दूध देगा? धान-सफाई का समय चला गया, पर वर्ग मे तो जाना ही चाहिए, इसलिए दूध लेकर जल्दी निकलना आवश्यक था। दूध की तपेली को थाली मे रखकर चल रही थी, जिससे तपेली डगमग हिल रही थी। दूध के लिए मुझे लोटा लाना चाहिए था। मै थाली को दोनो हाथो से पकडकर चल रही थी कि सामने से गोशाला की गायो का झुँड आ गया। मै डर गई और खेत के काटो की बाढ के पास जाकर खडी हो गई। पीछे से एक गाय आई और उसने मेरे दोनो पैरो के बीच सीग डाल दिया। थाली को पकडे मैं काप रही थी और दूध गिर न जाय, इसकी चिन्ता भी थी। मै तो, अब गिरी अब गिरी, हो रही थी। मुझे इतनी भी सुध नही रही कि कम-से-कम थाली नीचे पटककर एक हाथ तो खुलाकर लूँ। इतने मे उधर से ग्वाला आ गया और उसको देखकर गाय ने आहिस्ते से सीग निकाल लिये। तब कही जान-मे-जान आई।

उस वर्ष खूब वर्षा हुई थी। साबरमती नदी मे बाढ आने की सम्भावना थी। सरदार पटेल बाढ के समाचार लेकर आश्रम मे आए और बोले कि साबरमती-आश्रम खाली करने की सूचना मिली है। बापू ने प्रार्थना मे सबसे यह कह दिया, "कोईने जरा पण भय लगातो होय तो ते अमदावाद शहेर मा के बीजे गमे त्या जई शके छे, शरमाववानी जरूर नथी। अने जेने अहिआ रेहवू होय ते अहिआ रहे। हूँ तो अहिआज रहेवानो छू। ने ज्यारे पूर आवशे त्यारे विद्यापीठनी छत पर बेसी रघुपति राघव राजा रामनी धुन लगावशु।" घबराहट तो सबको थी ही, परन्तु बापूजी को छोडकर जाने को कौन तैयार होता! मुझसे भी बापूजी ने कहा कि तुम वर्धा जा सकती हो। लेकिन मै वही रही।

नदी मे तो इतनी बाढ नही आई, पर पानी कई रोज तक बरसता रहा। सारे आँगन मे पानी-ही-पानी हो गया। ऊपर से भी पानी चूता था। बाहर निकलना भी मुश्किल था। सारे कपडे भीग गए, चीजे भीग गई। लक्ष्मण रसोइया रसोई बनाता था। वर्षा के पानी से ही रसोई बनाई जाती और वही पी लिया जाता। बापूजी ने कहला भेजा कि हम लोग आश्रम मे ही सोवे, पर मेरी तो हिम्मत ही न हुई। आश्रम मे तो सब चार बजे तडके उठनेवाले थे, नियम से रहते थे। मै ऐसा कहाँ कर सकती थी! किशोरलालभाई ने किसीको हमारे मकान के पास सुलाने को कहा, ताकि हम वर्षा, बिजली, आँधी मे न डरे और चोरी का भी डर न रहे। पर मैने कह दिया कि चौक मे मैं सफेद चादर ओढकर सो जाती हूँ, सो देखने वाला यही समझेगा कि कोई आदमी सोया है। इतने पर भी कोई कुछ ले जायगा तो बरतन-कपडे ही तो हैं।

: १६ :

आश्रम के कुछ और अनुभव

जब साबरमती रहने गये, तब वहाँ दूसरो को पढते और आश्रम का वातावरण देखकर पढने का मन होने लगा। जहा गीता का वर्ग चलता वहाँ गीता ले जाती। सितार के वर्ग में सितार ले जाती। बापूजी जब बहनो का वर्ग लेते तब वहाँ भी पहुँच जाती। बापूजी रामायण आदि धर्म-पुस्तको मे से शुद्ध लिखकर लाने के लिए कहते। मैं बडे चाव से शुद्ध और सुन्दर लिखकर बनाने का प्रयत्न करती। कापिया देखकर बापूजी निशान कर देते थे। वे कापिया अब भी मेरे पास है। लडकियो के साथ साबरमती नदी मे तैरना सीखने की भी कोशिश करती। मैं सीखने के हर स्थान पर पहुँचती पर पूरी जानकारी किसी भी बात मे न कर सकी। आश्रम की बहने मुझपर सदा हँसती रहती और कहती रहती कि जिस वर्ग मे देखो जानकीबहन हाजिर रहती हैं। पर उन बहनो को क्या पता कि मैं जहाँ-की-तहाँ ही रहती थी। कृष्णदासभाई गाधी ने सितार की गते सिखाई, हारमोनियम सिखाने का भी प्रयत्न किया, सगीत सीखने की भी कोशिश की, लेकिन मेरा हाल तो यह था कि 'आगे पाठ और पीछे सपाट।' नया पाठ लेने से चूकती नही और पिछला याद रहता नही। गीता की पढाई का भी यही हाल हुआ। बहुत बरसो के बाद जब विनोबाजी की गीताई मिली तब गीता का कछ-कुछ अर्थ मेरी समझ मे आने लगा।

बडाई के लिए या उत्साह मे मैं बापूजी से कहती कि मुझे भी कुछ काम दो। बापूजी ने कहा कि यहा काम तो बहुत है। जाओ गोशाला में सफाई करो। मैंने दूसरे रोज मे झाडू देनी शुरु की, पर इसके पहले मैंने कभी झाडू हाथ मे ली नही थी। इसलिए मुझे देखकर लडकियाँ हँसती और

कहती, "जाओ जाओ, जानकीव्हेन, तमे तो काम बिगाडो छो।" इसी प्रकार रसोई-घर मे भी लडकियाँ हँसती थी, कहती, "रेवा दो, तमे रोली वाली नाखो छो। अमे करी ले सूँ।"

आश्रम मे पाखाना सफाई का काम आश्रमवासी ही करते थे। बापू ने जीवन की साधना की शुरुआत भगी के काम से ही मानी है। जिसको इस काम से ग्लानि हो, भय हो, उसका आश्रम मे रहना असम्भव था। यह मेहमानो के लिए अनिवार्य नही था।

हम लोग भी पाखाने मे ही शौच जाते थे। मैंने देखा कि वहाँ तो ब्राह्मण-पडित सब बिना हिचक के पाखाने की सफाई करते हैं। मैं भी एक दिन हिम्मत करके गई। मन मे उत्साह जो था! नाक पर साडी लपेट ली और चली गई। मैले की बालटियाँ बाँस मे डालकर दोनो ओर से दो आदमी पकडकर खाद के गढे तक ले जा रहे थे। मैले पर मिट्टी की परत होने से बास आने या ग्लानि होने की बात ही नही थी। मैंने भी बास का एक छोर पकडा और डरते-डरते मुह फेरकर उसे गढे तक पहुँचा दिया। मैंने मैला उठाने और पाखाना साफ करने का काम कर तो दिया, पर बालटी पहुँचाने के बाद लौटकर सिर से पैर तक रगड-रगडकर स्नान किया और गोबर लगाकर हाथ-पैरो की शुद्धि की। पाखाना सफाई का यह मेरा पहला ही मौका था।

मारवाडी समाज मे सुहागिने लाख की चूडियाँ पहनती थी। पर जब मैंने जेवर का त्याग कर दिया तब लाख की चूडियाँ भी मैं नही पहनती थी, क्योकि उन पर सोने की पतरी होती थी और लाख मे हिंसा होती है। काँच की चूडियाँ पहनने लगी। पर काँच की चूडियाँ देशी होने से बार-बार बध (टूट) जाती थी और अहमदाबाद वहाँ से चार मील की दूरी पर था। जहाँ चूडियाँ मिलती, वहाँ जाने की परेशानी से बचने के लिए मैं चूडियो की भी परवा नही करती थी। आ जाती तो पहन लेती, नही तो योही चलता रहता। एक दिन मैं बिना चूडियो के, बिना बिंदी के, सफेद साडी पहने दरवाजे पर बैठी थी। मुझे इस प्रकार बैठी देखकर अनुसूया साराभाई ने डरते-डरते मुझसे पूछा—"जमनालालजी कहाँ हैं?"

मैंने कहा—"वर्धा गए हैं।"

वह बोली—"जानकीवहन, मै तो घबरा ही गई थी तुम्हारे इस वेश को देखकर।"

"कोई चूडियो में ही सुहाग थोडे रहता है !" मैंने कहा।

वापूजी की वातो और प्रभाव से गहनो का असर कम तो हो ही चला था, पर बिंदी और चूडियो के प्रति आग्रह तो पूज्य वा का भी था। और कोई गहना चाहे न हो, पर बिंदी और चूड़ियाँ तो सुहाग के चिन्ह माने जाते हैं। मेरे बरताव को देखकर वा यह कहा करती—"जानकी-वहन तो वापू को और भी वढावा देती है। वह एक दिन शायद यह कह वैठेंगे—"देखो जानकीवहन को, वह तो चूडियाँ भी आवश्यक नही मानती।"

एक वार एक हरिजन ने वापू से पूछा कि क्या मेरी लडकी आश्रम मे रख लेंगे और उसका पालन-पोषण करेंगे? वापू कैसे इन्कार कर सकते थे। उन्होने 'हाँ' कहा और लडकी आश्रम मे आ गई। अव वापू ने वा से कहा—"हरिलाल की लडकी मनु की तरह ही इसे सम्हालो।" वापू के सामने तो वह क्या कहतीं, पर एकदम सहम गई। वा ने हम वहनो के बीच भोलेपन से कहा—"वापूजी कहते हैं कि लक्ष्मी को मनु की तरह रखो। उसको नहलायेंगे, खिलायेंगे, पिलायेंगे, जूँए निकालेंगे पर रोटन्नी रसोडा मे कैसे होगा ?" लेकिन आगे चलकर तो वा के लिए भी वापू की सव आज्ञाएँ सहज होती गई।

एक दिन आश्रमवासियो के सामने प्रार्थना-प्रवचन करते हुए वापूजी ने कहा—"जरूरत से ज्यादा सामान पास में रखना परिग्रह है। जो अधिक हो वह आश्रम के दफ्तर मे दे देना चाहिए। जिसके काम की हो, वह वहाँ से ले सकता है। जैसे, यदि मै मर जाऊँ और मेरी ऐनक हो तो वह वा को अपने पास न रखनी चाहिए, दफ्तर में जमा करा देनी चाहिए। जिसके काम की होगी, वह उसका उपयोग कर लेगा।" वा ने हमारे बीच आकर कहा—"वापूजी शूं कहे छे के धणी नी वस्तु पर वायडी (पत्नी) नो हक न होय ?"

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी वीमार थी। उन्हें टायफाइड था। उनकी

सेवा के लिए भाई जमनादास गांधी नियुक्त थे। सरलादेवी ने बापू से शिकायत की कि जमनादासभाई उनकी ठीक-ठीक सेवा नही कर पाते। बापू ने अपने छोटे पुत्र देवदास से कहा—"काल थी देवा तू जशे।" देवदासभाई ने कहा—"बापूजी बीजे दिवसे मारीपण शिकायत थशे त्यारे न जवु ज सारू।" बापूजी हँस पडे। दोपहर को श्रीमती सन्तानम की ड्यूटी थी। उनकी भी शिकायत हुई। यह सब देखकर सेवा करने का उत्साह मुझमे जागा। मैंने बापूजी से कहा कि मै इनकी सेवा मे जा सकती हूँ क्या? बापू ने दूसरे दिन से जाने को कहा। इससे मुझे बहुत खुशी हुई। मेरे मन मे, सेवा कैसे की जाती है, यह सीखने की इच्छा थी।

दूसरे दिन से मैं उनकी सेवा मे हाजिर हो गई। धूप और अगरबत्ती लेकर धुपाडे मे आग रखकर मैंने उनके कमरे में सुगन्ध कर दी। मै डर रही थी कि कही मुझे भी सेवा से न हटा दिया जाय। झाड़ू भी धीरे-धीरे दी। उन्होंने पेशाब का डब्बा बाहर रखने को कहा। मैंने उठाकर बाहर रख दिया। फिर चोटी बनाने को कहा। मैंने चोटी बनाना शुरू किया। उनके बाल बडे लम्बे थे। चोटी धीरे-धीरे की कि कही कोई बाल खिच न जाय। उनको अच्छा लगा। चोटी बनाते समय रोग के जन्तु मेरे शरीर मे न चले जाय, इसलिए साडी का पल्ला नाक पर रखना चाहती थी, लेकिन डर लग रहा था।

टट्टी-पेशाब का कमोड तो मैं बाहर रख देती, पर भंगी के हाथ का धोया गीला कमोड भीतर कैसे रखूँ? इस दुविधा को मैंने गोमतीबहन के सामने रखा। गोमतीबहन ने कहा कि जब आप उस काम के लिए गई हैं तब वहाँ के कपडे अलग रखो और घर के कपडे अलग। "कपडे बदलना तो ठीक, पर सिर रोज-रोज कैसे धोऊँगी?" मैंने गोमतीबहन से पूछा।

उन्होंने जवाब दिया—"सिर की बात को छोड दो।" इस तरह मैं प्रतिदिन जाने लगी।

जब सरलादेवी को मालूम हुआ कि मै जमनालालजी की पत्नी हूँ तो उन्होंने कहा कि पेशाब के बरतन को बार-बार मत निकाला करो। जब टट्टी हो तब एक बार ही निकाल दिया करो। इससे मुझे खुशी हुई, क्योंकि यह काम स्नान के पहले भी हो सकता था।

: २० :

पहली सन्तान

वच्छराजजी के परिवार मे सन्तान की ओछत थी। कई पीढियो के वाद हमारी पहली सन्तान कमला पैदा हुई थी। लोगो ने कहा कि इनके यहाँ तो लडकी भी होना महत्वपूर्ण है, पर हमारा इनाम तो गया। यह वात जमनालालजी को वहुत बुरी लगी। वह तो लडकी की इज्जत ज्यादा करते थे। उन्होने कमला के जन्म पर खूब चाँदी-सोना-जेवर आदि नौकर-चाकरो को इनाममे वाँटे। उनकी खुशी का पार न था। कमला का लालन-पालन भी वडे लाड़-प्यार से हुआ। मेरी पहली जचकी थी। इस कारण इनको यह खयाल था कि प्रसूति में कोई खरावी न हो। दादाभाई नौरोजी की लडकी वम्वई मे डाक्टर थी। जव जमनालालजी दादाभाई नौरोजी से मिले और डॉ० माणकवाई का जिक्र आया तो इन्होंने मेरी जचकी के लिए खाना व ८००) महीने पर उसको तय कर लिया और वर्धा ले आये। उसके साथ उसके दो लडके भी आये। मुझे याद है कि उसको सीधे में रोज एक सेर घी, आटा, दाल, चावल, चीनी, वगैरा दिया जाता था। कमला के होने पर जमनालालजी ने डाक्टर माणकवाई को वहुत-सा इनाम वगैरा दिया और खुश करके विदा किया।

उस समय की एक वात की जव याद आती है तो वडी हँसी आती है। कमला को दो वर्ष की होने तक पानी नही पीने दिया गया। जव कभी वह कुछ पीने को माँगती तो दूध या फलो का रस ही दिया जाता। दूसरे उसे पैदल भी चलने नही दिया जाता था। सव उसे गोदी में ही उठा-कर लिये रहते थे। परिवार में वरसो मे एक ही वालक हुआ था और पैसे से भरापूरा घर था। नौकर-चाकर और रिश्तेदार सव यही सोचते थे कि ऐसे लाडले वालक को क्या पानी पिलाना चाहिए ? वह तो दूध या फलो का

रस ही पी सकता है। इसी तरह पैदल चलने के बारे मे रहा। इस कारण कमला पैदल भी बहुत देर के बाद चलने लगी।

जब कमला चार वर्प की हुई तो उसकी सगाई फतेहपुर के नेवटिया परिवार मे रामेश्वरप्रसाद से कर दी गई। नेवटिया-खानदान समाज मे प्रतिष्ठित, सस्कारी तथा सुधारक विचार का था।

जब कमला ग्यारह साल की हुई तब गॉव की स्त्रियाँ कहने लगी कि कमला का ब्याह कब होगा। समाज मे बाल-विवाह प्रचलित होने से उनका कहना स्वाभाविक था। फिर वे कहती, "तुम्हारी देहली (दरवाजा) तो क्वारा ही है।[1] इसलिए इसका जल्दी विवाह कर दो।" उधर लडके की मा की भी स्वाभाविक इच्छा थी कि बहू जल्दी घर मे आवे। मारवाड़ी-समाज मे छोटी उम्र मे विवाह बहुतायत से होते थे। पर जमनालालजी बाल-विवाह को अच्छा नही समझते थे। इस कारण उन्होने चौदह वर्ष की होने पर ही कमला का विवाह करने का निश्चय किया।

यो नेवटिया-परिवार वाले भी सुधारक तो थे ही जमनालालजी और केशवदेवजी ने इस विवाह को सुधारक पद्धति से तथा सादगी से करने का विचार किया। पहले यह सोचा गया कि विवाह यदि बम्बई मे होगा तो उसका समाज पर अच्छा असर होगा। बापूजी ने भी उसकी सम्मति देदी। लेकिन बाद मे जमनालालजी ने केशवदेवजी को साबरमती मे शादी करने को राजी कर लिया। बापूजी को भी यह बात पसन्द आई। इन्होंने कहा कि आश्रम के वातावरण में शादी होने से वर-वधू पर अच्छे सस्कार पडेगे। इस निश्चय से जमनालालजी को बड़ी खुशी हुई।

रामेश्वरप्रसाद के पिताजी का स्वर्गवास दो साल पहले हो गया था। उनके दादाजी रामवल्लभजी वृद्ध थे और देस में रहते थे। चाचाजी केशवदेवजी बम्बई मे रहते थे। वे राष्ट्रीय विचार के थे और उनका जमनालालजी के साथ भाई का-सा सम्बन्ध हो गया था। जमनालालजी की यह इच्छा थी कि विवाह मे स्त्रियॉ तथा बडे-बूढे सब आवें और

---

१. जबतक घर में कोई लड़की ब्याही नही जाती तबतक देहली क्वारी मानी जाती है।

सादगी तथा सुधरे हुए ढग से होनेवाले विवाह को देखे। इसलिए वे फतेहपुर गये और रामावल्लभ जी तथा अन्य स्त्रियाँ विवाह मे आवे, इसका आग्रह किया।

वरात मे स्त्रियाॅ नही जाया करती थी और पहले वरात बनाकर आने की वात थी। फिर निश्चय हुआ कि वैठा व्याह होगा। विवाह में समधी और समधने आई।

रामेश्वरप्रसाद वम्वई मे मैट्रिक हो जाने पर गुजरात विद्यापीठ मे पढने गये थे। सरकारी कॉलेज की शिक्षा छोड राष्ट्रीय कालेज मे शिक्षा के लिए अहमदावाद जाना, उस समय कोई छोटी बात नही थी, खासकर राजस्थानी समाज मे। पर यह भी केशवदेवजी के कारण ही सम्भव हो सका था। रामेश्वरजी वहाँ के वातावरण मे घुल-मिल गये थे। खादी तो पहनते ही थे, विवाह के समय वागा आदि न पहनकर सादे खादी के कपडे से व्याहने आये।

नेवटिया-कुटुम्व का डेरा गुजरात विद्यापीठ मे था और हमारा लाल वँगले में। जमनालालजी ने मुझे वरपक्ष की स्त्रियो को विवाह के समय आने को आमन्त्रण देने के लिए भेजा। मै गई। मुझे देखते ही वरपक्ष की औरतो ने घूंघट निकाल लिये। वे बोली, "जी क्या आवे! वहाँ आप लोग कुछ नेगचार तो करेंगे नही, देखे तो क्या देखे?"

मैंने आकर सव वात जमनालालजी को वताई। जमनालालजी वोले, "कोई बात नही, मै वहा जाकर उनको समझाऊँगा।" जमनालालजी वरपक्षवालो के यहा गये। वहा उन्होने रामवल्लभजी तथा केशव-देवजी से वात की। रामवल्लभजी वडे सज्जन पुरुष थे और विचारक भी, पर अवतक उनके यहा पर्दा होता था। इसलिए उनके पोते की वहू विना पर्दे के उनके सामने फेरे में वैठे इसमें उन्हे सकोच मालूम हुआ। पर यह उलझन वापूजी ने दूर कर दी। उन्होंने जमनालालजी से कहा कि जब वरपक्षवालो ने वहुत-से सुधार किये हैं तो एक वात उनकी भी हम मान लें।

आज तो यह वात साधारण-सी मालूम देती है, पर आज मे तीस साल पहले मारवाडी-समाज की जो स्थिति थी उसमें तो यह क्रान्तिकारी कदम

ही था और जमनालालजी को यदि समाधियों का सहयोग न मिलता तो यह सब कठिन ही होता।

शादी मे मारवाडी तरीके के खादी के कपडे पहनकर और नाक तक घूघट निकालकर कमला को चौरी (मडप) मे बिठाया गया। विवाह मारवाडी पण्डित तथा प० नेकीरामजी ने कराया। बाद मे बापूजी ने आशीर्वाद दिया और सादगी से विवाह करने के लिए केशवदेवजी व जमनालालजी की सराहना करके विवाह-सस्कार के महत्व को बताया।

समधी तथा समधने यह देखकर खुशी हुई। वे कहने लगी कि फेरे तो जैसे समाज मे होते हैं वैसे ही हुए। वर के दादा को भी यह सब अच्छा लगा।

कमला की सास के पैरो मे तकलीफ हो गई थी। उनके पैर जुड गये थे। जमनालालजी ने उन्हे साबरमती बुलाया कि वे आकर वहा के वातावरण से लाभ उठावे।

वे आ गई। बापूजी उनसे कहते थे कि मेरे साथ घूमने चला करो, पर वह कहती कि घूम कैसे सकती हूँ, पांवो की तो यह हालत है!"

बापूजी चाहते थे कि इनका शरीर अपने स्वाभाविक रूप में आ जाय और यह प्राकृतिक चिकित्सा से ही हो सकता था। बापूजी ने उनको उपवास की सलाह दी।

बापूजी के कहने से उन्होने उपवास शुरू किए, पर उनका पार पडना इतना आसान न था। उनको उपवास की आदत न थी। दो-तीन दिन बाद ही उनको उल्टिया होने लगी, चक्कर आने लगे। उनका जो ब्राह्मण रसोइया था वह कहता—अन्न छूटा तो घर छूटा। बापू इधर हिम्मत बढा कर जाते, उधर वे लोग घबरा देते।

कभी-कभी वह ज्यादा घबराने लगती तब मै बापू के पास भागती जाती और कहती—"चलिए न, वह तो कै कर रही हैं।"

शाम को बापूजी आते तब उनकी आधी बीमारी तो बापूजी का हँसता हुआ चेहरा देखकर ही दूर हो जाती। बापूजी कहते, "आज तो तबियत और भी अच्छी है।" इस प्रकार वे बढ़ावा देते रहते। इसी तरह पंद्रह दिन तक उनको नीबू और पानी पर रखा। बाद मे तो वह बापू के

साथ मील-मील भर घूम लेती थी।

उनपर बापूजी का कुछ ऐसा असर हुआ कि वह बराबर खादी पहनती और खान-पान मे भी फल, उबली सब्जी और नीबू का ही उपयोग अधिक करती।

कलकत्ते मे काग्रेस का अधिवेशन होनेवाला था। प० मोतीलाल नेहरू अध्यक्ष चुने गये थे। देखने की इच्छा तो थी ही। लेकिन जब जमनालालजी ने कहा कि वहा बडे लोगो के यहा ठहरना पडेगा, इसलिए बच्चो के लिए अच्छे कपडे सिलवा लो, तब मेरी हिम्मत टूट गई। उस समय एक तो साधारण खादी ही महगी थी, उसपर से बढिया खादी के कपडे सिलाने का प्रश्न आ गया। फिर मेरे सामने यह बात भी रही कि बाद मे इन कपडो का क्या होगा। मैने सोचा कि मेरे न जाने से यह सारा खर्च बच जायगा। उस समय लडकी कमला गर्भवती थी। मैने सोचा कि यदि कमला वहाँ चली जाय तो उसपर अच्छे सस्कार पडेगे। इसलिए मैने जमनालालजी से कमला को साथ ले जाने के लिए कहा। वह सहज भाव से उसे ले गये। लेकिन वहा अधिक घूमने-फिरने से उसकी तबियत खराब हो गई और जमनालालजी को बडी परेशानी हो गई। जमनालालजी को मेरा और कमला की सास का भी डर लगा होगा कि वहा जाकर क्या कहेगे ? दो-चार दिन वहा इलाज करके उन्होने उसे वर्धा भिजवा दिया। जब मुझे यह सब मालूम हुआ तो मुझे अपनी कजूसी और असावधानी पर बडा दुःख हुआ। लेकिन बाद मे पछताने से क्या होता ?

: २१ :

नमक-सत्याग्रह

जब साबरमती-आश्रम मे नमक-सत्याग्रह की चर्चा चली थी तब मै वही पर थी। कई दिनो तक आश्रमवासियो की महत्वपूर्ण सभाएँ होती रही। बापूजी उनके साथ चर्चा करते रहते। मै भी चर्चा मे उपस्थित रहती। बापूजी ने कहा, "सत्याग्रह मे जिसको शामिल होना हो, वह निस्सकोच रूप से शामिल होवे। पर उसे सर्वस्व त्याग के लिए तैयार रहना चाहिए। यह एक गम्भीर प्रश्न है और शामिल होने से पहले अपने घरवालो से पूछकर, सलाह-मशविरा करके, जो अपने को इसमे होम सके वे ही अपना नाम दे। जिनकी पूरी तैयारी न हो, या थोडी-बहुत कमजोरी हो, वे हिम्मत के साथ साफ-साफ इन्कार कर दे, यह मुझे अच्छा लगेगा। स्त्री-पुरुष सब इसमे शामिल हो सकते हैं।"

बापूजी के इस निर्णय से आश्रम-भर मे सनसनी फैल गई। हर स्त्री-पुरुष के मुँह पर यही चर्चा और यही बात थी। गाँधीजी की प्रेरणा और संगति से वातावरण मे पहले से ही जोश था, वह अब और बढ गया और दिन-पर-दिन बढता ही गया। अन्त मे बापूजी के साथ जानेवालो की सूची तैयार होने लगी। उस सूची मे ऐसे लोगो के नाम थे जो स्वराज्य लेकर ही घर लौटेगे या उस काम मे लग जायँगे, ऐसा व्रत लिये हुए थे। कुल उनासी आदमी तैयार हुए।

रोज-रोज की चर्चाओ से उत्साह तो सबमे था, पर जमनालालजी की गम्भीरता बढती ही गई। उसका शब्दो में वर्णन करना कठिन है। हम दोनो मे चर्चा हुई। उन्होने कहा, "इस काम में मेरी तो सर्वस्व होमने की तैयारी है, अपनी तू देख।" मैने उत्तर दिया, "बापूजी की टुकडी में अपने कुटुम्ब का एक आदमी तो होना ही चाहिए।" कमलनयन के लिए

बापूजी से पूछने गई। बापूजी ने कहा कि उसकी उम्र अठारह वर्ष से कम है, इसलिए उसे नही लिया जा सकता।

बापूजी के इस उत्तर से पहले तो मै सकपकाई, पर जब मुझे मालूम हुआ कि अठारह वर्ष से कम उम्र के एक लडके को लिया गया है तब मैने बापूजी से कहा, "जब आपने एक लडके को लिया है तब इसको भी इजाजत दीजिए।"

बापूजी ने जवाब दिया, "इसे अपवाद रूप मे ले लिया है। एकाध की बात अलग है, ज्यादा लेना ठीक नही।" पर जब मैंने बहुत आग्रह किया तब बापूजी मान गए। अब कमलनयन को बुलाना था।

कमलनयन वर्धा-आश्रम मे था। पिछले साल डेढ साल से वह मलेरिया और काला आजार से पीडित था। एकसौ तीन-चार डिगरी तक बुखार हो जाया करता था। काफी कमजोर था, फिर भी यह समाचार पाकर वह उछल पडा। आश्रम से समाचार आया कि वह आना चाहता है, लेकिन उसका स्वास्थ्य जाने लायक नही है। मै तो चाहती थी कि वह बापूजी के साथ जाय पर बापूजी ने कहा "अभी तो वह बीमार है। अच्छा होने पर बीच मे भी टुकडी मे ले लेंगे।" पर मै तो घर का एक आदमी इस सत्याग्रह मे देना ही चाहती थी। जमनालालजी का भानजा प्रह्लाद पोद्दार वही विद्यापीठ मे पढता था। उसने जाने की स्वीकृति दी, तो उसे शामिल करा दिया।

अन्त में दाडी-कूच की तिथि बापू ने जाहिर कर दी। चैत कृष्ण १२, गुरुवार, ता० १२ मार्च का वह दिन था। सब लोगो को यही लग रहा था कि बापूजी दाडी-कूच के पहले ही पकड लिये जायँगे। अब पुलिस आई, अब पुलिस आई, इसी खयाल से लोग रात-रात भर जागते रहते। बापूजी का काम तो पूर्ववत् स्वाभाविक रीति से चलता रहता। वह तो बराबर नीद भी ले लेते। पर दूसरो को चैन कहाँ ?

दाडी-कूच के पहले दिन की शाम की प्रार्थना अद्भुत थी। साबरमती के तट पर हजारो लोग जमा हो गए थे। गम्भीरता छाई हुई थी। कुछ उत्तेजना भी थी। लेकिन बापूजी ने ज्योही खडे होकर अगुली बताई कि भीड मे निस्तब्धता छा गई। वातावरण एकदम गम्भीर बन गया।

उन्होंने कहा, "मै यहाँपर स्वराज्य लेकर ही लौटूँगा, अन्यथा इसे मेरी अन्तिम प्रार्थना ही समझे।" इन शब्दों को सुनकर जनता की जो हालत हुई, उसे शब्दो मे नही लिखा जा सकता। वह चित्र आज भी आँखो के सामने है।

दूसरे दिन सवेरे बापूजी आश्रम से विदा होनेवाले थे। लोग सडको पर, झाडो पर रात से ही बैठे थे। वे शकित थे कि शायद बापूजी को विदा होने के पहले ही पकड लिया जाय। दूसरे दिन सवेरे की प्रार्थना होते ही वह निकल पडे। विदाई का वह प्रसग राम-वनवास जैसा ही हृदय को द्रवित करनेवाला था। लाखो लोग उनके पीछे भान भूलकर चल रहे थे, मानो समुद्र ही उमड पडा था। न कपडो की सुधि थी, न जूतो की। बच्चो और स्त्रियो का भी वहाँ क्या पता लगता! अद्भुत था वह दृश्य!

घर का प्रह्लाद टुकडी मे था ही। फिर भी मेरी भावना इस दृश्य को देखकर प्रबल हो उठी कि कमल को टुकडी में होना ही चाहिए। मै तो उत्तेजित थी ही। जमनालालजी गम्भीर थे। उनका दिमाग इन्ही विचारो से भरा था कि बापूजी के शुरू किये गए काम को सफलता कैसे मिलेगी? उनका सारा चित्त काम की रचना मे लगा हुआ था। हम दो-तीन पडावो तक तो बापूजी के साथ-साथ गए, पर बाद मे बापूजी ने सबको लौटा दिया। मेरा मन नही माना तो मै बापूजी से इजाजत लेकर कमलनयन को लाने के लिए वर्धा पहुँच गई। जमनालालजी विलेपारले (बम्बई) मे सत्याग्रह-छावनी के काम मे लग गए।

मै जल्दी-से-जल्दी कमल को टुकडी मे भेजने की तैयारी से वर्धा आई और सीधी आश्रम में पहुँची। देखने पर मालूम हुआ कि कमल तो बुखार मे पडा है। पर मुझे तो एक ही धुन लगी हुई थी। मैं बुखार मे ही उसे बजाजवाडी ले आई और टुकडी मे जाने के लिए तैयार करने लगी। रातो-रात तैयारी के बाद सुबह की गाडी से ही रवाना होकर उसे बापूजी की टुकडी मे दाखिल करा दिया। इधर जमनालालजी तथा किशोरलालभाई को सरकार बाहर कैसे रहने देती। काम शुरू करते ही उन्हें पकड लिया गया। बच्चियों को कन्याश्रम में रखकर मैं भी विलेपारले पहुँची।

कमलनयन बीमार तो था ही। पैदल-यात्रा के कारण उसकी आँखें सूज

गई और दीखना वन्द हो गया। वापूजी ने डाक्टर से पूछा तो उसने कहा कि इसकी आँखो की ज्योति गई। अब नही दीखेगा। वापूजी ने आँखो पर मिट्टी वाँधने को कहा। अब मैं सोचने लगी कि जोश मे मैंने वापू को एक सकट मे ही डाल दिया और वच्चे पर भी एक तरह से जुल्म किया। पर वापू ने प्रेम से यह सकट उठाया। अब सवाल था कि कमलनयन का क्या किया जाय? टुकडी मे ले जाना तो असम्भव था और टुकडी का एक सिपाही होने के कारण वह वापस घर भी नही जा सकता था। अतः उसे गुजरात विद्यापीठ को रवाना कर दिया।

इधर विलेपारले-छावनी मे आकर मैंने देखा कि स्त्री-पुरुषो में वहुत जोश भरा है। सभा व्याख्यान, नमक लाने के लिए टुकडियो का आना-जाना, ताडी की दूकानो पर धरना देने आदि काम वडे उत्साह से चल रहे थे। मैं एक ताडी की दूकान के सामने धरना दे रही थी। वहा एक वूढा आदमी नशे मे चूर होकर ताडी पी रहा था। मैं उसके पास जाकर समझाने लगी कि ताडी मत पीओ, ताडी पीना पाप है। पर उसके मुँह की गध को सहना कठिन था। फिर भी मैं समझाती रही। मुझे यह भी खयाल नही रहा कि नशे मे आदमी को समझाना बेकार होता है।

जगह-जगह सभाएँ होती और अच्छे-अच्छे कार्यकर्त्ता और वक्ता पकडे जाते। नए-नए तैयार होने लगे। मेरी भी वोलने की वारी आई। मैं हिन्दी, मराठी, गुजराती और मारवाडी भाषाओ मे वोलने लगी। शुद्ध तो मुझे एक भी भाषा नही आती थी, पर कम पढे-लिखे लोगो और स्त्रियो को मेरी बोल-चाल की भाषा मे रस आता था। गाँव-वालो को भी अच्छा लगता था। एक ही सभा मे कई भाषा जाननेवाले होते थे। सभा मे मुझे जिस भाषावाली वहने सामने दीख पडती, उसी भाषा मे मैं वोलने लग जाती। 'अन्धो में काने राव' की तरह मेरी पूछ होने लगी। पर मेरा हाल तो भगवान् ही जानता था।

गाय के दूध का मेरा व्रत था। पर सव जगह उसका मिलना सम्भव न होता था। मै उवला साग ही खाती। किसी तरह गाय के दही का इन्तजाम हो जाता। लेकिन भोजन-पान की अव्यवस्थितता रहती ही। उससे मेरे पेट मे तकलीफ रहने लगी। दस्त भी लग गये थे। लेकिन ऐसी तवियत

मे भी व्याख्यानो के लिए जाना पडता था। यद्यपि मैं थकी हुई होती थी, फिर भी खडी होने पर और लोगो को देखकर मुझे जोश आ जाता और ग्रामाफोन के रिकार्ड की तरह भाषण दे डालती।

एक रोज सुबह पाच बजे मुझे उठाया गया और कहा गया कि स्वय-सेवक धारासणा जा रहे हैं। मै उनको आशीर्वाद दूँ। मै हडबडाकर उठ बैठी और बाहर आई। जोश तो भरा ही पडा था, मैंने कहा—"भाइयो, जीत कर आओगे तो अमर हो जाओगे और मरोगे तो आकाश मे तारो की तरह चमकोगे।" ये शब्द कहकर मैं पाखाने गई। वहाँ जब मैंने अपने शब्दो पर विचार किया तब मुझे रोना आ गया। इन भाइयो को ऐसा कहने मे मुझे क्या जोर लगा? अगर कमलनयन इस टुकडी मे होता तो क्या मै ये शब्द बोल पाती? मुझे यह भी खयाल आया कि मुझमे और जमनालालजी मे इतना फरक है कि वह कर लेते, और दूसरो को कहने मे उन्हे सकोच होता। मै दूसरो को झट से कह देती हूँ। मैंने बोल तो दिया, पर मै विकल हो उठी। इच्छा हुई कि मैं भी धारासणा जाऊँ। अपनी ननद केशरबाई तथा ऋषभदासजी राका के साथ धारासणा के लिए रवाना हो गई। रात को तीन-चार बजे बलसाड़ स्टेशन पर पहुचे। स्टेशन पर एकदम गम्भीर और डरावना वातावरण था। अँधेरे मे चारो ओर पुलिसवाले ही दिखाई पडते थे। उस गम्भीर और अँधेरे वातावरण मे कोई रास्ता बतानेवाला भी नही था। आखिर एक तागेवाले ने ले चलने को कहा। परन्तु उसने दस-बारह रुपये मागे। हमने कहा कि जो लेना हो सो ले लेना, पर हमे ६ बजे के पहले पहुचा दे। लोग धारासणा न पहुचने पावे, इसलिए रास्ते भर मे जगह-जगह पुलिस की चौकियाँ लगी हुई थी। पर लोग जिधर धारासणा मे कैम्प लगा हुआ था वहाँ पहुँच ही रहे थे। तागे या दूसरे वाहन कठिनाई से जा पाते थे। स्त्रिया होने से हमारे ताँगे को जाने दिया गया। ताँगेवाला भी होशियार था। हमें उसने ६ बजने में पाँच मिनट पूर्व ही धारासणा कैम्प मे पहुँचा दिया।

पुलिस का पूरा इन्तजाम होने पर भी हजारो आदमी वहाँ जमा हो गये थे। चारो तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। वहाँ अब्वास तैयबजी और सरोजिनीदेवी के भाषण हुए। भाषण होते ही टुकडियाँ रवाना

हो गई । उधर पुलिस भी डण्डा लेकर तैयार थी । उन्हे शराब पिला कर निहत्थे स्वयसेवको पर डण्डे-लाठियाँ चलाने के लिए तैयार किया गया था । आटिया नामक पारसी अफसर इनका सरदार था । स्वय-सेवको ने नमक के डिपो पर धावा बोल दिया । चारो तरफ लोहे के तारो की वाढ लगी हुई थी । तार काटने के लिए स्वयसेवको को चिमटे दिये गये थे । ज्योही स्वयसेवक आगे वढे कि पुलिस ने डण्डो की ऐसी मार मारी कि उतनी बेरहमी से जानवरो को भी नही मारा जाता । डण्डा लगता और स्वयसेवक धरती पर गिर जाता । जिन्हे मार कम लगती, वे आगे वढते और जिन्हे ज्यादा लगती, वे बेहोश हो जाते । गिरे हुओ को स्ट्रेचर पर ले जाया जाता । कई स्वयसेवक तो होश मे आते ही दौड पडते । डण्डो की मार के वावजूद जव स्वयसेवक आगे ही वढते रहे तव पुलिस के सरदार ने घुडसवार को उनपर छोड दिया, जिससे एकदम सन्नाटा छा गया । घोडो की टापो और डण्डो से स्वयसेवक गिरने लगे । साढे दस वजे तक लगभग सातसौ घायलो को स्ट्रेचर पर उठाकर झौपडी आदि मे तथा खुले मैदान मे सुलाया गया । चारो ओर की जगह घायलो से भर गई । चिकित्सा की व्यवस्था थी, पर वहुत अधिक लोगो के आ जाने से जिसे जो सूझा, वही उसमे लग गया । मै एक घडा पानी लेकर पहुँच गई और गीले कपडे से आँखो पर पानी के छीटे देने लगी । घायलो में श्री ढवण भी थे । उन्होने होश आते ही फिर आगे वढने की तैयारी वताई । वोले—"जानकीबाई, तुम्ही त्याच्या कडे लक्ष्या ठेवा ।" उनका इशारा अपनी पत्नी की ओर था । मानो कह रहे थे कि वह तो मरने की तैयारी से वढ रहे हैं, पत्नी की सार-सम्हाल अब मेरे जिम्मे । मैंने इशारे में ही उन्हे ठहरने को कहा । वह वहुत घायल हो चुके थे । यो तो सभी स्वयसेवको ने मार खाने में काफी वीरता और साहस का परिचय दिया था, पर मोहन नामक एक गुजराती लडके ने तो कमाल ही कर दिया । पहले धावे में उसे उठाकर काटो की वाढ मे झोक दिया गया । दूसरी वार उसकी अंगुलियो पर डण्डो की ऐसी मार पडी कि अँगुलियो की हड्डिया टूट गई और जव तीसरी वार वह आगे वढा तव उसका हाथ ही टूट गया । कमर मे भी चोट आई ।

उसके हाथ की अँगुलियाँ अब भी टेढी हैं। कितना जोश और कितना उत्साह था····!

उस दिन धावे के सरदार नरहरिभाई परीख थे। उनके सिर मे डण्डे की भयकर चोट आई थी। उन्हे खून से लथपथ देखकर विट्ठल-भाई पटेल स्तब्ध रह गये। उनकी भव्य और लम्बी सफेद दाढी वाली मुद्रा पत्थर की मूर्ति-जैसी लगती थी। नरहरिभाई का घाव धोकर मरहम-पट्टी की गई। होश मे आते ही वह आगे बढने को तैयार हो गए। लेकिन समय हो जाने से सत्याग्रह बन्द रखा गया। यह एक अजीब लडाई थी। कहते हैं कि लडाई मे तो दोनो पक्षो की ओर से वार होता है, दोनो पक्ष अपनी-अपनी बहादुरी के दाव-पेच बताते हैं और प्राय समान शक्ति से भिडते है। पर यहा तो एक ओर पुलिस मारने मे वीरता दिखा रही थी और दूसरी ओर स्वयसेवक मार खाने मे वीरता का परिचय दे रहे थे।

हम घायलो की टुकडी के साथ छावनी लौट आए। विलेपारले-छावनी की टुकडी ने काफी वीरता दिखलाई थी और वहा काम भी बहुत अच्छा होता था। सैकडो भाई जेल गए, और काम भी चलता रहा। आखिर सरकार यह सब कबतक सहन करती। इस काम को सरकार के खिलाफ कहकर छावनी जब्त कर ली। लोग गिरफ्तार कर लिये गए।

: २२ :

आन्दोलन में योग

विलेपारले छावनी जब्त हुई, उस समय मैं माटुगा मे केशवदेवजी नेवटिया के यहा रहती थी। एक दिन पूज्य कस्तूरवा के साथ गोशी-बहन, पेरीनबहन आदि चार-पाँच बहने आई और कहने लगी कि अव यहा वहने पकडी जाने लगी हैं। आपको काम नही करने दिया जायगा। आप भी पकड ली जायगी। जेल मे कम या ज्यादा सख्या का महत्त्व नही है, पर काम तो चलना ही चाहिए। इसलिए अगर आप कलकत्ते जाकर विलायती कपडे के बहिष्कार का काम हाथ मे ले तो वहुत अच्छा होगा। वहा के मारवाडी-समाज मे आप ज्यादा काम कर सकेंगी।

जेल में जमनालालजी के पास भी ये बाते पहुचने लगी। वाहरवालो के कष्ट की बाते सुनकर उनको अच्छा नही लगता था और वह कहते थे कि हम तो यहा (जेल मे) आराम से रहे और बाहर कार्यकर्त्ता कष्ट मे हो, यह अच्छा नही। लेकिन उन्हे जब मालूम होता कि उनके आत्मीय लोग बाहर काम कर रहे हैं तब उन्हे बडी खुशी होती और उत्साह वढाने के लिए वह उन्हे चिट्ठिया लिखते। एक पत्र मे तो उन्होने मुझे यहातक लिख दिया कि अबतक तो तुम जमनालाल की पत्नी के रूप में ही पहचानी जाती थी, पर अब जब मैं छूटकर आऊगा तब लोग कहेगे कि जानकीबाई के पति आए हैं। यही उनकी महानता थी। वह छोटे-से-छोटे कार्यकर्त्ता का भी उत्साह इतना बढाते कि वह और अधिक उत्साह और तेजी से काम पर जुट जाता। वाहर के व्याख्यानो के कारण मेरा नाम अखबारो मे आने लगा। एक दिन बापूजी ने यरवदा जेल से पत्र भेजा :

२७–७–१९३०

चि० जानकीबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। अब उत्साह क्यो न होगा ? अब तो भाषण

करती हो, अखबारो मे नाम आता है। समय-समय पर जानकीबाई बजाज का नाम अखबारो मे देखता हू, तब उससे ऐसा ही लगना चाहिए कि जमनालाल और हम सब जेल मे ही रहे। मुझे तो विश्वास था ही कि तुम्हारे दिखाई देनेवाले अविश्वास के पीछे पूरा आत्मविश्वास था। ईश्वर उसमे प्रगति करे।

बापू के आशीर्वाद

मेरा अधिक-से-अधिक उपयोग हो, इस खयाल से पेरीनबहन और कस्तूरबा आदि के समझाने पर मै कलकत्ता के लिए तैयार हो गई। कमला मेरे साथ रही। बडी मुश्किल से उसकी सास ने दस दिन के लिए उसको मेरे साथ किया, पर वह दो महीने मेरे साथ रही।

हमलोग वर्धा आए। मैने जाजूजी से कहा कि मुझे कलकत्ता विलायती कपडा बन्द कराने के लिए जाना है। उन्होने कहा कि कलकत्ता भले ही जाओ, पर वहा विलायती कपडे का बन्द होना मुश्किल है। मै सोच मे पड गई कि अब क्या करू? बम्बई से कलकत्ता के लिए आई और वहा काम की उम्मीद कम ही है। फिर बिना बुलाए जाने पर काम कैसे होगा? इसलिए पहले बिहार जाने का तय किया। बिहारी लोग सरल होते हैं और वे मेरा उपयोग ले सकेंगे, ऐसा उस समय समझा गया। मैं कमला, मदालसा महादेवलालजी सर्राफ के साथ बिहार गई।

उस समय वहा आतक छाया हुआ था। सभा करना, सभा में आना-जाना, भाषण करनेवालो को ठहरने देना आदि अपराध माना जाता था। इस कारण लोग पकडे जाते थे, जुरमाना भी होता था। लक्ष्मीबाबू हमारा इन्तजाम करते थे। पर कही-कही तो ठहरने को भी जगह नही मिलती थी। धर्मशाला आदि मे ठहरना पडता था। गाव मे जाने पर सभा की डोड़ी पिटवाई जाती। जैसे-तैसे करके कुछ लोग सभा मे आ ही जाते। पुरुषो को तो भाषण करते ही पकड लिया जाता, पर स्त्रियो को पकडने मे वहा के अधिकारियो को सकोच होता। हमारी तो जेल जाने की तैयारी थी ही। एक महीने मे हम ४५ गाव घूमे। एक-एक गाव मे लगभग तीन-तीन सभाए होती। एक सार्वजनिक, दूसरी व्यापारियो की और तीसरी बहनो की। महादेवलालजी तो सभा मे कुछ बोलते ही न थे, क्योकि वह

जानते थे कि बोलते ही पकड लिये जायगे । मदालसा कुछ-कुछ बोलती थी । अधिक तो मुझे ही बोलना पडता था। आखिर मेरा गला बैठ गया। मै बोलती तो लोगो को सुनाई न देता, इसलिए एक दिन मैंने कमला से बोलने के लिए कहा।

कमला उसके लिए तैयार ही नही होती थी। आखिर बहुत जोर देने पर एकदम उठी और बोली—"आप सब लोग बिल्ली की तरह क्या बैठे हो ? नेता लोग तो जेलो मे हैं।" इस तरह के दस-पाच शब्द बोलकर बैठ गई। यही उसका पहला और आखिरी भाषण था।

घूमते-घूमते हम दुमका पहुँचे। वहाँ हमारे सम्बन्धी और परिचित थे। लेकिन वे हमें अपने यहाँ उतार नही सकते थे और न खुले दिल से सत्कार ही कर सकते थे। उनके लिए तो एक प्रकार का धर्म-सकट ही था। अगर वे हमें अपने यहाँ ठहराते या खिलाते-पिलाते तो जेल जाने या जब्ती का डर था और कुछ न करते तो जी दुखता। पर हमने उन्हे अभय-दान दे दिया और हम स्वय ही एक धर्मशाला मे जाकर ठहर गए। उन्होने डरते-डरते किसीके हाथ एक खास किस्म के लोटे मे, जो कि मारवाडी-समाज में शौच जाने के लिए के होते हैं, गाय का दूध भरकर भिजवा दिया और एक कोने मे रखकर इशारा कर दिया। यह भी कहलाया कि अगर दूकान पर आप लोग आवेगे तो हमारी बडी मुश्किल हो जायगी। लेकिन हमें तो सब दूकानो पर जाना ही था। लोगो मे इतना आतक था कि वहाँ हमारी सभा हो ही नही सकती थी। डोडी भी कौन पीटता ? हमसे बात करने मे भी लोग डरते थे। दूकान से उठकर जाते तब उनकी कही जान मे जान आती। पुलिसवाले भी चक्कर लगा रहे थे, पर वे भी क्या करते ? शायद उन्हे स्त्रियो को पकडने की अनुमति न हो, और दूकानदार तो कानून के शिकजे के बाहर ही थे। वे तो बेचारे 'आओ-बैठो' तक नही कहते थे। पुलिसवाले हमारे पीछे-पीछे ही घूमते थे।

बिहार के इस दौरे मे हमे बिहारवालो की सरलता, नम्रता और भोलेपन का बहुत अनुभव मिला। यो राजेन्द्रबाबू से पुराना परिचय था और उनकी नम्रता, सरलता और शान्त स्वभाव से हम सब परिचित थे,

पर विहार जाने पर विहारियो के सद्गुणो का और भी अधिक परिचय मिला। उन दिनो विहार मे इतना सख्त परदा था कि हाथ पकडकर स्त्रियो की सभा मे बहनो को लाने की कोशिश करनी पडती थी। स्त्रियो की बात तो दूर, पुरुष भी घबडाते थे कि हमारी स्त्रियाँ सभा मे कैसे जायँगी। सकोचवश वे हमे मना नही कर सकते थे और स्त्रियो का बाहर निकलना भी उन्हे अच्छा नही लगता था, क्योकि सामाजिक रिवाज ही कुछ ऐसा था। समाज का डर भी तो कोई चीज है!

दुमका से हम कलकत्ता पहुँचे। वहाँ हम बैरिस्टर कालीप्रसादजी खेतान के यहाँ गए। जमनालालजी उन्हीके यहाँ ठहरा करते थे। खबर लगते ही सुभापबाबू मिलने आए। वडे प्रेम से बाते की। उनकी इच्छा मुझे अधिक-से-अधिक सहयोग देने की थी। मै तो विदेशी कपडो के वहिष्कार के लिए वहाँ गई थी। उन्होने इस विषय मे सलाह दी और दूसरे लोगो से भी बात की।

एक दिन मै इसी सिलसिले मे दासबाबू के यहाँ गई। उनका तो सन् २४-२५ मे स्वर्गवास हो चुका था। पर उनकी पत्नी वासन्तीदेवी से मेरी बाते हुई। मुझपर तो आन्दोलन का नशा छाया हुआ था। मैने उनको उपदेश देना शुरू किया। मैने कहा—"आप काम करे और जेल जायँ तो लोगो पर बहुत असर पडेगा।" उनकी परिस्थिति की कल्पना मुझे थी ही नही। उनके पुत्र का भी देहान्त हो चुका था। विधवा वहू की जवाबदारी भी उनपर थी। इस विपत्ति मे भी उन्होने सहज भाव से उत्तर दिया कि विधवा वहू को अकेले छोडना कठिन है। जो महान होते है, वे दु.ख मे भी अपनी सहज नम्रता नही खोते।

लेकिन मेरी ऐसी बातो से महावीरप्रसादजी पोद्दार हँसा करते थे। वह जानते थे कि मुझमे जोश तो बहुत है, पर इतने बडे शहर मे यह सब होना कठिन है। लेकिन वहाँ सीतारामजी सेक्सरिया मुझे बराबर सहयोग देते थे।

कुछ लोग बाजार मे जाकर पिकेटिंग करने लगे। उन्हे पकडा जाने लगा, पर स्त्रियो की तैयारी कम देखी।

दो महीने तक मै वहाँ रही। और कामो के साथ-साथ इन दिनो मैने वहाँ खादी-प्रचार और परदा-निवारण का भी कुछ काम किया।

: २३ :

घर में वहू आई

कमलनयन छोटी उम्र से ही विनोवाजी के आश्रम में रहता था। शुरू-शुरू में वही एक छोटा लडका विनोवाजी के आश्रम मे रहा था। विनोवाजी स्वय उसकी देखभाल रखते थे और आश्रम के कामो के अलावा उसको लिखाने-पढाने का भी खयाल रखते थे। कमलनयन का आश्रम के कामो में तो मन लग गया था, परन्तु लिखने-पढने मे उसका पूरा मन नही लगता था। जवाहरलालजी और घनश्यामदासजी (विडला) कमलनयन की लिखाई-पढाई के वारे में जमनालालजी को ठपका (उलहना) देते रहते थे। एक दिन जवाहरलालजी ने वापू से कह दिया, "कमलनयन जमनालालजी का काम कैसे सम्हालेगा ? इसे वोलना-लिखना तक तो आता नही। गढा खोदने, सडास साफ करने, आटा पीसने, लकडी चीरने और रोटी वनाने वगैरा मे आगे दुनिया में कैसे काम चल सकेगा ? कुछ पढाई-लिखाई भी तो होनी चाहिए। कुछ अग्रेजी भी तो सीखनी चाहिए।" वापू ने कहा—"कमलनयन की इच्छा हो तो पढाई शुरू [illegible] सकते है। वाकी उसे आश्रम के ही कामो में रस आता रहा है, [illegible] मन नही लगता। विनोवा कहते हैं कि जव पढाई की [illegible] पढ लेगा।"

डांडी-मार्च के वाद और नमक-सत्याग्रह के [illegible] गुजरात विद्यापीठ मे स्वयसेवक शिविर में रखा गया [illegible] हुआ तो उसकी इच्छा कुछ पढने की हुई। [illegible] पढाने का निश्चय हुआ। श्री वालजीभाई [illegible] अपने स्वास्थ्य-सुधार व हवाफेर के लिए [illegible] जा रहे थे। वापूजी ने कमल को [illegible]

भाई ने काफी परिश्रम उसपर किया। इधर बापू गोलमेज-परिषद् (राउन्ड टेवल कान्फ्रेन्स) मे चले गये। उनके लौटने के पूर्व ही यू० पी० मे लगान-बन्दी आन्दोलन छिड गया। बापूजी ने आते ही, जितने डाँडी-यात्री थे, उन सबको साबरमती-आश्रम मे बुलवाया, जिससे आगे का कार्यक्रम निश्चित किया जा सके। कमल को भी इसी प्रकार का पत्र गया और उसमे ताकीद थी कि उसको सीधे आश्रम मे आ जाना है, और उससे पहले किसी सत्याग्रह आदि मे भाग नही लेना है। कमल बालजी-भाई से छुट्टी लेकर साबरमती जाने के लिए निकल पडा। दिसम्बर के आखिरी दिन थे। उन दिनो बागेश्वर मे, जो कि अलमोडा से तीस-चालीस मील उत्तर मे गोमती और सरयू नदी के सगम पर है, सालाना बड़ा मेला भरा करता है। उस मेले मे तिब्बत के भोटिया लोग माल लेकर ऊपर से नीचे आते हैं और गर्मियो के शुरू मे यहाँ से माल लेकर तिब्बत चले जाते हैं। कमल ने सोचा कि अलमोडा से नीचे उतरकर बागेश्वर होते हुए चला जाय तो मेला भी देखा जा सकेगा। साबरमती ठीक समय से पहुँचा जा सके, यह हिसाब देखकर वह अलमोडा से निकल पडा।

मेले के प्रबन्ध के वास्ते अलमोडा से कई काग्रेसी कार्यकर्त्ता पहले से ही वहाँ पहुँच चुके थे। इसी बीच यू० पी० मे लगान-बन्दी आन्दोलन शुरू हो जाने से मेले मे गये हुए कार्यकर्त्ताओ को भी जोश था और उन्होने एक मीटिग बुलाने का ऐलान किया। मीटिग का मुख्य उद्देश्य मेले मे सफाई की व्यवस्था आदि के बारे मे विचार करने का था, फिर भी कार्यकर्त्ता लोगो का राजनैतिक व्याख्यान करने का भी इरादा था। सरकार ने मेले के दौरान मे १४४ की धारा लगाकर मीटिग पर पाबन्दी लगा दी। जिस रोज मीटिंग होनेवाली थी, उसी रोज कमल भी वहाँ पहुँचा। जब कार्यकर्त्ताओ को उसके पहुँचने की सूचना मिली तो वे सब उससे मिलने आये। वे लोग काफी जोश में थे और १४४ की धारा का लगना अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझकर उसे तोडने का निश्चय कर चुके थे। उन्होने कमल से भी आग्रह किया कि मीटिग मे बोलना होगा। कमल नमक-सत्याग्रह मे कई बार पकडा गया था, परन्तु कम

उम्र का होने से छोड दिया गया था। इस कारण जेल नही जा सका था। इसका उसके मन मे असतोष भी था। यहाँ स्वाभाविक ही उसको अच्छा मौका मिला, ऐसा उसको लगा। परन्तु चूँकि बापूजी का आदेश आ चुका था, उसने कार्यकर्त्ताओ को समझाने का काफी प्रयत्न किया। उसने कहा कि बापूजी के आदेश को तोडना नियम के विरुद्ध होगा। उसने मीटिंग में भाग लेने की अपनी लाचारी प्रकट की। पर कार्यकर्त्ता आग्रही थे। वे बडी मुश्किल से इस बात पर राजी हुए। उन्होने कहा कि कमल मीटिंग में जरूर शामिल हो, भले ही भाषण न दे। कमल इस बात को मान गया।

शाम को मीटिंग मे सब लोग पहुँचे तो पता चला कि कार्यकर्त्ताओ ने कमल का नाम भी उससे बिना पूछे ही बोलनेवालो मे घोषित कर दिया है। यही नही, पहले से ऐलान भी हो चुका है और पर्चे भी बँट चुके हैं। यह देखकर उसे ताज्जुब हुआ, पर खुशी भी हुई कि जेल जाने का मौका तो आया। लेकिन दूसरी ओर लाचारी भी महसूस होती थी कि बापूजी ने तो कानून-भग करने को मना करके सीधे आश्रम पहुँचने को लिखा है। आखिर में बाध्य होकर उसने मीटिंग मे बोलना ही ठीक समझा। वहाँ वह मेले की व्यवस्था आदि के विषय पर ही बोला। उसने साफ जाहिर कर दिया कि बापूजी के आदेशानुसार वह किसी भी तरह राजनीति के विषय मे नही बोल सकता। लेकिन मीटिंग होने पर अन्य लोगो के साथ कमल को भी पुलिस ने पकड लिया।

वहाँ मजिस्ट्रेट नही था। उसे अपने सदर मुकाम से बुलाना पडा। तबतक तीन-चार रोज सबको हिरासत में ही रखा गया। बागेश्वर में किसी ग्वाले के मकान के नीचे के हिस्से को, जहाँ ढोरो को रखा जाता था, हवालात का रूप दे दिया गया। मजिस्ट्रेट के सामने कमल ने अपनी अक्खडता के मुताबिक जवाब दिये, जिसकी वजह से उसका मुकदमा करने मे मजिस्ट्रेट को बहुत देर लगी। मजिस्ट्रेट उसी रोज मुकदमा समाप्त करके अपने सदर मुकाम चला जाना चाहता था। वह सभव नही हो सका। इस नाराजी की वजह से या जो भी कुछ उसको लगा हो, उसने कमल को छ महीने की कडी सजा, कुछ जुरमाना और उसके बदले में

सजा तथा 'सी' क्लास दिया। दूसरे रोज सबको पैदल ही सोमेश्वर तक लाया गया और वहाँ से बस द्वारा अलमोडा की जेल पहुँचा दिया गया। अलमोडा मे कोई पन्द्रह रोज रखा। वहाँ छोटे लडको के लिए कोई प्रवध न था। इस कारण कमल व दूसरे एक साथी लडके का हरदोई-जेल मे, जहाँ लडको के लिए विशेष प्रबन्ध था, तबादला कर दिया गया। हरदोई-जेल मे वह करीव चार-पाँच महीने रहा। उसमे अधिकतर तो उसका समय 'सी' क्लास मे ही कडी सजा के साथ कटा। करीब १७ वर्ष की उम्र मे उसका ४२ पौंड वजन घट गया। इस बीच असेम्वली आदि मे सवाल-जवाव होने की वजह से उसे करीब दो-तीन हफ्ते अस्थायी तौर पर 'वी' क्लास दिया और बाद मे 'ए' क्लास कर दिया गया। उसके वाद उसको वरेली डिस्ट्रिक्ट जेल मे भेज दिया गया। वरेली मे 'ए' क्लास रहने से खुराक कुछ अच्छी मिली। आराम और अच्छे साथियों मे रहने से (साथियो मे श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित के पति श्री आर० एस०पडित भी थे। इनसे कमल का काफी निकट का परिचय हो गया और वे उसको सिखाने मे रस भी लेते थे) उसके खोये हुए वजन मे पद्रह-वीस पौंड वापस मिल गये। जेल मे सजा का वाकी भाग करीव एक महीना ही रहना पडा। जुरमाने की वसूली मे पुलिस ने वर्धा की दूकान पर जाकर कई चीजे जब्त कर ली और उनको बेचकर किसी कदर जुरमाना वसूल किया।

जेल से छूटने पर उसने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा की परीक्षा दी और १९३२ का सत्याग्रह वन्द हो जाने पर वापूजी की सलाह से प्रोफेसर जे० जे० वकील के स्कूल मे पूना और विलेपारले मे करीव साल भर पढाई की और फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मध्यमा की परीक्षा दी। १९३५ मे वापूजी ने उसको अँग्रेजी के अभ्यास के लिए सीलोन भिजवा दिया। इसी वीच कलकत्तेवाले श्री लक्ष्मणप्रसादजी पोद्दार की लडकी के साथ उसकी सगाई की वातचीत चली।

सावित्री वहुत सुन्दर थी, इसलिए मेरा मन तो उसकी ओर झुका हुआ था, पर काफी दुवली होने से मन मे डर भी था कि इसके वाल-बच्चे कैसे होगे? मैंने वापूजी से यह वात कही तो उन्होने भी मजाक मे कहा कि वात तो ठीक है। ऐसी नाजुक लड़की अपने यहाँ निभेगी भी कैसे?

लेकिन महादेवभाई ने तो मजाक की हद ही कर दी। वे बोले, "जानकी-बहन, आप लडकी के रूप पर तो मोहित हो रही हैं, पर यह तो तुम्हारे लडके को छोडकर भाग जायगी।" इस मजाक से मुझे धक्का तो लगा, पर मै तुरन्त संभल गई। मैंने कहा, "महादेवभाई, आखिर है तो मार-वाडी खून ! भागेगी कहा ?" सावित्री भी कभी-कभी महादेवभाई का वह मजाक दोहरा देती है और कहती है कि मेरी सच्ची परीक्षा तो उन्होने ही की थी।

लडकीवालो के विशेष आग्रह पर वापू ने सगाई पक्की कर दी। कल-कत्तेवालो की स्वाभाविक इच्छा थी कि शादी ठाट-बाट से हो, बरात मे काफी लोग आवे। बापूजी से सलाह करके बारात मे पद्रह आदमी ले जाना तय किया। बापूजी ने पाच आदमी सुझाये थे और विनोबाजी ने तीन।

वच्छराजजी के कुटुम्ब मे तीन पीढियो मे पहला लडका हुआ था। इसलिए गाव, कुटुम्ब तथा सम्बन्धियो की अपेक्षा थी कि उसकी शादी मे सबको बारात मे जाने का मौका मिलेगा। पर जमनालालजी ने जब पन्द्रह की सख्या तय की, जिनमे कि आधी स्त्रियाँ होगी, तो बहुतो को निराशा हुई और कुछ को तो बुरा भी लगा।

विवाह मे खादी का प्रयोग होना ही था। सावित्री की इच्छा जरी की साडी पहनने की थी। सो चर्खा सघ को खास आर्डर देकर जरी की साडी मगाई गई।

लडकीवालो ने कमलनयन के लिए खादी के ही कपडे बनवाये। रेशमी शेरवानी और जरी का साफा। कलकत्ते से एक स्टेशन पहले ही वे कपडे लेकर आये और उन्होने चाहा कि उन कपडो को पहनकर ही वर स्टेशन पर उतरे, पर कमलनयन वर्धा से ही सफेद कुर्ता, धोती, टोपी और केसरिया दुपट्टा लगाकर रवाना हुआ था और इसी पोशाक मे वह कलकत्ते उतरा। उसका कहना था कि खादी के सादे, अच्छे और सफेद कपडे ही धार्मिक विधि के समय होने चाहिए। विवाह की वेदी पर भी उसने यही कपडे पहने।

स्टेशन पर बारात के स्वागत का पूरा इन्तजाम था। पर जब बारात मे तेरह आदमी देखे तो लडकीवालो का उत्साह ठडा हो गया, क्योकि

उन्होंने बडी तैयारी की थी और समझा था कि कम-से-कम पचास-साठ लोग तो होंगे ही।

सुबह हम लोग पहुँचे और शाम को छह बजे फेरे हुए। दूसरे ही दिन हमें रवाना होना था। बिडलाजी अपने यहाँ पार्टी देना चाहते थे। लडकी-वाले अपने यहाँ जिमाना चाहते थे। जमनालालजी ने कहा कि हमको तो यहाँ एक भोजन करना है, कही भी हो। आखिर बिडलाजी के यहाँ पार्टी हुई। लडकीवाले परिवार के सब लोगो के लिए कपडे वगैरा देना चाहते थे। लेकिन हमने लेने से इन्कार कर दिया। रामकृष्ण के लिए भी उन्होंने कमल के समान ही कपडे और जेवर बनवाये थे, पर हमने कहा कि हम तो केवल वर के पाँच कपडे ले सकते हैं। मिलनी आदि का कोई नेगचार हमने लिया ही नही। कमलनयन अभी तक टीके का एक ही रुपया शकुन के तौर पर लिया करता है।

लडकीवालो ने अपनी लडकी को क्या दिया-लिया यह न तो कभी पूछा और न हमे इसकी कुछ भी कल्पना ही थी। वर्धा पहुँचने पर कलकत्ते के कुछ मित्रो वगैरा ने दहेज के बारे मे पूछताछ की कि कितना क्या-कुछ दहेज लिया तो जमनालालजी को बडा आश्चर्य हुआ क्योकि हमने दहेज मे कुछ भी नही लिया था।

: २४ :

जेल-यात्रा

इधर सत्याग्रह चल रहा था, उधर मैं विदेशी कपडे के वहिष्कार, शराव की दूकानो पर पिकेटिंग आदि के कामो मे लगी थी। जनवरी के दिन थे। लन्दन मे हो रही गोलमेज-परिषद् खतम हुई। वापूजी तथा और वडे-वडे नेता जेल से छूटे। गांधी-अर्विन समझौता हुआ। कराँची मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। वापूजी दूसरी गोलमेज-परिषद् मे विलायत गये। वहाँ से खाली हाथ लौटे और सत्याग्रह फिर शुरू हो गया। वापूजी तथा सारे नेता लोग गिरफ्तार हो गये। मैं भी सत्याग्रह के काम मे लग गई। इस वार वर्धा मे वहनो को इसमे भाग लेने के लिए तैयार करने लगी। वर्धा के मूलचन्दजी भैया की मा भी, जो परदे मे रहनेवाली और पुराने खयाल की मारवाडी महिला थी, जेल जाने को तैयार हो गई। मुझे जेल जाने की और वहनो को जेल के लिए तैयार करने की ऐसी धुन लगी, जैसे पीहर जाने का ही उत्साह हो। मेरा यह काम जोर से चलने लगा तव सरकारी अधिकारियो ने मुझे वाहर रखना ठीक न समझा और गिरफ्तार कर लिया। दूसरे दिन जेल मे ही मुकदमा हुआ और छह महीने की सजा दे दी गई।

जवतक मैं वर्धा-जेल में रही तवतक खाने का डव्वा घर से आता रहा, इसलिए कोई मुश्किल मालूम नही हुई। कुछ दिन पहले ही कमला के लडका हुआ था और वह वही थी। उसका भी रह-रहकर ध्यान आता था। कुछ दिन वर्धा रहने के वाद नागपुर वदली का हुक्म आया। मुझे डर लगा कि हे भगवान, अव कैसे होगा ? उस दिन रात को सोई तो सपने मे भी कमला के वच्चे को झूला झुलाने लगी। मेरा नागपुर ले जाना घरवालो को मालूम ही नही हो सका। 'गाधीजी की जय' के नारे

लगाते हुए हम जा रहे थे ।

अब मै नागपुर-जेल मे थी । जेल क्या था, एक बडा-सा राजमहल ही था। एक के बाद एक, इस तरह तीन-चार दरवाजे लाघने पर एक साफ कोठरी मिली । वहाँ दस कोठरिया थी । एक कोठरी मे जाली का पलग-कुरसी आदि सामान था । अपने साथ जो चीजे थी, उन्हे मैंने खोलकर घर की तरह जमा लिया ।

वहाँ के सुपरिन्टेण्डेन्ट अनुशासन के बडे कठोर थे और कैदी उन्हे जालिम कहा करते थे । मै वहाँ 'ए' क्लास मे थी । उन्होने मुझसे आवश्यक सामान आदि के बारे मे पूछा । मैने कह दिया—"और तो जो-कुछ है उसीमे चल जायगा, लेकिन मेरा गाय के ही घी-दूध का नियम है ।" उन्होने कहा कि गाय का दूध तो यहाँ से दे दिया जायगा, घी घर से मगवा सकती हो । मैने उबले साग और लूखी रोटी के लिए ही कहा, क्योकि मिर्च खाने की आदत नही थी ।

जब मैंने देखा कि वहाँ साथी कैदियो मे स्टोव सुलगाने के लिए दियासलाई की भी खीचा-तानी चलती है तब मैंने कच्चे दूध मे ही नीबू निचोडकर उसीका दही जमा लेने का तय किया । बैगन का उबला साग और लूखी रोटी आती । उसीपर बिना तपा घी रखकर खा लिया करती । ठडे पानी से ही नहाती और कपडे धो लेती । हमारे यहा टट्टी के लोटे को मिट्टी से मॉजने का रिवाज है, पर महाराष्ट्र मे इसपर इतना ध्यान नही दिया जाता । जब कोई टट्टी होकर आता और अपनी आदत के अनुसार मेरी बाल्टी मे लोटा डुबा देता तब मै बाल्टी को फिर मिट्टी से मॉजती । इस तरह मेरा काम बढता ही जाता था ।

पानी मे काम करने और ठडा तथा लूखा खाने से मुझे दिन में तीन-तीन, चार-चार टट्टियाँ और उल्टियाँ होने लगी । बुखार भी आने लगा । डाक्टर ने दवा लेने को कहा, पर मैंने दवा लेने से इन्कार कर दिया। मेरी तबियत दिन-पर-दिन बिगडती ही गई । कोठरी का ताला शाम को पॉच बजे बन्द कर दिया जाता । रात को कोठरी में ही जो कमोड रखा जाता था उसीमे बार-बार टट्टी जाना पड़ता था । सात दिन मे मेरा तेईस पौण्ड वजन घट गया । बवासीर की शिकायत पहले से थी ही ।

अब खून की टट्टियाँ और खून की उल्टियाँ होने लगी। बाहर ऐसी खबर भी फैल गई कि मै मर गई। किसी जीवित व्यक्ति के बारे मे मौत की खबर फैलने को अच्छा ही माना जाता है और कहते हैं कि इससे उमर बढ जाती है। भगवान जाने, इसमें सचाई कितनी है, पर आज मैं जीवित हूँ यह तो सच ही है। मेरे मरने की खबर पहले-पहल किशोरलालभाई को ही लगी थी, पर उन्होने जमनालालजी को बताया नही। बाद मे तो सबको पता चल गया कि मैं मरी नही हूँ, पर मेरी हालत मरी-जैसी हो हो गई थी। मुझे जेल के अस्पताल में ले जाने के लिए स्ट्रेचर लाया गया। दुर्गाबाई जोशी ने कहा कि शाम के समय अस्पताल मे नही ले जाने देगे। वह बोली कि भगवान का नाम लेकर एक दवाई देती हूँ। देखिये, रात भर मे कुछ हो गया तो अस्पताल से छुट्टी मिली समझें। उस समय मेरे पेट मे कुछ टिकता ही न था, अनार का रस तक टट्टी में निकल जाता था। फिर भी हिम्मत करके उन्होने दवा दी। वह दवाई क्या थी ? एक चम्मच चावल तवे पर भूनकर कटोरी से उन्हे पीसा और पानी मे पकाया। उस मॉड मे नमक और जीरा मिलाकर उसमे गाय के घी का बघार देकर मुझे चटा दिया। उससे मुझे काफी शांति मिली। पेट की दाह कम हो गई। वह मुझे स्वादिष्ट भी लगा।

इससे कुछ-कुछ तबियत सुधरी और दही-छाछ के सेवन का प्रश्न आया। लेकिन अब कच्चे दूध मे नीबू निचोडकर दही बनाकर खाने के नाम से ही उल्टी होती थी। जेल के सुपरिटेण्डेन्ट ने कहा कि उनके यहाँ बच्चो के लिए गाय का दूध रहता है, अगर चाहे तो उसकी छाछ का जामन आप दे सकती हैं। पर मुझे लगा कि उसमे भैस के दही का जामन लगता होगा। गाय की शुद्ध छाछ का जामन यहाँ कहाँ हो सकता है। शुद्ध जामन तो वर्धा से ही आ सकता था। बीमारी की खबर वर्धा इसलिए नही दी गई थी कि सब लोग घबरा जायगे। पर अब तो तार देकर जामन मगाना पडा। एक हडिया मे मेरे लिए जामन आ गया और मुलाकात के लिए भी सब आये। एक महिला ने कहा—"दही की मुगोडी तोडकर सुखा दो। शीशी मे भरकर रख दो। बस, जब जामन देना हो, दूध मे एक मुंगोडी डाल दो। दही जम जायगा।"

जेल के अधिकारियो ने 'सी' क्लास की एक वहन को मेरे साथ रखने की अनुमति दे दी थी। मैंने मूलचन्दजी भैया की मा को अपने पास बुला लिया। इनकी सेवा और दुर्गाबाई जोशी के इलाज से ही मैं उस समय वच सकी। दोनो की सेवाओ को मैं भूल नही सकती। भैयाजी की मा ने छह महीनें मे 'सी', 'बी', 'ए' तीनो क्लासो का अनुभव ले लिया, जबकि मैं केवल 'ए' क्लास मे रहकर भी बीमार रही।

इस बीमारी मे मुझे एक अद्भुत सपना आया। जब मुझे जोर का बुखार था, मुझे कुनैन दी गई। पहले तो मैंने कुनैन लेने से इन्कार किया, लेकिन कहा गया कि जेल मे वैद्य की दवाई नही दी जा सकती। डाक्टर ने कहा कि कम-से-कम ४० ग्रेन कुनैन लेनी होगी। मैंने तो जीवन मे कभी कुनैन ली ही नही थी। आखिर २० ग्रेन देना तय हुआ। मैंने इतनी कुनैन डाक्टर से लेकर आधी तो फेंक दी। १० ग्रेन कुनैन मेरे पेट मे गई होगी। पर इतनी कुनैन से भी मै बेहोश हो गई। दाह वहुत वढ गई। इस बेहोशी मे जो सपना देखा वह इस प्रकार है :

"मुझे पलग ऊपर उठाकर चला और मैं जेल के छप्पर पर बैठ गई। वहा मुझे डर लगने लगा कि मेरे छूटने का समय तो हुआ ही नही और मैं वाहर भी आ गई, अब अन्दर वापस कैसे आऊँगी। सामने जब मैंने आँखे दौडाई तब देखा कि घर के सामने गाधी-चौक मे सभा हो रही है। वहा हरी-हरी दूव के गलीचे विछे पड़े थे। झडे लिये हुए स्वयसेवक कतार में खडे-खड़े कवायद कर रहे हैं। वे मुझे गुड्डो की तरह तीन-तीन इच के लग रहे थे।"

कुछ दिन वाद खवर मिली कि वजाजवाडी, मगनवाडी और महिलाश्रम तीनो सस्थाए जब्त हो गई। तीनो जगह तीन पुलिस की लारिया गईं और वहा का सामान उठाकर ले गई। मुझपर सरकार ने एक हजार का जुरमाना किया था। हमे वह देना तो था नही, अधिकारी जब्ती करके चाहें जो ले जाय। वजाजवाडी मे रात को सब सोये हुए थे। मेरी ननद गुलाव-वाई राजस्थान से आई थी। पुलिस ने सारा सामान जब्त करके मुहर लगा दी। वजाजवाडी की १२-१३ गायें भी जब्त हो गई। पुलिस जब गायो का दूध बेचने हलवाइयो के पास गई तो उन्होंने जमनालालजी की

गायो का दूध किसी भी भाव खरीदने से इन्कार कर दिया। मुफ्त मे भी वे दूध नही लेना चाहते थे। जबतक घास-चारा था तबतक तो गायो को मिलता रहा, पर बाद मे पुलिस को क्या चिन्ता! बेचारी गाए भी भूख के मारे सूख गई। वे भी मानो जेल भोग रही थी।

दुकान मे बडी-बडी तिजोरिया थी। उनको उठाकर ले जाना हँसी-खेल नही था, दो-चार आदमियो के बस की बात नही थी। पुलिसवाले सुबह से शाम तक सिर पटककर हैरान हो गए, उन्हे तिजोरी उठाने के लिए कोई हमाल नही मिला। तिजोरियो को उठाने का भी एक तरीका होता है और यह काम हमाल लोग ही कर सकते हैं। हमालो ने साफ कह दिया कि हम जमनालालजी की तिजोरिया हरगिज नही उठावेगे। पुलिस-वाले उनको दस रुपए रोज तक की मजदूरी देने को तैयार थे, परन्तु हमालो मे भी उस समय चेतना उमड पडी थी और देश-हित के लिए उन्होने सरकार का साथ देने से इन्कार कर दिया। आखिर शाम को पुलिस के अनेक सिपाहियो ने मिलकर किसी तरह तिजोरिया उठाई। लेकिन इस काम मे पुलिसवालो के अगूठे पिचक गए, दरवाजो की चौखटे टूट गई, फर्श फूट गई। जैसे-तैसे उन्होने तिजोरिया बाहर पटकी। पाच महीने तक तिजोरिया सरकार के कब्जे मे रही। उनमे लोगो का, सम्बन्धियो का बहुत-सा जेवर पडा था। शादी-ब्याह का मौसम था, गहनो की जरूरत थी, पर किया क्या जा सकता था?

जमनालालजी की दूकानवालो को आज्ञा थी कि अगर सरकार जब्ती करके कुछ ले जाना चाहे तो सब लोग दूकान के बाहर हो जाय और किसी प्रकार भी उनके काम मे दखल न दे। पुलिसवाले तिजोरिया ले तो गए, पर जब अधिकारियो को मालूम हुआ कि उनमे हजारो के जेवर हैं तब वे भी घबरा गए।

: २५ :

नया रत्न खोज निकाला

दूसरी लडकी मदालसा बचपन से ही आश्रम के वातावरण में रही थी। विनोवाजी के पास रहने के इस कारण उसमे अत्यन्त सादगी और श्रमशीलता आ गई थी। शहरी या घर-गृहस्थी के प्रपच से भी वह दूर रही।

एक बार महिलाश्रम की लड़कियो के माथो मे जुएं पड़ गई। वापू ने कहा कि वाल निकाल दो, लेकिन लडकियो के बाल कैसे काटे जाय ? बापू ने कहा तो सही, पर तैयार कौन हो ? लड़कियो के माँ-बाप की इजाजत चाहिए। लेकिन मैने तो मदालसा को बापू के सामने कर दिया और कहा, "बापूजी, मदालसा के बाल तो काट ही दीजिए।" बापू को क्या था, उन्होंने मशीन ली और अपने काँपते हुए हाथों से बाल काट दिये।

मै उसको लेकर बजाजवाड़ी आई। सामने ही कुरसी पर दादीजी बैठी रहती थी। मदालसा को इस तरह देखकर वे रोने लगी। जमनालाल-जी को भी इससे रज हुआ। वह धीमे से बोले, 'बाल काटने की क्या जरूरत थी ?" पहले तो मैने कह दिया कि क्या हुआ, कटा दिये तो ? घास है, फिर उग आयगी। पर बाद मे मुझे भी बुरा लगा कि व्याह-योग्य लडकी के बाल कटाने मे कौन-सी विशेषता थी ? पर मै भी क्या करती, मदालसा ऐसे ही वातावरण मे रही कि उससे मै यही समझती थी कि उसका विवाह आदि तो करना-कराना है नही। वह तो उदासीन है।

मदालसा विनोबाजी के पास गोपुरी (नालवाडी) में रहती थी। आश्रम में छोटे-बड़े या गरीव-अमीर सब समान भाव मे रहते थे। वह रोज सुबह चार बजे नालवाडी से बंगले पर नहाने को आती। उसे कब्ज रहती थी और इसलिए वह चार बजे गरम पानी पीती थी। चार

वजे गरम पानी करके पीती और गोपुरी से निकलती । शौच से निवृत्त होती । वगले पर आकर नहाती, कपडे धोकर सुखाती और वापस नालवाडी लौट जाती । लौटते समय उसके एक हाथ मे छाछ की हडिया होती, उसीमे थोडा मक्खन रहता, एक हाथ मे लकडी और लालटेन होती । थोडा-सा गोवर भी वह वगले से ही ले जाती । गोबर तो उसे नालवाडी मे भी मिल सकता था, पर वह कहती थी कि इससे गरीबो को नुकसान होगा, कण्डे थापने मे उनके लिए कमी हो जायगी । उसका चड्डी और कमीज पहने हुए आने-जाने का दृश्य अब भी मुझे याद आता है । आश्रम मे नौकर रखने पर प्रतिवन्ध था, क्योकि वहाँ हाथ से ही सारा काम करने का नियम था ।

मदालसा का स्वास्थ्य वचपन से ही नाजुक रहा । हमारे यहाँ एक रसोइया ऐसा था, जो चोरी-छिपे उसको मीठी चीजे, चूरमा, आदि खिलाता रहता था । उद्देश्य तो उसका यही था कि मदालसा का स्वास्थ्य सुधरे, पर मीठा आदि खाने से उसका खून और दाँत खराव हो गये । खटाई और दही आदि से वह दूर ही रही । आखिर जव हमारा अलमोडा जाना हुआ तव उसे भी ले गए । अलमोडा मे मै और मदालसा आठ महीने रहे । वहाँ उसको श्री रणजीत पडित पढाते थे । उसका बीस पौड वजन बढ गया । इस तरह मदालसा का जीवन एकागी वनता जा रहा था, परन्तु जमनालालजी को उसके भावी जीवन का विचार था और उसके लिए वह योग्य वर की तलाश मे थे ।

लखनऊ की काग्रेस मे श्रीमन्नारायणजी अग्रवाल पर जमनालालजी की निगाह पडी । श्रीमन्जी उस समय विलायत से लौटे थे । जमनालालजी ने सोचा कि इस लडके को ध्यान मे रखना है । वह श्रीमन्जी को वर्धा ले आए । श्रीमन्जी काफी पढे-लिखे होने पर भी विनम्र थे । उनकी वुद्धि तेज थी । जिस काम को हाथ मे लेते, उसे वडे लगन से करने की आदत थी । जमनालालजी ने उनकी रुचि और योग्यता का काम उनको सौपा । वे मारवाडी विद्यालय मे काम करने लगे । जमनालालजी मे यही विशेपता थी कि वे अच्छे होनहार युवक से सम्वन्ध बढाते और उसकी परख कर योग्य काम में लगा कर विकास का मौका देते । उन्होंने श्रीमन्जी को परख लिया था कि वे

आगे चलकर अच्छे जिम्मेदार और महत्वपूर्ण काम करनेवाले हो सकते हैं। श्रीमन्‌जी डेढ वर्ष तक वर्धा रहे। वे तो सबको पसन्द आ गये। बापू ने भी कहा कि लड़का तो ठीक है। बापू और विनोबा की अनुमति मिल गई, पर मदालसा से बात कैसे की जाय ? पूछा कैसे जाय ? उसकी राय लेकर ही श्रीमन्‌जी से पूछा जा सकता था।

उस समय मदालसा सफेद कपड़ो मे रहती थी और बाल भी कटे हुए थे। जब श्रीमन्‌जी से पूछा गया तब उन्होंने मदालसा के इस वेश को देखकर कहा कि क्या यह इसी वेश मे रहेगी ? जमनालालजी ने हँसते हुए कहा कि शादी के बाद तो वह ढग से ही रहेगी।

इस तरह श्रीमन्‌जी की मौन-स्वीकृति मिलने पर जमनालालजी मदालसा को लेकर मैनपुरी श्रीमन्‌जी का घर दिखाने ले गए। वहाँ पर श्रीमन्‌जी की मा, पिताजी तथा परिवार के लोगो के प्रेम, अतिथि-सत्कार आदि से मदालसा बहुत खुश हो गई। श्रीमन्‌जी की मा वहाँ के महिला-मण्डल की अध्यक्षा थी। कविता से वहाँ इनका स्वागत किया गया। वे सब मदालसा की मन-भाती बाते थी। यहाँ से जमनालालजी मदालसा और श्रीमन्‌जी को साथ लेकर कलकत्ता कमलनयन के विवाह मे पहुँचे। वही पर जमनालालजी ने कमलनयन के फेरे होते ही मदालसा की सगाई का टीका कर दिया और सगाई के दस दिन बाद ही ब्याह कर दिया। उस समय बगले पर काग्रेस-कार्य-समिति की बैठक चल रही थी। देश के बडे-बडे मेहमान घर पर ही थे। इस तरह के मौके से अनायास लाभ उठाना जमनालालजी का स्वभाव ही था।

सुबह गाधी-चौक मे सात बजे विवाह करना था। गाधी-चौक मे ही हम रहते थे। तीन पीढी मे लड़की का ब्याह घर पर करने का यह पहला मौका था।

सुबह दही और तेल लगाकर मैंने मदालसा को नहलाया और मण्डप में ले गई। उस समय उसकी हालत यह थी कि मानो सूली पर चढाई जा रही हो। उसका लाल चेहरा जैसे फटा जा रहा था। फेरो के बाद उसने बापूजी को और बा को प्रणाम किया। मदालसा ने अपने ससुर को प्रणाम करके जैसे ही सास को प्रणाम किया, उन्होंने मदालसा को छाती

आनरेरी मजिस्ट्रेट
जमनालालजी

सेठानी जानकीदेवीजी
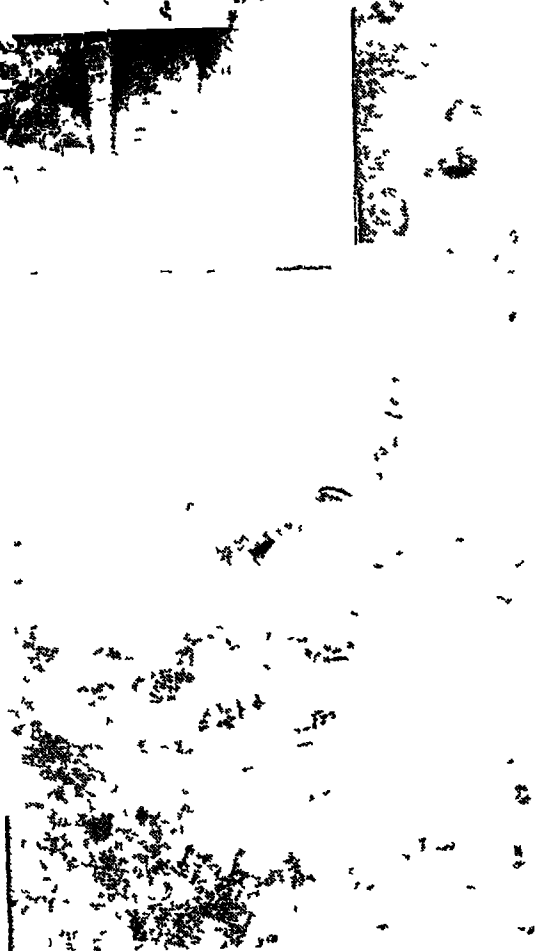
ट्रसेवी दम्पती

राष्ट्र का अतिथिगृह . बजाजवाडी
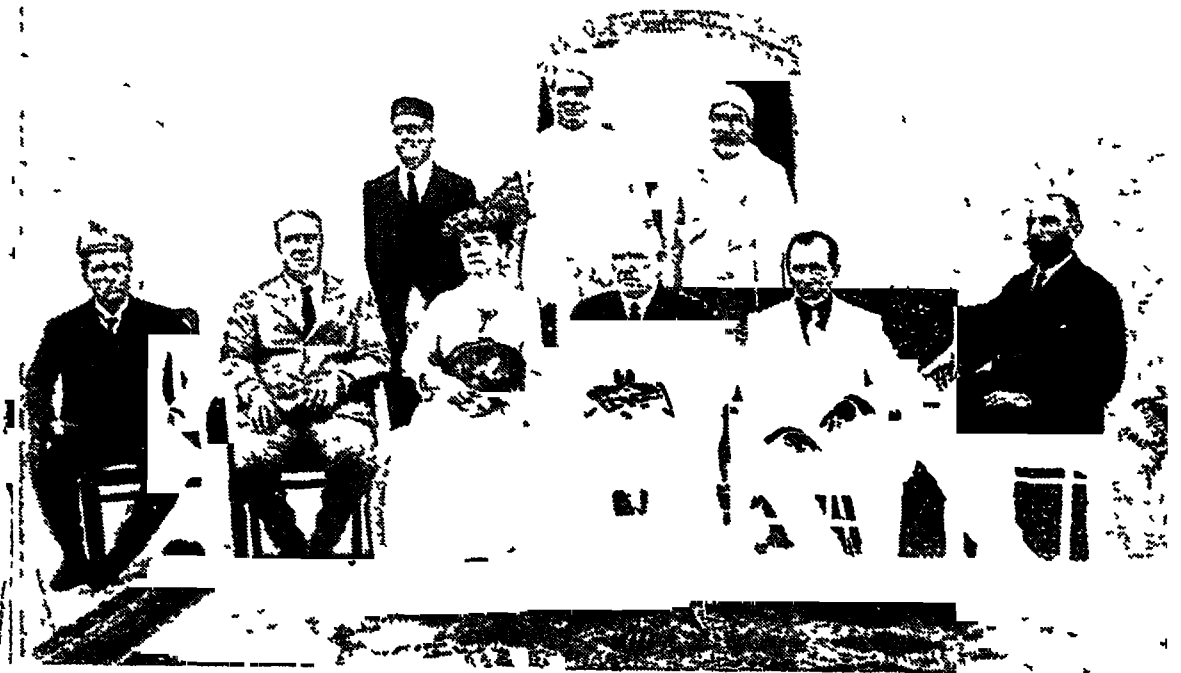
नागपुर के चीफ कमिश्नर सर बेंजमिन रोबर्टसन के साथ वर्धा के अपने पुराने मकान में जमनालालजी (केन्द्र में खड़े)
(सन् १९१७)

कांग्रेस-अध्यक्ष सुभाषबाबू के वर्धा-आगमन के समय स्टेशन पर
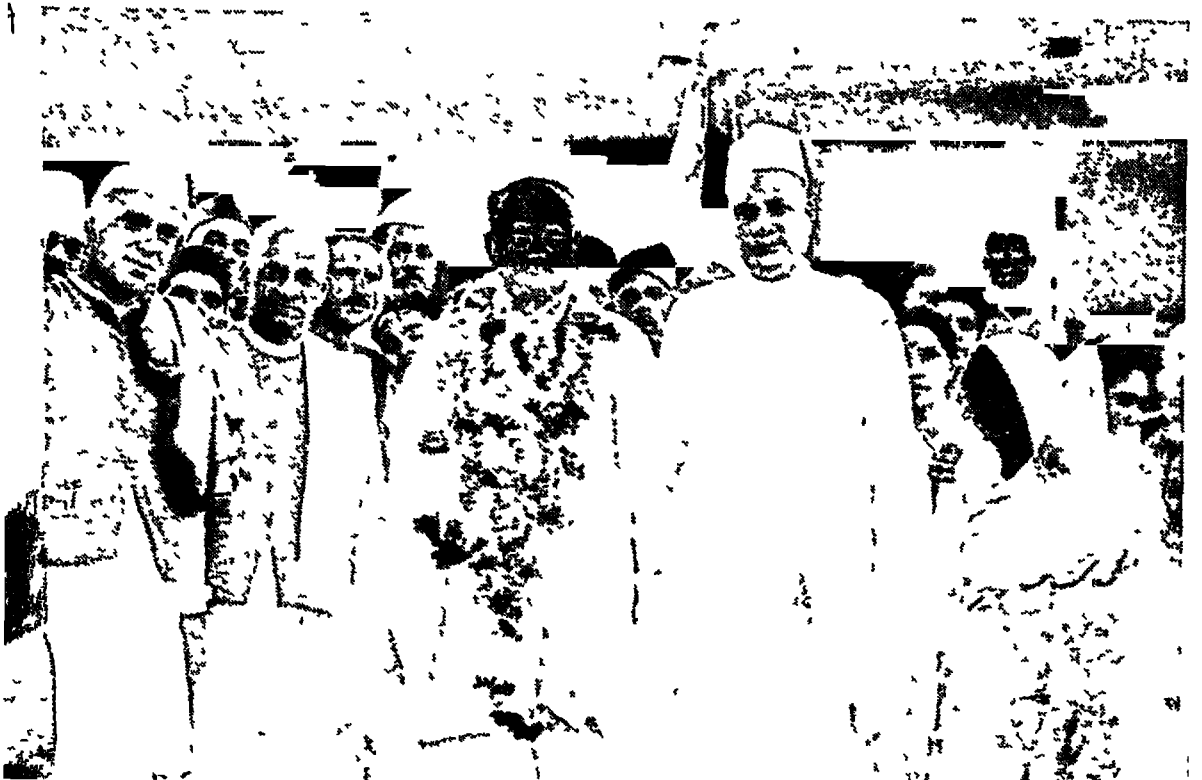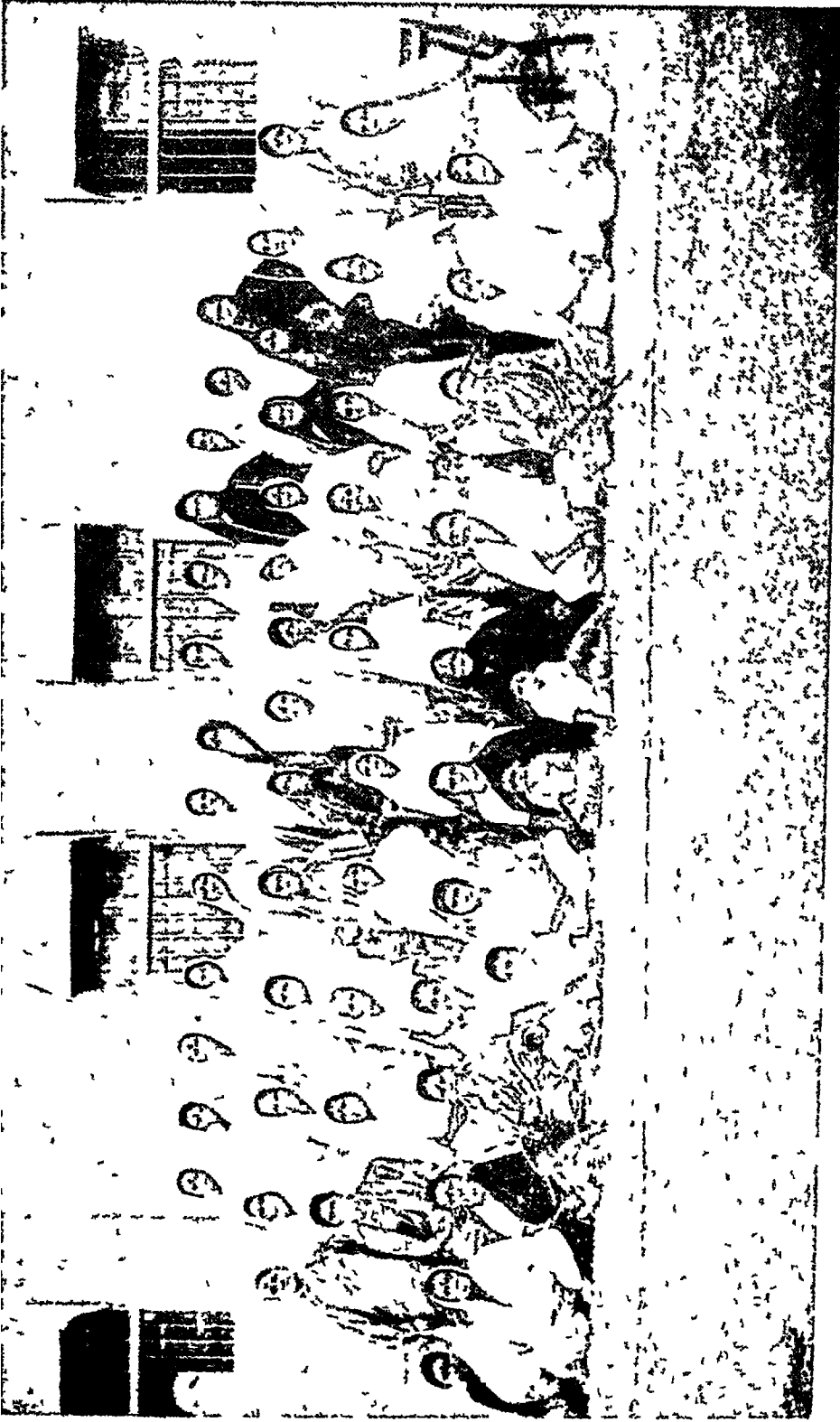
१९३० के राष्ट्रीय आदोलन में जेल जानेवाली बहनें
(दांए कोने में जानकीदेवीजी और उनके पास जमनालालजी की बहन केसरबाई बैठी है)

वजाज परिवार के कुछ सदस्य मीराबहन (बाए ओर खड़ी) तथा खान अब्दुल गफ्फार खा की पुत्री मेहरताज (बाई ओर कुर्सी पर) व पुत्र अब्दुलअली (नीचे की पक्ति में बाए) के साथ ।

सत्याग्रही जमनालालजी
जयपुर-सत्याग्रह के समय शासनाधिकारियो की जोर-जवरदस्ती से आहत
(वनियान पर खून के धब्बे पडे है)

वजाजवाड़ी में सामूहिक भोजन

वर्त्तमान वजाज-परिवार के बीच वजाजवाड़ी में पं. नेहरू तथा पं. रविशंकर शुक्ल

मे लगा लिया। इससे मदालसा को मानो आत्मीयता मिल गई। इस समय मदालसा के पिताजी ने मदालसा के चेहरे और आँखो के भावो को पढकर कहा कि इसकी मा तो इसके लिए सास के समान है और आज इसने मा पाई है। मदालसा की ससुराल के लोग बडे ही सस्कारी और भले स्वभाव के मिले। उसके जैसी भावना-प्रधान लड़की को तो उनके घर के प्रेम और सौजन्य भरे वातावरण ने मोह लिया। मदालसा के लिए जो चिंता रहती थी वह दूर हो गई। श्री लक्ष्मीनारायण मदिर के दर्शन कर जब वर-वधू मण्डप मे आए तब बापू ने सदा की तरह उपदेश करते हुए कहा कि तुमको इस लडकी के अनुकूल बनकर ही चलना है, इसके विचारो पर किसी प्रकार की जबरदस्ती नही होनी चाहिए।

विवाह के समय अचानक तार आया कि श्री शारदादेवी बिडला, व्यकटलाल पित्ती के साथ आ रही हैं। इस खबर से जमनालालजी का खुश होना स्वाभाविक था, पर उनको अचरज भी हुआ। विवाह में ज्यादा लोग बुलाना या ठाठ से ब्याह करना वे समाज-हित की दृष्टि से ठीक नही समझते थे। इसलिए अपने निकटस्थ मित्रो तथा आत्मीय जनो को भी आमत्रण देने में सकुचाते थे। आशीर्वाद की पत्रिका भेजते थे। पर मेहमानो का आना तो अच्छा लगता ही था। फिर बिड़लाजी का बहुत सम्बन्ध था, इसलिए शारदादेवी के आने से हम सबको बहुत खुशी हुई।

शारदादेवी ने आते ही मुझसे पूछा कि मदालसा के लिए कुछ साड़ियां तैयार की हैं? वे जानती थी कि ऐसे मामलो मे मै कितनी अव्यावहारिक हूँ। मैंने कह दिया कि खादी-भण्डार तो घर में ही है। जो चाहे सो ले लेगी। शारदा बहन ने उलाहना दिया, "जानकी-बहन, तुम मा हो, कल लडकी ससुराल जायगी तो चार साड़ी तो अच्छी तैयार करवानी थी। मैं निरुत्तर हो गई। पर तुरन्त याद आया कि कलकत्ता से स्टेशन पर सावित्री की माँ की पेटी मे खादी की कुछ साड़ियाँ हैं। मैंने कहा कि सावित्री से साड़िया निकलवा ली जायं। उनमें से दो साड़ीजी को दे दी गई, एक ननद, एक-एक भाभी और बडी दादी को। बची सब सो, वे मदालसा की पेटी में रख दी गई।

: २६ :

मेरी कंजूसी

जमनालालजी की धर्मपत्नी होने के कारण देश में मेरा नाम भी बहुत-से लोग जानने लगे थे। मिश्री के साथ सूत भी मीठा हो जाता है और मिश्री के भाव बिकता है। लेकिन जिस वृत्ति के कारण मेरी प्रसिद्धि रिश्तेदारो के बीच है, वह तो है कजूसी। इस कजूस वृत्ति के कारण मेरा मजाक भी होता है। लोग परेशान भी होते है, उलाहना भी देते हैं, लेकिन जो वृत्ति बन गई है, उससे छुटकारा पाना भी मुश्किल ही है।

जब मैने अपने पोते राहुल से पूछा कि बेटा, बताओ तुम्हारे मन पर मेरी कौन-सी बात की छाप पक्की जमी है, तो उसने कहा—"आपके कजूसपने की। जब दादाजी (जमनालालजी) गोपुरी में रहते थे और हम उनके पास जाते थे तब वह हमें बिस्कुट आदि देना चाहते थे, लेकिन आप नही देने देती थी।" तीन-चार वर्ष की अवस्था की वह बात अब भी उसको याद है।

मेरा स्वभाव ही कुछ ऐसा हो गया है कि छोटी-मोटी चीजो की सार-सम्हाल का मै बहुत ध्यान रखती हूँ। बडी चीज का उतना ध्यान नही रखती और सोच लेती हूँ कि बडी चीज तो कोई भी सम्हाल सकता है। सौ का नोट निकालकर देना मेरे लिए सरल है, लेकिन आना दो आना देना मेरे लिए कठिन है।

बापू भी 'कजूसो के सरदार' के रूप में प्रसिद्ध थे। लेकिन उनमें और मुझमें जमीन आसमान का अन्तर है। वह आये हुए लिफाफो का भी उपयोग करते थे, निमत्रण-पत्रिकाओ पर ही आशीर्वाद और सदेश लिखकर लौटा देते थे, एक-एक आलपीन को भी बचा लेते थे। परन्तु बापू

अपनी कजूसी को ऐसा बढिया रूप देते कि सामनेवाला भी सतुष्ट हो जाता और सबक सीखकर लौटता। मेरे पास तो ऐसी कोई कला है नही। तव होता यह है कि मेरी भावना एक होती है और सामनेवाले पर असर कुछ दूसरा ही होता है। फिर भी इतना समाधान अवश्य है कि इतनी बडी दुनिया में कम-से-कम बापू ने तो मेरी कजूसी की सराहना की थी। कजूस की भाषा कजूस ही समझ सकता है। उन्होने तो मुझे सर्टिफिकेट भी दिया था।

बापू का एक ऊनी कम्वल छलनी-जैसा हो गया था। मैंने वह रफू करके और उसपर खादी सीकर उनके पास भेज दिया। लन्दन की गोलमेज परिषद् मे जब वह गए तब वही कम्बल उनके पास था। उन्होने २०-८-१९३२ को जेल से मुझे एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार है .

चि० जानकी मैया,

खूब ! आखिर पेंसिल से दो सतरे लिखने की तकलीफ की तो ! जेल जाकर भी आखिर आलस्य नही गया न ? 'अ' वर्ग देने मे ही भूल हुई। 'क' वर्ग देकर खूब काम कराना चाहिए था ! आलस्य का तो ठीक, परन्तु अब शरीर की हालत ठीक कर लेना। पत्र बराबर नही आएगे तो सजा मिलेगी। पुरानी कमली, जिसपर तुमने खादी सीकर नई बनाई थी, वह राजमहल[1] में हो आई, यह बात मैं कह चुका हूँ न ? यहा तो वह है ही। अभी तो वहुत चलेगी।

—बापू के आशीर्वाद

विनोबाजी भी बडे सूक्ष्मदर्शी हैं। मेरी वृत्ति का रहस्य उनसे कहाँ छिपा रह सकता था ! एक वार मै विनोवाजी के साथ सर्वोदय-प्रदर्शनी मे जा रही थी। वहाँपर पुराने वस्त्रो को फाड-फाडकर उनसे गलीचा वनाने का प्रयोग बताया जा रहा था। देखकर विनोबाजी ने कहा, "यह तो जानकीवाई की मन-लगती बात हो रही है।"

---

[1] लदन में बापू उसी कमली को ओढ़कर पांचवें जार्ज से मिलने वकिंघम राजमहल में गये थे। उसका यह जिक्र हे।

—संपादक

छोटी-छोटी चीजो को सम्हालने की वृत्ति को देखकर ही बापू ने मुझे सेवाग्राम मे फल सम्हालने का काम सौपा था।

जरूरत हो या न हो, कुछ ऐसी आदत हो गई है कि फल तो मैं खरीद ही लेती हूँ और सो भी टोकरी-भर! पर खरीदते समय मोल-तोल करने का स्वभाव पड गया है। बापूजी कहा करते थे कि गरीब को आना-दो आना कम देने मे क्या फायदा! विनोवाजी भी कहते है कि गरीबो से भाव-ताव करना ही नही चाहिए, बल्कि जितना वे कहे, उससे कुछ अधिक ही देना चाहिए। गरीब लोग अपनी मेहनत की सही कीमत नही आँक पाते, इसलिए हमे ही सोच-समझकर उनको वाजिब और कुछ अधिक दाम देना चाहिए। सर्वोदय का अर्थशास्त्र तो यही है। मेरे मन मे तो ऐसा ही करने की भावना उठती है, पर आदत जो पड गई सो छूटती ही नही।

टोकरी भर फल लेने के बाद उनके उपयोग मे वही कजूसी! जब सडने लगते है तब छाट-छाटकर सडे-गले अलग करती हूँ और अच्छे-अच्छे अलग रखती हू। सडे फलो का उपयोग करती-कराती रहती हूँ। कमलनयन तो कहा करता है कि यह सडने का सिलसिला इस तरह खत्म नही होगा, क्योकि सडे-गले का आज उपयोग होगा, तबतक कल दूसरा सड-गल जायगा!

हम लोग काश्मीर से अमरनाथ गए थे। किसी विश्राम-गृह मे ठहरे। वहाँ दस्तखत करने थे। किसी के भी पास पेन या पेन्सिल न निकली। आखिर मैंने अपने ऐनक के घर में से पेंसिल का छोटा-सा टुकडा निकाल दिया। लिख चुकने पर राम ने कहा कि मा की पेन्सिल लौटा देना, नही तो वह परेशान हो जायगी।

एक बार मैं विनोवाजी के साथ पैदल-यात्रा कर रही थी। किसी के पैर मे काटा चुभ गया। मैंने सूई निकालकर दे दी। वह टूट गई तो दूसरी दी। मैंने कहा, "वापस कर देना।" साथी को अचरज हुआ कि एक सुई के लिए मैं इतनी परेशान क्यो होती हूँ। मुझे यह बात खटकी। जहाँ सुई का काम हो, वहाँ तलवार क्या कर सकती है! आजकल छोटी-छोटी चीजो के प्रति उपेक्षा देखकर मन को बुरा लगता है।

कम खर्च में अगर काम चलता हो तो मै अधिक खर्च करना पसन्द नही करती। मिट्टी मे काम चलता है तो साबुन क्यो खर्च किया जाय ? राख से दाँत साफ किये जा सकते हैं तो मजन का उपयोग नही करती।

एक बार मैं ऋषभदासजी के साथ बजाजवाडी जा रही थी। रास्ते में उनकी पत्नी ने कहा, "ताँगा बुला लो।" पर ऋषभदासजी और मैं दोनो एक ही स्वभाव के ठहरे। उनको बच्छराज-भवन जाना था। रास्ते मे मैं और वह अलग-अलग हो गए। मैं थोडी ही दूर गई हूँगी कि रास्ता भूल गई। पचासो बार उस रास्ते बजाजवाडी गई हूँगी, पर उस दिन तो पता नही क्या हो गया! किसी से पूछने की हिम्मत भी नही होती थी। मै भले ही किसी को पहचानती न होऊँ, पर गाँव के लोग तो मुझे पहचानते ही थे। मैं कैसे पूछू कि बजाजवाडी का रास्ता किधर है। लोग क्या कहेगे कि अच्छी सेठानी हैं कि बरसो से वर्धा मे रहती हैं, पर अपने बगले का रास्ता भी नही जानती! इधर-से-उधर और उधर-से-इधर चक्कर लगाती रही। आखिर एक पाँच वर्ष के लडके से पूछा—"बेटा, ज्ञान-मदिर का रास्ता कौन-सा है ?" उसने सरल भाव से कह दिया —"बजाजवाडी के सामने ही तो है!" अब मैं क्या कहती! यह तो मै भी जानती थी। आखिर उधर से एक ताँगा निकला, जिसमें मैं चुपचाप बैठ गई और बजाजवाडी जाने पर उसने आठ आने माँगे तो दे दिये। मै जानती थी कि चार आने से अधिक नही दिये जाते, परन्तु उस समय मेरी जो हालत थी उसमे यही हो सकता था। शुरू मे ही ताँगा कर लेती तो कुछ दूर पैदल भी नही जाना पडता और यह परेशानी भी न होती।

लेकिन जहाँ मै एक पैसे का विचार करती हूँ, वहाँ हजारो के विषय में मुझे चिन्ता होती ही नही। बडी चीज का लोभ भी मुझे नही रहता। सीकर मे जब हमारा कमरा बना तब वह बस्ती के बाहर था, लेकिन बस्ती बढने के बाद वह खुले में न रह गया। खुली हवा की कमी थी। नहाने और पाखाने की भी ठीक व्यवस्था नही थी। मारवाड में निबटने के लिए पुरुष लोग जगल में जाते हैं और स्त्रियां नोहरो मे ही बैठ जाती हैं। सवाल बहुत

कम होते हैं । हमारे कमरे मे सडास तो था, फिर भी कमरे को व्यवस्थित और सुभीते से रहने लायक बनाने के लिए २०,०००) का खर्च था। जमनालालजी ने सोचा कि इसको बेचकर शहर के बाहर सुभीते का मकान बनाया जाय। उन्होने सीकर के अधिकारी से कहा कि बगला लेकर स्टेशन के पास कोई जगह दे दी जाय। उसने बगला लेकर अतिथि-गृह देने की बात कही। बगला देकर ऊपर से १३,०००) देने की बात थी। मैं उन दिनो वही थी। मुझसे अतिथि-गृह देखने के लिए कहा गया। मैं देखने गई। अतिथि-गृह के अहाते मे बगीचा था और मकान भी बहुत बडा तथा सुभीते का था, पर मैंने सोचा कि इतना बडा मकान लेकर क्या करेगे ? कभी महीना-पन्द्रह रोज आकर रहेगे तो रहेगे, इसे सम्हालने के लिए ही पॉच सात नौकर रखने पडेगे। इसलिए मैंने इन्कार कर दिया। अगर वह खरीद लिया जाता तो सुविधा तथा आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभप्रद रहता, पर झझट बढाना भी मुझे अच्छा नही लगता।

सीकर के अतिथि-गृह की तरह बम्बई मे भी एक मकान कर्ज में आ रहा था। ुझे वह देखने के लिए भेजा गया। उस मकान का ठाठ-बाट और फर्नीचर देखकर मैं तो मकान को अन्दर से देखे बिना ही लौट आई। मैंने यही सोचा कि अगर हम यहाँ रहेगे तो बच्चो पर वातावरण का असर पडे बिना नही रहेगा और बम्बई मे मकान होने पर रहने के लिए आने का मोह भी हो सकता है।

मेरे कम खर्चीले स्वभाव के कारण साथ वालो को कभी-कभी बडी परेशानी हो जाती। एक बार स्टेशन जाना था, दोपहर का समय था। मेरे साथ ननदोई डेडराजजी भी थे। मुझे तो धूप मे चलने की आदत थी, पर वह बहुत परेशान हो गए। स्टेशन पहुचते-पहुँचते वह तो पसीने से तर हो गए। बोले—"मैं तो आगे से कभी सेठानीजी के साथ नही जाऊँगा ! बडी कजूस हैं। इनसे तो ताँगे के पैसे भी नही खरचे जाते।" उनका गरम होना स्वाभाविक था, पर मैं जो अपनी आदत से लाचार थी।

और तो क्या, आज भी जमनालालजी सपने मे मुझे कजूसी का उलाहना देते दिखाई देते हैं। अभी-अभी की बात है कि उन्होने मुझे स्वप्न में कहा कि देखो, मेहमान आए हैं, उन्हे अच्छे-अच्छे फल छाँटकर देना,

अपने स्वभाव-जैसा मत करना। उन्होने यह कहा तो, फिर भी उनको मानो लग रहा था कि मै वैसा करूंगी नही।

बापू कजूस थे और मैं भी। पर बापू दूसरे की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते थे और वह सोच-समझकर कजूस थे। मेरे पास तो केवल आदत है, जिसमें न दूसरे की सुख-सुविधा का भान है, न समय-सूचकता

पर करूँ क्या, 'ज्याँ को पड्यो स्वभाव, जासी जीवसूं।'

: २७ :

बापू वरधा आए

जमनालालजी के मन मे साबरमती की तरह वरधा मे भी सत्याग्रहाश्रम खोलने की इच्छा थी । इस बारे मे उन्होने बापूजी से बात की। बापूजी ने विनोबाजी तथा उनके साथियो को वरधा भेज दिया । पहले उन सबको बगीचे मे उतारा गया, फिर वे बजाजवाडी मे रहने लगे । आश्रम शुरू मे बजाजवाडी मे रहा, फिर, जहाँ आज महिलाश्रम है वहाँ चला गया । यद्यपि जमनालालजी की आश्रम-सम्बन्धी इच्छा तो पूरी हो गई थी, तथापि इतने से ही उन्हे सन्तोष न हुआ । कुछ दिनो बाद उन्होंने वर्ष भर मे एक महीना वरधा मे रहने का बापू से वचन लिया । उसके बाद बापूजी हर दिसम्बर मे काग्रेस जाने के पहले वरधा आकर रहने लगे । जब बापूजी वरधा रहते तब नेताओ और कार्यकर्त्ताओ का मेला-सा लगा रहता ।

नमक-सत्याग्रह के बाद बापू ने जबतक आजादी न मिले तबतक साबरमती न लौटने का प्रण किया, तब प्रश्न उठा कि अब बापू कहाँ रहे । बापू को तो सभी प्रान्तवाले अपने यहाँ बुलाने को उत्सुक थे, पर गुजरातवाले और खासकर सरदार चाहते थे कि बापू गुजरात में ही रहे । उनका कार्यक्षेत्र भी प्रारम्भ मे गुजरात ही रहा था । गुजरात के लोगो की उनपर अटूट भक्ति थी । उनके कार्यो और आन्दोलनो को गुजरात ने शुरू से ही अपनाया था । इसलिए सरदार वल्लभभाई पटेल ने प्रयत्न किया कि बापू गुजरात मे ही रहे और बारडोली को अपना केन्द्र बनावे। पर जमनालालजी बापू को वरधा लाना चाहते थे । यद्यपि महाराष्ट्र में गांधीजी के सिद्धान्तो के अनुकूल वातावरण नही था, फिर भी जमनालालजी के कारण उन्होने वरधा को पसन्द किया । जमनालालजी

विनोबाजी, काका कालेलकर आदि को पहले से ही वरधा ले आए थे। जगह-जगह से और भी गाँधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ताओ को लाकर अनेक काम शुरू करवा दिये थे। धीरे-धीरे ऐसा वातावरण पैदा हुआ कि बापूजी ने वरधा को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया।

सरदार वल्लभभाई को यह अच्छा नही लगा। यह स्वाभाविक भी था। वह हमेशा बापू से झगडते रहते और उलाहना देते रहते कि बम्बई और गुजरात छोडकर इस गड्ढे मे आकर बसे है, जहाँ न कोई राजनैतिक जागृति है और न काम के अनुकूल वातावरण।

बापूजी को वरधा मे बसाने से जमनालालजी की मनभाती बात तो हो गई, लेकिन उनकी जिम्मेदारियाँ बहुत बढ गई। बापू के विधायक काम ठीक तरह से चले, इसलिए साधन और व्यक्तियो को जुटाना तथा आने-जानेवाले मेहमानो की अच्छी व्यवस्था रखना आसान बात नही थी। परन्तु वह इस काम मे जुट गए, अपने आपको उन्होने बापू मे ही मिला दिया—वह बापू मे ही लीन हो गए। गाँधीजी को वहाँ बसाने पर ग्रामोद्योग के लिए जमनालालजी ने अपना बगीचा उनको सौप दिया। बगीचा उस समय करीब एक लाख की कीमत का था और गाव के लोग वहाँ नहाने-धोने और घूमने जाते थे। जब जमनालालजी ने यह बगीचा गाधीजी को सौपने का निर्णय किया तब दूकानवाले सभी लोग नाराज हो गए और उनमे खलबली मच गई कि यह गाधी कहाँ से आ गया? इसे तो जमनालालजी अपना सबकुछ लुटा देंगे। उनके मन मे जमनालालजी के हित का ही खयाल अधिक रहता था। वे गाधीजी तथा उनके कामो के महत्व को क्या जाने?

एक ओर तो यह बगीचा दिया, उधर तीसरे ही दिन ७५ हजार की ऐसी वसूली हुई, जिसके वसूल होने की आशा नही-सी थी। सेवाग्राम का नाम पहले सेगॉव था। उसे रहन रखकर कर्ज दिया गया था। कर्जदार गाँव का पटेल था। उसका देहान्त हो गया। उसकी विधवा पत्नी थी, जिसपर कोई जोर-जबरदस्ती या दावा-फरियाद जमनालालजी नही करना चाहते थे। पर उस विधवा के मन मे भगवान जागा और उसने जमनालालजी से कहा कि मेरे पति भी गए, न मालूम मुझे कब जाना

पडेगा, इसलिए आप कर्ज में सेगॉव लेकर मुझे मुक्त कीजिए।

यह घटना देखकर दूकानवाले दग गये। कहने लगे—"जमनालालजी के भाग्य को कोई नही जान सकता। एक हाथ से देते हैं और दूसरे से मिल जाता है।"

बगीचा सौंपने के बाद बापूजी ने जमनालालजी से कहा कि खादी के साथ-साथ ग्रामोद्योग भी चलाने होगे। हमे गॉवो को स्वावलम्बी बनाना है। इसलिए वहाँ ग्रामोद्योगो के प्रयोग शुरू करना तय हुआ। गाँधीजी के एकनिष्ठ कार्यकर्ता और भतीजे श्री मगनलालभाई गाधी की मृत्यु बिहार मे पहले हो गई थी। जमनालालजी को इसका काफी दुःख हुआ था और वह मगनलालभाई की स्मृति मे योग्य स्मारक बनाने की सोचते रहते थे। इसलिए उन्होने उस बगीचे का नाम 'मगनवाडी' रखने की घोषणा की और वह बापू को भी पसन्द आ गई। ग्रामोद्योगो के प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री और कार्यकर्त्ता श्री जे. सी. कुमारप्पा को बापूजी ने यहा लाकर बैठाया-बसाया।

बापू को जगह-जगह से हाथ की बनी चीजो की भेंटे मिलती थी, उनके सग्रह की जरूरत थी। इसलिए मगनवाडी मे ही एक सग्रहालय बनाया गया, जिसका नाम भी 'मगन-सग्रहालय' रखा गया। उसमे गाँधीजी को भेट मे मिली वस्तुओ के साथ-साथ खादी और ग्रामोद्योग की सारी सामग्री रखी गई। बापू भी आनेवालो से कहा करते कि मगन-सग्रहालय देखे।

उन दिनो बापू ग्राम-उद्योग और गॉवो की सेवा वगैरा पर बहुत जोर देते थे। इस कारण बापू ने वर्धा-जैसे छोटे शहर के बजाय गाँव मे रहने का तय किया। वे सेगाँव रहने चले गये। बाद में उसका नाम सेवाग्राम पड गया। बापू के लिए पहले वहाँ एक झोपडी ही बनी थी। उसीमें एक ओर बा और मीराबहन का निवास था और दूसरी ओर बापूजी का। महादेवभाई रोज वर्धा से आते-जाते थे। बाद मे बा के लिए अलग झोपडी बनाई गई।

गाव मे बापू को बडी असुविधा और कष्ट उठाना पडा। बापूजी के साथ एक हरिजन भी था। गाव के कुएं से औरों के साथ वह भी पानी भरता

था । गाँववालो ने उस कुएँ का पानी पीना छोड दिया । बापू की हजामत भी गाव के नाई ने दो साल तक नही बनाई । गाँव के लोग कहते थे कि बापू की हजामत करने मे तो हर्ज नही, पर उनके साथ हरिजन जो रहता है। इसलिए हम अगर बापू को छुएँगे तो जातिवाले बहिष्कार कर देगे ।

बापू के सेगाँव जाने पर तो सरदार और भी विगड गए। उनका कहना था कि ऐसी जगह, जहाँ न सडक हो और न तार-टेलीफोन की सुविधा, वहाँ बापूजी का रहना ठीक नही है । अगर कभी मौका आवे तो क्या कर सकते हैं ? न आपका हमको उपयोग हो सकता है, न हमारा आपको। यहाँ बापूजी को बहुत तकलीफ होगी ।

यह ठीक भी था । बापूजी से मिलने आने वालो को बडा कष्ट होता था । एक बार मैसूर की महारानी बापूजी से मिलने आई । बैलगाडी मे सेवाग्राम गई । बारिश मे कपडे भीग गये । सेवाग्राम मे मीराबहन के कपडे लेकर पहने । लौटते समय बैलगाडी कीचड मे फँस गई, तब उन्हे उतरकर पैदल चलना पडा । ऊपर से बारिश हो रही थी । पैरो मे ऊँची ऐडी के सैंडल थे, जो कीचड मे वजनदार हो गए और चलना कठिन हो गया । महारानी गीले कपडो और कीचड मे लथपथ वरधा पहुँची । यहाँ आने पर गरम पानी मे नमक डालकर सेका गया । कपडे बदले । वह कहने लगी—"यदि यह घटना मैसूर मे होती तो मै पन्द्रह दिन बिछौने से उठ न पाती, पर यहाँ तो मैं दूसरे ही दिन तैयार हो गई हूँ ।"

आखिर बापू की अनिच्छा रहते हुए भी सडक बन गई, डाकखाना खुल गया और टेलीफोन भी लग गया । धीरे-धीरे मकान भी बने और सेवाग्राम के आश्रम का काम बढता ही गया । बापूजी पक्का मकान बनाने नही देते थे, इसलिए उनके बिना पूछे ही जमनालालजी ने वरधा से नागपुर के रास्ते पर थोडी दूर पौनार मे टेकडी पर एक बँगला बनाया । उनका उद्देश्य यह था कि तैयार होने पर उन्हे वहाँ ले चलेगे । बँगला तैयार हुआ और बापू को वहाँ दिखाने ले गए और जब वहाँ रहने की बात कही तो बापू बोले—"नागपुर की सडक होने से आना-जाना बना रहेगा और फिर वहाँ देहात मे रहने का लाभ थोडे ही मिलेगा ।"

बापूजी के वरधा आने पर यहाँ नेता और कार्यकर्त्ता आने-जाने लगे

और उनका विशेष सम्पर्क बढा। जब कोई नेता बीमार होता तो जमनालालजी उन्हे बुला लेते। किसीको किसी तरह की अडचन होती तो उन्हे बुला लेते। सरहदी गाधी अब्दुल गफ्फारखाँ को सरहद प्रान्त मे जाने की मनाही की गई तो जमनालालजी उन्हे अपने यहाँ आग्रहपूर्वक ले आए। दोनो खान-बन्धु, उनके लडके-लडकियाँ छह महीने यहाँ रहे। राजेन्द्र बाबू को भी जब कभी दमे की बीमारी उभडती, वे यहाँ रहने आ जाते। जमनालालजी को इससे प्रसन्नता होती कि उन्हे इस तरह अपने देशभक्तो को रखने का मौका मिलता है।

: २८ :

सीकर और जयपुर

बजाज-कुटुम्ब राजस्थान मे सीकर का रहनेवाला है। सीकर जयपुर राज्य का एक बहुत वडा ठिकाना था। सीकर के राजा रावराजा कहलाते थे। उनके अधिकार भी जागीरदारो से अधिक थे। हम लोग यद्यपि वरधा मे बस गए थे, फिर भी सीकर आना-जाना रहता ही था और वहाँ हमारा एक मकान भी था, जो 'कमरा' के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ के सार्वजनिक कार्यों और हलचलो मे भी जमनालालजी का हाथ रहता था। जमनालालजी की ओर से वहा एक दवाखाना और हरिजन-स्कूल भी चलता था।

सीकर की जलवायु सूखी और स्वास्थ्यप्रद होने के कारण कुछ दिनो के लिए श्रद्धेय राजेन्द्रबाबू भी वहाँ एक-दो बार रहे थे। विनोबाजी भी सीकर गए थे।

सीकर के रावराजा भले स्वभाव के थे और प्रजा के साथ सहानुभूति रखते थे। उनके तथा जयपुर राज्य के बीच आपसी अधिकारो को लेकर कुछ-न-कुछ चखचख चलती ही रहती थी। रावराजा के उदार स्वभाव को जयपुर राज्य तथा अग्रेज अधिकारी पसन्द नही कर सकते थे। इस तरह दिनोदिन मनोमालिन्य बढता ही गया। कहने के लिए तो राजा प्रजा के मालिक माने जाते थे, पर उन दिनो सच्ची सत्ता अग्रेजो के हाथ मे ही रहती थी। राज-काज उनके रेजिडेटो के इशारो पर चलता था। जमनालालजी कहा करते थे कि देशी राज्यो की प्रजा दोहरी गुलाम होती है। अग्रेज नही चाहते थे कि देशी राज्यो की प्रजा मे जाग्रति हो और राजा का प्रजा के साथ विशेष सम्पर्क भी वे पसन्द नही करते थे। इस कारण जयपुर राज्य और उसके प्रधान अग्रेज अधिकारियो ने सीकर

के रावराजा के साथ के झगड़े को बहुत बढा दिया। सीकर के राजकुमार को शिक्षण के लिए विलायत भेजने के मामले को लेकर जयपुर राज्य के अधिकारियो ने रावराजा के कुटुम्बियो पर रेल मे ही गोली चलवा दी। इस घटना से सीकर की प्रजा बहुत उत्तेजित हो गई और जयपुर राज्य के खिलाफ शस्त्रो से लडने की तैयारी शुरू कर दी।

इधर जयपुर राज्य के अधिकारियो ने भी अपनी सेना भेजकर सीकर-वालो को सेना तथा शस्त्र से दबाने की तैयारी की। दोनो ओर से मोरचे-बन्दी होने लगी।

मै उन दिनो सीकर ही थी। केवल राजपूतो ने ही नही, ब्राह्मण, हरिजन, बनिया, मुसलमान सभी ने लडने की तैयारी कर ली थी। सीकर मे अठारह दिन की जबरदस्त हडताल हुई। गॉव मे उत्तेजना बहुत तीव्र थी। मै घर-घर में जाकर लोगो को समझाती थी कि भयभीत न हो।

कमरे के सामने वाले मकान मे स्त्रियाँ ही थी। कमरे तथा राजकोठी के बीच मोरचा लग रहा था। रेती की थैलियॉ जमाई गई। सिपाही बाहर से नसेनी लगाकर छत पर तार बाँध रहे थे। मुझे ऐसा लगा कि शायद भीतर स्त्रियॉ डर रही होगी, सो मै भीतर गई और कहा—"आप लोग बिलकुल न घबराएँ। अगर सिपाही भीतर आ जायँ तो आप बाहर तो निकल ही सकती हैं, मै भी घूम ही रही हूँ।" लेकिन औरतो को अज्ञान मे रखने के कारण वे समझ ही नही पाती कि किस समय क्या किया जाय।

एक बार मै लोसल से सीकर आ रही थी। जयपुर राज्य के सिपा-हियो को आदेश था कि अगर कोई आदमी बिना सूचना दिये सीकर जाय तो गोली चला दी जा सकती है। लेकिन मैं तो इस बात से जैसी अपरि-चित ही थी और सीधी चली गई। सैनिको ने भी शायद स्त्री समझकर मुझे चला जाने दिया होगा।

इस आपसी झगडे को निपटाने के लिए जयपुर और सीकर दोनो तरफ से जमनालालजी के पास अनेक तार और चिट्ठियाँ आई थी। राव-राजाजी का संदेशा भी पहुँचा था। जमनालालजी ने दोनो पक्षो से यह

जानना आवश्यक समझा कि अगर उनका उपयोग हो सके तो वे आवे, अन्यथा जाकर भी क्या होगा ? अन्त में उन्हे सीकर जाना पडा। एक बार तो जयपुर राज्य और रावराजा मे समझौता भी हो गया।

फिर एक बार सीकर के रावराजा को अजमेर ले जाया गया और उन्हे 'पागल' ठहराकर सीकर राज्य की व्यवस्था 'कोर्ट ऑव वार्ड' के मातहत कर दी गई। इतना ही नही, रावराजा को जयपुर राज्य मे प्रवेश करने की मनाही कर दी गई। इस बात से सीकर की प्रजा मे काफी उत्तेजना फैल गई। जमनालालजी ने इस मामले में काफी समय और शक्ति लगाकर शाति से इसे सुलझाने का प्रयत्न किया और इस तरह खूनखराबी रुकी।

जमनालालजी जयपुर राज्य प्रजामण्डल के अध्यक्ष थे। जयपुर राज्य को उनका, सस्था का और कार्यकर्त्ताओ का बढता हुआ प्रभाव अच्छा नही लगा। भीतर-ही-भीतर नाराजगी बढती जा रही थी। एक बार जमनालालजी प्रजामडल की कार्यकारिणी बैठक के लिए जयपुर जा रहे थे। वह बैठक अकाल-सहायता के सम्बन्ध मे ही होने वाली थी। परन्तु सवाई माधोपुर में ही पुलिस के गोरे अधिकारी ने उनके सामने हुक्म रख दिया कि वह जयपुर राज्य मे प्रवेश नही कर सकते।

जमनालालजी को यह बात बहुत खटकी। उन्होने पुलिस-अधिकारियो से कहा कि यह बात अनुचित है। लेकिन इन्सपेक्टर-जनरल यग ने कहा कि अभी तो आप मान जायँ और वापस चले जायँ, मै यह हुक्म रद्द कराने की कोशिश करूँगा।

जमनालालजी सत्याग्रह के महत्व को समझते थे, इसलिए उन्होने पहली बार मौका दिया कि अगर समझौते का कोई मार्ग निकलता है तो ठीक है। अत वह लौट आए। बापूजी की आज्ञा के बिना वह सत्याग्रह शुरू करना नही चाहते थे। लेकिन जयपुर राज्य के अधिकारियो ने जयपुर राज्य मे खादी-कार्य करने वालो से आश्वासन माँगा कि वे प्रजामडल से सम्बन्ध न रखे। इससे अधिकारियो की इच्छा साफ-साफ प्रजामडल से झगडने की प्रकट हो गई। जमनालालजी की खुद की तैयारी तो जेल जाने की थी ही, लेकिन उन्हे इतने मात्र से ही सन्तोष थोडे होने वाला

था। वह तो चाहते थे कि सत्याग्रह बराबर चलता रहे और इसकी उन्होंने पूरी तैयारी की। अन्त मे बापू का आशीर्वाद लेकर उन्होंने १ फरवरी १९३८ के दिन जयपुर राज्य की आज्ञा का भग करके राज्य की सीमा मे प्रवेश कर दिया और इस तरह सत्याग्रह की शुरुआत हुई। पुलिस उनको पकडकर मोटर द्वारा सीमा के बाहर छोड़ देती और वह पुन· भीतर प्रवेश कर जाते। जब उनसे दूसरी मोटर मे से उतरने को कहा गया तब वह उतरे नही। जबरदस्ती उन्हे उतारा गया। उतरने की अनिच्छा के कारण, उतारते समय उनके खरोच आ गई और कुरता भी फट गया।

इस तरह सीमा के बाहर छोड़ देने के कारण उन्होंने अन्न का त्याग कर दिया और केवल गाजर पर रहने लगे। तीसरी बार उन्हे गिरफ्तार करके जयपुर से चालीस मील दूर रखा गया। वहाँ वह बारह-बारह मील रोज घूमते थे। घी तो उन्होंने शरीर मे चरबी की अधिकता के कारण छोड़ दिया था। पहरे वाले सिपाही जैसी मोटी रोटी अपने लिए बनाते थे, वही अपने लिए भी वह मँगा लेते थे। मोटी रोटी तथा सादा भोजन तो उन्हे हमेशा ही अच्छा लगता था। हा, मूग की दाल उन्हे नही भाती थी, लेकिन उन दिनो तो जो भी मिल जाता, वही खा लेते। इस प्रकार के खाने से उनके मन को भले ही सन्तोष रहा हो, पर उसका शरीर पर परिणाम हुए बगैर कैसे रहता ? रूखे-सूखे भोजन के कारण कमजोरी बढ गई। घूमते भी बहुत थे। अन्त में घुटने में दर्द बढ गया। इलाज कराया गया। पर इलाज के समय डाक्टर की गलती से बिजली से पैर जल गया। इलाज बिजली का चल रहा था। घाव हो गया। पर उन्होंने डाक्टर को अभय-दान दे दिया। चमडी जल गई और घाव हो गया। पर उन्होंने 'उफ' तक नही किया। उनकी प्रकृति ही कुछ ऐसी थी कि उन्हे अपने दु.ख-दर्द की थोडी-सी भी परवाह नही होती थी। डाक्टर स्वय हैरान रहते थे। जितने कठोर वह अपना दुःख-दर्द सहने मे थे, उतने ही नरम दूसरो के दर्द के प्रति रहते थे। दूसरो का थोडा भी दर्द वह बरदाश्त नही कर सकते थे।

पैर में घाव होने के कारण उनको अब जयपुर के निकट रखना आवश्यक हो गया। उन्हे कर्णावतो के बाग मे रखा गया।

जब वह मोरा सागर में रहते तब आसपास के गाँवो में घूमते और

लोगो के सुख-दु.ख की बाते ध्यानपूर्वक सुनते और जो कुछ उनसे बनता, वह करते। लोगो को शेर के शिकार का अधिकार न होने से शेरो का बहुत उपद्रव था। शेर जानवरो तथा आदमियो तक को ले जाते। इस बारे में उन्होने राज्याधिकारियो से लिखा-पढी की। इसी तरह जेयरा गाव मे पानी का बहुत कष्ट था। उन्होने कहा कि गाँववाले मिलकर कुआँ खोद लें। अपनी ओर से भी रुपयो का आश्वासन दिया।

इधर सत्याग्रह जोरो पर था। करीब पाँचसौ स्त्री-पुरुषो ने इसमे भाग लिया। श्री हीरालाल शास्त्री, राधाकृष्ण बजाज तथा उनके साथियो ने बहुत परिश्रम किया। बापूजी तथा जमनालालजी की इच्छा थी कि सख्या की अपेक्षा इसमे चुने हुए सत्याग्रही ही भाग ले।

जमनालालजी के जाने के बाद बात कुछ ऐसी हुई कि एक बार मुझे प्रजामडल की अध्यक्षा बनना पडा। प्रजामडल के सदस्यो में कुछ मतभेद था। शास्त्रीजी मेरे पास आए और बोले कि कोई रास्ता बैठाना है। मैंने कहा, "अगर मेरे अध्यक्ष बन जाने से दोनो पक्षो को समाधान होता हो तो मै बन जाऊँ।" मैं अपनी शक्ति को पहचानती तो थी, पर उनकी भावना समझकर मैने कहा,"मेरा उपयोग करना चाहो तो कर सकते हो।" उन्होने मुझे अध्यक्ष बना दिया।

देशी राज्यो के सत्याग्रह के सम्बन्ध में बापूजी की वाइसराय से भी कुछ बाते हुई थी। जब कहा गया कि आपस में समाधान हो जायगा, तब सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। सत्याग्रही तथा जमनालालजी भी छूट गए। जयपुर राज्य और प्रजामडल मे समझौता हो गया। प्रजामडल की बातें स्वीकार कर ली गई। जमनालालजी ने वहाँ बहुत दिनो तक रहकर कार्य की व्यवस्था जमाई।

इस सत्याग्रह मे जमनालालजी को बहुत कष्ट उठाना पडा। एक प्रकार से उनकी कसौटी ही हुई। एक तो उनका स्वास्थ्य पहले ही कोई ठीक नही था, फिर जेल तथा घुटने की बीमारी और घाव से उनका स्वास्थ्य और भी गिर गया। लेकिन सारे कष्टो को सहकर भी उन्होने आवेश या उत्तेजना मे कोई काम नही किया और सत्याग्रह की भावना का पूरी तरह पालन किया। वे सदा सतुलित रहे।

: २९ :

'सोती सुन्दरी'

ओम् हमारी तीसरी लडकी थी। तीसरी लडकी होने से उसके प्रति जन्म से ही लापरवाही मेरे मन मे रही। कमला बच्छराजजी के घर की प्रथम सन्तान थी, इसलिए उसके प्रति विशेष स्नेह था। मदालसा के और कमला के बीच कमलनयन हो गया था। इससे वह भी अखरी नही। ओम् आनन्दी और खेलने-कूदनेवाली थी। उसका शरीर बचपन से ही अच्छा रहा। वह स्वस्थ थी।

ओम् थैली मे लिपटी हुई जन्मी, जिसे मारवाडी मे 'कुतेवडो' कहते हैं। थैली फोडकर उसे मेरी सास ने निकाला। बोली—"ए बाई, कियाँ गुलाब का फूल-सी सोवणी लागे, छोरी तो भागवान है।" एक तरह से यह बात ठीक भी थी। उस साल कमाई बहुत हुई थी। जमनालालजी ने ओम् के जन्म की खुशी मे कुटुम्बवालो तथा नौकरो को बीमा-कम्पनी के शेअर भी बाँटे थे। उन्हे लडकियाँ सदा से ही अच्छी लगती थीं।

बचपन से पूजा-पाठ और 'ओम्' का नियमित जाप करने की मेरी आदत थी। लेकिन जापे में पूजा-पाठ मे अड़चन आने लगी। इस बात का मन मे कुछ विचार रहता। सोचा कि इस लडकी का नाम ओम् रखा जाय तो 'ओम्' का जाप इस निमित्त से होता रहेगा। मैं उसे 'ओम्,' 'ओम्' कहने लगी। यो उसका नाम ही ओम् पड़ गया।

मुझे बच्चो को मारने की आदत शायद नौकरो के कारण पडी। नौकर जब मेरी बात न सुनते या मेरा बताया हुआ काम मन के लायक न हो पाता तब मुझे गुस्सा आता। मैं उनपर चिढती। पर चिढने पर वह काम छोड़कर चले जायगे, इस डर से गुस्से को दबाने की कोशिश करती, पर क्रोध न दबता तो बच्चो पर ही उतरता।

मैं नौ बरस की उमर मे घर मे आई थी । बीस साल की उमर तक घर मे ऐसी रही कि कहाँ क्या हो रहा है, इसका मुझे पता ही न था । सब काम नौकर-नौकरानियाँ करती । एक तो मैं परदे मे रहती थी, दूसरे मै पूजा-पाठ, सीना-पिरोना और पढाने मे ही लगी रहती । मेरा नौकरो से कोई काम न पडता था । नौकरानियो से सम्बन्ध भी इतना ही था कि वे मेरा कुछ बधा-बधाया काम करती । मुझे कुछ कहने-सुनने का मौका ही न आता । उन्हे पगार (तनखा) दूकान से ही मिलती । इस तरह मुझे देने-लेने की आदत भी नही पडी । बच्चो के होने पर नौकरानियो से काम लेना पडा । डाक्टरनी ने कुछ ऐसे नियम बताए, जिनके अनुसार बच्चो का लालन-पालन करने की नौकरानियो को आदत नही थी । डाक्टरनी कहती, ये ठीक से काम नही करती । ऐसे करना चाहिए । बार-बार शिकायत सुनकर मै नौकरानियो से कहती और जैसा कहती वैसा न होता तो चिढती । नौकरानिया आपस मे कहती कि सेठानी तो खुद समझती नही और हमसे कहती हैं, ऐसे करो, ऐसे मत करो—जैसे हमने बच्चे पाले ही न हो । हमसे नही होता ऐसा काम । जब वे झुंझलाकर जाने लगती तब डालूराम उन्हे समझाकर और कुछ अधिक लोभ देकर काम मे लगाता । मै तो लेना-देना जानती ही नही थी और उनपर चिड-चिड किया करती तब वे मेरी सुने भी क्यो ! मुझे कहा जाता कि इनको प्रेम से निभाना चाहिए, नही तो नौकरानियाँ आयगी नही, तब मेरा गुस्सा बेचारे बच्चो पर निकलता । धीरे-धीरे मारने की आदत बढ गई और उसका सबसे ज्यादा शिकार बनी ओम् ।

रामकृष्ण के जन्म की बात है । मै जापे मे थी । ओम् तो खेल मे ही मस्त रहती थी । मैने उसे किसी काम से बुलाया, वह जल्दी नही आई । जब आई तब मैने इतने जोर से उसे मारा कि तपेली पिचक गई और मेरे हाथ को ऐसा झटका लगा कि उसका दर्द कई दिनो तक रहा और ठड के दिनो मे वह दर्द होता ही रहता । वर्षों तक मुझे मेरी ननद ने हलदी खिलाई, तब कही वह टूटा ।

साबरमती-आश्रम मे रहते थे, तब की बात है । ओम् के फोड़े और फुंसिया हो गई थी । मै उसे नहला रही थी । फोडे धोते समय वह

रोई। मैंने उसे चुप होने के लिए कहा और फोडे धोती रही तो वह और जोर-जोर से रोने लगी। मुझे गुस्सा आ गया। नहलाने का गिलास था, उसीको सिर मे दे मारा। चोट आई और खून बहने लगा। मैने चोट धोकर पट्टी बाधी। पट्टी भी खून से लाल हो गई। पर मेरे हाथ से छूटकर वह भागी और फिर खेलने चली गई। मै डरी भी और मुझे रोना भी आया। जमनालालजी को इस तरह मारना-पीटना अच्छा नही लगता था। वह बापूजी के पास गए और बोले, "जानकीदेवी की बच्चो को मारने की आदत कैसे छूटे? उसने आज ओम् को मारा।" बापूजी ने उपवास करने को कहा। उन्होने उपवास भी किया। उसका परिणाम भी मुझपर हुआ ही, पर मारना नही छूट सका।

ओम् पर मेरे मारने का या गुस्सा होने का विशेष असर नही होता था। एक बार तो उसने मुझपर नाराज होकर तीन दिन तक कुछ खाया-पिया ही नही। उन दिनो बजाजवाड़ी मे मीटिंगो की धूम थी। एक के बाद एक मेहमानो की पगते लगती और उठती। बच्चो के खाने-पीने की देख-भाल का समय ही न रहता था। लेकिन जब पता चला कि ओम् ने खाना नही खाया है तो मुझे डर लगा कि जमनालालजी को पता चलेगा और अनर्थ हो जायगा। तब ओम् को खाना खाने को राजी करने लगी। पर उसने अपना हठ न छोडा। लेकिन जब उससे कहा कि उसके काकाजी को पता चलेगा और उनके मन को बडी तकलीफ होगी तो यह दलील काम कर गई और ओम् ने खाना खा लिया। बच्चो में हमेशा यह भावना रही कि अपने काकाजी को किसी तरह का कष्ट न पहुँचे। तीन दिन से भूखी-प्यासी थी, पर किसीको उसके चेहरे या रहन-सहन से कुछ भी पता न चला। जमनालालजी की इच्छा थी कि बच्चे सस्कारी और व्यवस्थित बने। उनमें समय की पाबन्दी आवे। घर पर रहकर यह होना कठिन लगा। साबरमती रखने में यह भी एक उद्देश्य था कि बच्चे वातावरण से तथा दूसरो के बच्चो से सीखे। दूसरो के बच्चे तो घटी होने के पहले ही नहा-धोकर तैयार रहते और कक्षा मे या प्रार्थना मे साफ-सुथरे पहुँचते। हमारे तो जैसे रहते वैसे ही पहुँचते, इसलिए उन्हे लगा कि छात्रावास में बच्चों को रखने से उनमें व्यवस्थितता आयगी और सबके साथ रहने

की आदत पडेगी । इसलिए उन्होने मदालसा और ओम् को 'शारदा-मन्दिर' मे रखने का निश्चय किया । मैंने बच्चो की तैयारी की और कपड़े-सामान तथा उन्हे लेकर शारदा-मन्दिर गई । मदालसा तो मोटर में खुशी से आश्रम मे गई, पर ओम् मोटर पकडे रही । बडी मुश्किल से दो-तीन शिक्षिकाओ की मदद से उतारा और मै मोटर लेकर वापस आई । उधर ओम ने ऐसा ऊधम मचाया कि शिक्षिकाएँ उसे वापस लेकर आईं । कुछ दिनो बाद समझा-बुझाकर बडी मुश्किल से उसे शारदा-मन्दिर मे भिजवाया जा सका ।

भले ही मै उसपर गुस्सा होती या मारती, फिर भी वह मुझसे अलग नही रहना चाहती थी और मुझे भी उसे अलग रखना अच्छा नही लगता था । पर जमनालालजी को उसकी पढाई की चिन्ता रहा करती। जमनालालजी तथा बापूजी ने जेल से चिट्ठी लिखकर कन्या-आश्रम में भेजने की सलाह दी । दूसरे दिन सवेरे की प्रार्थना के बाद उसे भेजना तय हुआ । रात को मुझे नीद न आई । कमलनयन और मदालसा तो आश्रम मे थे ही, अब यह भी चली जायगी, यह सोचकर रोना आता था । मै जब जोर से रोने लगी तब कमला ने आकर कहा—"माँ, तू क्यो रोवे हे ?" मै बोली—"बाई, ओम् ने भायो कन्याश्रम मे भेजे हे, जिस्यूँ मने रोवणो आवे हे ।" तब कमला ने जाकर ओम् का कन्याश्रम जाना रुकवाया ।

मेरा ओम् को मारना दादीजी (मेरी सास) को भी अच्छा नही लगता था । मेरे गुस्सा होते ही वह रोने लग जाती । उन्होने कभी अपने बच्चो को नही मारा था । इसलिए मै मारती तो वह रोने लगती थी ।

बापूजी और जमनालालजी के जेल से छूटने पर बापूजी के हरिजन-दौरे की बात चली । सेठजी ने मुझसे पूछा कि ओम् को हरिजन-दौरे में बापूजी के साथ भेजा जाय तो कैसा रहे ? मैने कहा, बहुत अच्छा । मै उसे बापूजी के साथ भेजने के लिए राजी हो गई, पर जमनालालजी को बापूजी से कहने में सकोच हो रहा था । बापूजी का दल छोटे-से-छोटा हो, ऐसा वह प्रयत्न कर रहे थे, लेकिन बापूजी के साथ जाने से उसका हित होगा, इसलिए वह बहुत सकोच के साथ बापूजी से बोले, "बापूजी, ओम् को साथ ले जाने में आप पर भार तो होगा ही, पर उसे लाभ होगा, इस-लिए साथ ले जा सकें तो अच्छा ।" बापूजी बोले, "भने, एनो शो भार

भवानो, ए तो रमकडूं छे।" (कोई हर्ज नही। उसका भी कोई भार होगा। वह तो खिलौना है!)

एक वर्ष तक ओम् वापूजी के साथ रही। वापूजी ने उससे काम भी लिया और काम लेते-लेते उसे सिखाते भी रहते। उसे बहुत सीखने को मिला। बापूजी ने दौरे से जो पत्र लिखे थे, उसमे उन्होने ओम् के आनन्दी और मस्त स्वभाव के बारे मे लिखा था। वह काम हँसते-हँसते करती, पर उसने खाने-पीने या रहने-करने के बारे मे कभी शिकायत नही की। बेफिक्र तो इतनी थी कि जहाँ भी सोने को मिलता, झट सो जाती। मोटर मे वापूजी के पैरो के पास ही उनका सहारा लेकर सो जाती। वापूजी इसी कारण उसे 'सोती सुन्दरी' कहते थे। उसका वजन भी काफी अधिक था। यात्रा से काफी मोटी होकर लौटी। इसी दौरे मे वापूजी पर पूना मे बम फेका गया था। ओम् भी साथ मे थी। वापूजी और ओम् आदि साथ के लोग बच गए। वापूजी 'सोती सुन्दरी' के सिवा ओम् को 'पंडिता' भी कहते। पडिता से उनका मतलब था दूसरे को उपदेश देने मे कुशल। उसने बापूजी को अपना स्वास्थ्य अच्छा रखने के विषय मे एक उपदेश-भरा पत्र लिखा था। उत्तर मे वापूजी ने उसे पडिता की पदवी दी थी।

एक वार वच्छराज कम्पनी के डायरेक्टर ने कपडे की मिल लेने की सूचना दी। उनके आग्रह से जमनालालजी के मन मे यह विचार आया कि ऐसी एक आदर्श मिल चलाई जाय, जिसमे मजदूरो को सब तरह की सहूलियते हो। मुझे और बच्चो को यह वात अच्छी नही लगी। वापूजी के पास हम लोग गए। मैंने वापूजी से कहा, "जमनालालजी यह वला किसलिए ले रहे हैं?" ओम् वोलने मे कुछ ढीठ होने से वोली—"हम बाहर तो खादी के लिए प्रचार करते हैं, पर जब मिल होगी तो लोगो पर क्या असर होगा। आपको कांग्रेस के लिए पैसे चाहिए, इसलिए काकाजी को मिल लेने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।" वापूजी ने जमनालालजी को पत्र लिखा कि उन्हे मिल नही लेनी चाहिए, पर जमनालालजी ने पत्र पहुचने के पहले ही मिल न लेने का निर्णय कर लिया था। उनके सामने खादी का विचार था। उन दिनो वहुत सस्ते मे मिले मिल रही थी और उनमे कमाई भी लाखो की थी।

ओम् को बापूजी की सलाह से पहले मद्रास मे कुमारप्पाजी की बहन की सस्था मे और उसके बाद मिसेस कज़िन्स की सस्था मे मदनापल्ली पढने के लिए भेजा। मद्रास मे जमनालालजी ने अबुजम्मा को ओम् का स्थानीय पालक बनाया था। बापूजी ने आशा रखी थी कि वह वहाँ अंग्रेजी, सगीत आदि सीखेगी तथा सस्कृत उच्चारण अच्छे होगे। जब वह मद्रास जाने लगी थी तब मैंने उसके साथ बहुत सामान बाध दिया था, काफी तैयारी की थी, तब जमनाललजीने हँसते हुए कहा था कि जब घर रहती है तब तो गुस्सा होती है, मारती है और जब बाहर जाती है तब सारा प्रेम उमड पडता है। ओम् की इच्छा से उसकी सहेली को भी इतनी दूर भेज दिया। इस तरह लडकियो के मन की इच्छा पूरी करके जमनालालजी बच्चो को लाड से बिगाडते भी थे।

जयपुर-सत्याग्रह के समय जमनालालजी का आगरे मे राजनारायणजी के कुटुम्ब से सम्बन्ध आया। घर के लोग भले और सस्कारी लगे। फिर जब राजनारायणजी के पिता स्वास्थ्य के लिए जुहू रहे तब जमनालालजी भी वही थे। उनसे अधिक सम्पर्क बढा। बच्चो से भी उनका अधिक सम्पर्क आया। फिर जमनालालजी का विचार उस घर मे से लडका या लडकी लाने का हुआ।

जमनालालजी मे आदमी को परखने की बहुत बडी शक्ति थी। यही कारण है कि उन्होने लडके-लडकियो के ऐसे सबन्ध जोडे कि उनका जीवन सुखी बन सका। जब ओम् का सबध राजनारायणजी से हुआ तब वह खादी नही पहनते थे, लेकिन बात-चीत से जमनालालजी ने जान लिया कि वह राष्ट्रीय विचार के हैं और गाधीजी की अच्छी बातो को अपना लेगे। हुआ भी वैसा ही। वह अपने-आप खादी पहनने लगे और उनके घर मे अधिक-तर खादी का ही उपयोग होता है। बच्चो तक को खादी पहनाते हैं। दुर्व्य-सन तो तीनो जवाइयो मे मे से किसी मे भी नही है। यह सब भगवान् की ही कृपा समझनी चाहिए।

जमनालालजी आगरे से विवाह का निश्चय करके लौटे। वह जिस दिन आये उस दिन से सातवे दिन विवाह था। इतने थोडे समय मे विवाह करना आसान नही था। पर जमनालालजी ने सावित्री और राम को

व्यवस्था का काम सौंपा। मै टाइफाइड से बीमार थी और मदालसा के घर थी। मैं तो सिर्फ फेरे के समयही आई। विवाहकी सारी तैयारी सावित्री और रामकृष्ण ने ही की। कपडे-सामान से लगाकर खाने-पीने तक की व्यवस्था करनी थी। मिठाइयों के नाम खोज-खोजकर एक लम्बी फेहरिस्त बनाकर सावित्री जमनालालजी के पास पहुँची। उन्होने कहा कि इसमें से जो अच्छी लगे, वही एक मिठाई चुन लो और बनवाओ। उसकी उमंग मन-ही-मन रह गई, लेकिन उसने उनके कहने के अनुसार एक ही मिठाई में सन्तोष माना।

ओम् की विदाई के समय जमनालालजी की भी आँखे गीली हो गईं थी। कमला की शादी के समय उनपर क्या असर हुआ, यह देख नही पाई थी। मदालसा तो वरधा रहने वाली थी, इसलिए उसकी विदाई का तो सवाल ही नही था, पर ओम् के लिए उनके-जैसे धीर-गम्भीर व्यक्ति भी द्रवित हो गये। बेटी की विदाई सभी की भावना को कोमल बना देती है।

जब ओम् और राजनारायणजी नैनीताल थे, तब जमनालालजी वहाँ गए। उन्हे राजनारायणजी और ओम् का परस्पर प्रेम देखकर बहुत सन्तोप हुआ। लौटने पर जमनालालजी ने मुझसे कहा कि देखो, अब ओम आये तो खयाल रखना, उसपर गुस्सा न होना। राजनारायण उसे बहुत चाहता है, तुम्हारा कहना-सुनना उसे अच्छा नही लगेगा।

ओम् डेढ-दो महीने से वरधा ही थी। राजनारायणजी उसे लेने वरधा आये। कुछ दिन रहकर दोनो बम्बई गये। वहाँ से वे सीधे अपने कार्यक्रम के अनुसार नैनीताल जाने वाले थे, पर न मालूम क्यो एकाएक उसका वहाँ मन ही न लगा। उसने वापस वरधा जाने की ज़िद की, मानो वरधा उसे बुला रहा हो। सामान खरीदना छोडकर वर्धा पहुँच। राजनारायणजी साथ थे। वे दोनो जमनालालजी की मृत्यु के दिन सवेरे आठ बजे ही वर्धा पहुँचे।

जमनालालजी के जाने से आघात तो सबको लगा, पर कुटुम्बवालो पर स्वाभाविक तौर से अधिक ही लगा था। सब घरवालो के मन में यह भाव था कि हम उनके काम को करके उनकी आत्मा को सन्तोप दें। सावित्री जब 'करेंगे या मरेंगे' आन्दोलन में जेल जाने लगी तब राज-नारायणजी ने भी ओम् को इजाजत दे दी।

: ३० :

आखिरी सन्तान

रामकृष्ण आखिरी सतान है। वह बचपन मे बडा स्वस्थ और शान्त था। रोता भी कम था। बचपन मे उसकी उगली दरवाजे में दब गई थी और टुकडा कटकर गिर गया। उसे उठाकर वह दादीजी के पास गया और बोला, "देखो दादीजी, मेरे एक आगली की दो आगली होगी।" दादीजी ने उगली के दो टुकडे देखे तो वह रोने लगी, यह देखकर वह भी रोने लगा। पहले तो उसे खयाल ही नही आया। बाद मे उगली जुड गई।

बडो के सामने वह सीधा और आज्ञाकारी था, पर बराबरीवालो से सदा हँसी-मजाक किया करता। उसका यह स्वभाव आज भी है।

पढना-लिखना राम का बहुत देरी से शुरू हुआ। पहले तो ठीक सिलसिला नही जमा। बापूजी ने जबतक स्कूल-कालिजो के बहिष्कार पर जोर रखा था तबतक बच्चे स्कूल-कालेजो मे गए ही नही। घर पर या आश्रम मे जो पढाई होती वही होनी। लेकिन जब नवभारत विद्यालय बापूजी की सलाह से वरधा में चलने लगा तब फिर राम वहाँ जाने लगा। पढाई देरी से शुरू होने पर भी सोलह साल की उमर मे वह मैट्रिक पास हो गया।

चौदह साल तक हममे से किसीने भी सिनेमा नही देखा था। मिठाई न तो घर पर ही बनती थी और न बाहर ही खाई जाती। कुंआरे लडके-लडकियो को शादी मे भी नही जाने देती। एक बार मेरी बडी भाभी आई तो मोतीचूर के लड्डू लाई होगी। उन्हे देखकर राम बोला—"भाभीजी, इसे क्या कहते हैं?" वह बोली—"मोतीचूर के लड्डू।" बस, इतना सुनकर वह तो खेलने दौड गया। पर यह देखकर मेरी भाभी को रोना आ गया। वह बोली—"तुम्हारे इतने बडे घर में बच्चे कैसे तरसते

हैं ! बाईजी, मैं तो अभी लड्डू बनवा देती, लेकिन आपके घर मे तो ऐसी चीजे बनाने का हुक्म ही नही है ।"

मेरी अनुपस्थिति मे ओम् ने लड्डू खाया और मेरी भाभी से कहा—"मामीजी, मा से कहना मत, पर मेरे लिए लड्डू जरूर भेजना ।"

मेरी भाभी ने इदौर जाकर पारसल भेजा । पारसल को खोला और देखा कि उसमे लड्डू है । तब विचार हुआ कि वे कैसे आए ।

ओम् दौडकर दादीजी से धीरे-से बोली—"दादीजी, ये तो मामीजी ने मेरे कहने से भेजे हैं ।" तब जाकर पता चला कि यह सब ओम् की करामात है । सादगी का यह सिलसिला १९३४ तक चला । बाद मे तो कम हो गया ।

जब रामकृष्ण वरधा मे पढता था तब उसने और उसके साथियो ने 'घनचक्कर-क्लब' चला रखा था, जिसमे सब बच्चे खेलते-कूदते थे । साथ-साथ देहातो मे प्रौढ-शिक्षण और चरखे का भी काम करते । इस क्लब में कभी-कभी बडे-बूढे भी खेलते थे ।

घनचक्कर-क्लब के लडको के साथ राम भाई का-सा व्यवहार करता, लेकिन मुझे उससे चिढ आती । लडके कहते, धनवानो का धन और अपनी अक्ल लगाकर देश का काम करेंगे । मुझे यह छोटे मुँह बडी बात लगती । मैं उनसे तो क्या कहती, पर अपने बच्चो से कहा करती कि तुम इन घनचक्करवालो के साथ घनचक्कर बन जाओगे । मुझे घनचक्कर-क्लब के लड़को पर इसलिए भी चिढ आती थी कि वे राम को शांति से बैठकर खाने-पीने भी नही देते थे । जब देखो तब साथ ।

व्यक्तिगत सत्याग्रह चला और जमनालालजी जेल जाने लगे तो राम ने उनसे कहा कि परीक्षा के बाद मेरा भी सत्याग्रह करने का इरादा है । समय थोडा था, ज्यादा बात तो हो नही सकी, पर वह इतना ही बोले कि बापूजी की सलाह से जो कुछ करना हो, करना । तीन-चार महीने बाद परीक्षा हो जाने पर राम बापू के पास पहुँचा । उस समय उसकी उमर सोलह साल की थी । बापूजी बोले—"मै इस सत्याग्रह मे अभी बच्चो को नही भेजना चाहता ।" जब वह आग्रह करने लगा तो बापूजी ने उसे तीन-चार दिन तक अपने पास रखकर उसकी जाच-पडताल की । उससे

कहा कि जबतक यह सत्याग्रह चलेगा तबतक मुझको बार-बार जाना पडेगा। तुम्हारी तैयारी रहनी चाहिए। वह बोला—"आखिर कितने दिन तक जेल जाते रहना पडेगा ?" वह बोले—"कम-से-कम पॉच वर्ष तो मान ही लेना चाहिए। मेरी पॉच साल की तैयारी है।" कुटुम्ब के बहुत-से लोग और मैं जेल जाकर आई थी। इसलिए जेल का अनुभव था। मेरा मन राम को जेल भेजने के लिए राजी नही था, इसलिए मैंने बापूजी को इशारा किया कि इसे रोकना ठीक रहेगा। लेकिन वह अपने विचार पर पक्का रहा। बापूजी को इजाजत देनी पडी।

उसने सत्याग्रह किया तो पहली बार सौ रुपये जुरमाना हुआ। फिर दूसरी बार किया तो दो-सौ। तीसरी बार चार महीने की सजा हुई। सजा पूरी कर शनिवार को आया। सत्याग्रही को दस रोज मे वापस जाने का आदेश था, लेकिन उसकी नो फिर से तुरन्त जाने की तैयार थी। दूसरे दिन रविवार आ गया, इसलिए रुकना पडा। उसने सोमवार को फिर से सत्याग्रह किया और छ. महीने की सजा हुई। जब सत्याग्रह स्थगित हुआ तब वह विनोबाजी के साथ छूटा।

जेल जाने से पहले वह मैट्रिक पास हो गया था। जेल से छूटने पर उसने पढाई शुरू की। लिखा-पढी के बाद कालेज मे भरती हो सका। कालेज का सत्र तो बहुत पहले शुरू हो गया था, परीक्षा के लिए बहुत थोडे दिन बाकी रह गए थे। इसलिए बडी मुश्किल से इजाजत मिली। परीक्षा दी और पास हो गया। इसी अवधि मे उसके पिताजी की मृत्यु हो गई। ऐसे समय मे चित्त को स्वस्थ रखकर पढाई करना आसान न था। पर उसकी तो सदा से यही आदत रही है कि जो काम सौप दिया जाय उसीमे वह लग जाता है। जमनालालजी की मृत्यु के दूसरे दिन भी उसे मैंने कालेज भेजा। यह बात दूसरी थी कि उनकी मृत्यु के कारण कालेज बद रहने से उसे लौट आना पडा।

उसके काकाजी की मृत्यु के बाद कुटुम्बवालो ने अपने बाल दिए। गगाबिशनजी, राधाकृष्ण आदि कुटुम्बवालो ने मुडन करवाया, तब राम को भी कहा गया। वह बोला—"बाल देने में क्या पडा है! पिताजी के लिए हम जितना करे, थोडा ही है।" उसने सिर नही मुडवाया। उधर कमल-

नयन गोला गोकर्णनाथ में था। उसने भी मुंडन नही करवाया। कमल-नयन जब वरधा आया तब उसने मुझसे कहा कि बाल देने से तुझे अच्छा लगता हो तो दे दू। पर मैंने भी इसमे कोई महत्व नही देखा। देखा जाय तो दोनो भाइयो के विचार मे कितना साम्य था। राम वरधा था और कमल गोला, पर दोनो के विचार एक-से थे कि इतनी तुच्छ वस्तु हम पिताजी को क्या अर्पण करे! यो बच्चो के लिए यह पहली ही मौत थी और इस तरह की पहले कोई चर्चा भी हुई नही थी। फिर कमलनयन ने यह भी कहा कि पिताजी के दु ख को मनहूस चेहरा बनाकर क्या प्रकट करना! जो दुःख हुआ, उसका दिखावा थोडे करना है। राम भी तीसरे दिन घनचक्कर-क्लब मे खेलने चला गया। बच्चो ने इस दुःख को बडे धीरज से बरदाश्त किया और अपने पिता के लिए जो श्रद्धा थी वह उन्होंने उनकी इच्छा की पूर्ति में ही समझी। सब घरवाले गम्भीर थे, लेकिन रोना-धोना न देखकर मारवाड से आये हुए लोग अचरज करते थे।

फिर से जुलाई मे गर्मियो की छुट्टी के बाद कालेज शुरू हुआ। लेकिन अगस्त में जब 'करो या मरो' आन्दोलन शुरू हुआ तब राम फिर जेल गया। १९४४ मे छूटा। जेल में वह अपने साथियो से हिलमिल गया। जेल से छूटकर आनेवाले उसके विषय में प्रेम और आत्मीयता प्रकट करते। अपने साथियो के सुख-दु.ख का वह खयाल रखता था। उनको किसी चीज-वस्त की जरूरत होती तो अपने पास से दे देता या मगवा देता।

उसने जेल में खेल-कूद, पढने-लिखने और कातने मे अपना समय मजे से काटा। किसी तरह की कोई शिकायत नही की। हाँ, उसे यह डर अवश्य था कि बाहर निकलने पर भाई उसे व्यापार मे लगा देगा। उसने अपने पत्र में लिखा भी था। तब मैंने उसे लिखा कि तुमको चिन्ता करने की जरूरत नही। जैसा तुम्हारा मन होगा वैसा बापूजी की सलाह से किया जायगा, और हुआ भी वैसा ही। बापूजी की सलाह से ही वह व्यापार मे लगा। व्यापार में लगने तक देश का ही काम करता रहा। प्रथम बार जेल गया था तब से अंतिम बार जेल से छूटने तक सवा चार साल हुए थे। उसने बापूजी से कहा—"आपको दिये पाच वर्ष में से नौ महीने बाकी हैं। आप नौ महीने चाहे जो काम लें।" बगाल, आसाम

और मदरास के दौरे मे राम को बापूजी अपने साथ ले गए। उसपर हरि-जनफंड और बापू के दस्तखतो के पैसे वसूल करने के अतिरिक्त बापू के सामान को सम्हालने की जिम्मेदारी थी। इसलिए मजाक मे बापू उसे 'हमाल' (मजदूर) कहते थे। साथी भी उसे 'बापू का हमाल' कहने लगे। उसके बाद वह नौजवानो और विद्यार्थियो मे काम करने लगा। उसने विद्यार्थी कांग्रेस के काम में काफी हिस्सा लिया। एक बार वह मध्यप्रदेश की विद्यार्थी कांग्रेस का अध्यक्ष भी बना। अ० भा० विद्यार्थी कांग्रेस का वह खजाची भी था। विद्यार्थी कांग्रेस की ओर से प्रेग मे होनेवाली अन्त-राष्ट्रीय विद्यार्थी कांफ्रेंस मे भी वह गया था। युवक कांग्रेस शुरू करने मे उसका हाथ रहा और उसका भी काम किया।

उसके विवाह की चर्चा जमनालालजी के सामने ही चल रही थी, लेकिन उस समय तो उसकी उम्र उन्नीस वर्ष की ही थी। इसलिए वह इतनी जल्दी सम्बध करना पसद नही करते थे। जब जेल से छूटा तब चर्चा चलने लगी। यो तो घर मे वातावरण ऐसा ही था कि जाति के बाहर की अच्छी लडकी मिल जाय तो प्रथम बार दूसरी जाति मे विवाह हो। बाते भी चलने लगी। पर मेरा मन तो जाति की कन्या आवे तो अच्छा, ऐसा था। बाते हुईं, लेकिन अन्त मे उसका सम्बन्ध सावित्री की बहन विमला के साथ ही निश्चित हुआ। इस सम्बन्ध के मामले मे सावित्री तो बिलकुल तटस्थ रही। दोनो भाइयो ने ही निर्णय किया और विवाह भी जैसे उनके पिताजी की इच्छा रही थी वैसा ही हुआ।

यो विमला को जमनालालजी का आशीर्वाद तो मिला हुआ ही था। सावित्री का सम्बन्ध होने पर वह उसे उसके साथ वरधा ले आए थे। उस समय उसकी उमर कोई दस साल की रही होगी, पर उसकी बुद्धिमानी पर वह बहुत खुश थे। कहते, बहुत होशियार लडकी है। वह उस समय उनके साथ ताश खेलती थी, बाते करती थी। उसीसे उन्होंने परीक्षा करके कहा होगा। उनकी डायरी मे भी इसका उल्लेख मिलता है। उसके इस घर मे आने से दोनो भाइयो का प्रेम बना है, जो आजकल के समय मे कठिन है। मै तो यही मानती हूँ कि जमनालालजी तथा बडो के आशीर्वाद तथा भगवान् की कृपा से घर मे सभी के सम्बन्ध अच्छे हुए और सबको

ऐसे ही साथी मिले, जो एक-दूसरे के पूरक हैं।

राम मे आज भी अपने बड़ों के प्रति श्रद्धा है और बराबर बडो के अनुशासन मे चलता है। मेहनत, काम की लगन एवं व्यवस्थतता के कारण वह व्यापार का बोझ अपने ऊपर होते हुए भी जमनालालजी के पत्रो का सकलन और डायरियो के व्यवस्थित करने मे अपना समय देता है। 'पाँचवे पुत्र को बापू के आशीर्वाद' मे उसने बहुत मेहनत की। बच्चो को सदा अपने पिताजी की कीर्ति और कामो का खयाल रहता हैं। यही मेरे लिए सतोष की बात है।

: ३१ :

मेरी परेशानी

जमनालालजी के कान मे दर्द रहा करता था। वहुत इलाज कराया, पर कोई लाभ न हुआ। उसका मेरे मन पर भी वोझ रहता था। मेरी झुँझलाहट इसलिए भी थी कि वह अस्वस्थ होते हुए भी निरन्तर कार्य मे लगे रहते थे। मेरे कहने का कोई असर नही होता था। यदि वह घर पर रहते तो आने-जानेवालो का ताँता लगा रहता। उन लोगो की आव-भगत, व्यवस्था तथा कार्यो के सम्वन्ध मे वाते होती रहती। उनको अतिथि-सत्कार और सार्वजनिक कार्य मे ही आनन्द और सुख मालूम देता। वाहर जाते तव भी कार्यो तथा कार्यकर्त्ताओ के साथ वातो मे लगे रहते। मोटर मे, रेल मे भी काम की वाते चलती रहती। मै चाहती थी कि थोडा आराम करे, पर उनकी वाते क्यो रुकने लगी। अन्त मे वह इतने थक जाते कि मुझे भी उनसे वात करने मे दया आने लगती। गुस्सा तो मन मे रहता ही, लेकिन क्या करती ? अति प्रेम की इन दो अवस्थाओ मे मेरा शरीर अस्वस्थ और कमजोर मन चिडचिड़ा रहने लगा। वात-वात में वोलने के स्थान पर रोना आ जाता था।

मै चाहती थी कि उन्हे थोडा आराम मिले। मुझे उनकी सेवा करने का थोड़ा मौका मिले। पर ऐसा कुछ वनता ही नही था। इसका मुख्य कारण था सार्वजनिक काम, मेहमानो का आना-जाना, सेक्रेटरियो और नौकरो से माथा-पच्ची। मैं सोचने लगी कि ये ही बाते हैं जिनके कारण उनको आराम नही मिलता और मै सेवा करने से वचित हूँ। आदमी मोह के कारण क्या-क्या नही सोच लेता। सो मै उनको परेशान और व्यस्त रखनेवाली इन सव वातो से चिढने लगी। वह कोई सार्वजनिक काम की वातें करते या दौरे मे साथ चलने को कहते तो मुझे गुस्सा आ जाता।

दिनो-दिन हम दोनो के बीच खीचातानी बढने लगी। वह स्वय समाधान के लिए भरसक प्रयत्न करते थे और जानते भी थे कि दोनों मे यह खीचा-तानी क्यो हो रही है, लेकिन उनका जीवन तो पूरी तरह से सार्वजनिक हो ही गया था। वह उससे चाहते तो भी छूट कैसे सकते थे? वह तो उसमे सिर से पैर तक डूब चुके थे। यह तो मेरा ही काम था कि मैं उनके स्वभाव और रुचि को समझकर उनका साथ देती और उनके आनन्द मे अपना आनन्द मानती। इस तरह अगर होता तो उनके मन पर मेरे असमाधान का भार नही रहता। मुझे इसमे आपत्ति थोडे ही थी कि वह सार्वजनिक काम करें। यो तो मुझे भी सार्वजनिक काम प्रिय ही थे फिर भी मैं चाहती थी कि वह इसमे इतने लीन न हो जायं कि शरीर की भी सुधि न रहे।

उन्हे चना, मूंगफली, कच्ची मकई आदि अच्छी लगती थीं। श्री लक्ष्मीनारायण-मंदिर में प्रतिवर्ष उत्सव के अन्तिम दिन तले हुए काबुली चने प्रसाद के रूप मे बाँटे जाते थे। प्रसाद लेने के लिए भीड़ काफी होती थी। खाने में स्वादिष्ट लगते थे। एक वर्ष के उत्सव के समय जमनालालजी बाहर गए हुए थे। मैंने उनके लिए थोडे चने बचाकर रख लिये थे। मैं चाहती थी कि वह अकेले में मिलें तो उनको चने खिलाऊ। अकेले मे कोई चीज खाना उनके लिए जहर-सा था। सबको खिलाने में तथा सबके साथ खाने में ही उनको सुख मिलता था। मैं बार-बार टोकनी में वे चने छिपा कर ले जाती, पर वह कभी अकेले में मिलते ही न थे। चने लेकर सामने जाती तो वह कोई-न-कोई काम ही बता देते। किसीको सेवाग्राम दिखाना है, किसी को चाय पिलानी है, किसीको बाथ-रूम दिखाना है तो किसीके लिए कुछ और प्रबन्ध करना है। मैं रूआसी हो जाती पर करती क्या? एक रोज वह भोजन करके उठे। कुछ लोग सुपारी खाने मे लगे थे और कुछ आगे निकल गए थे। उनको बरामदे में से जाते देख-कर मैंने उन्हे चने दिखाए। वह यह तो जानते थे कि अगर वह कुछ खा लेंगे तो मुझको सतोष होगा। लेकिन रुकें भी कैसे? सामने भी कुछ लोग थे और पीछे भी कुछ लोग थे। उन्होने चने लिये और फकी मार ली। अब उनकी बड़ी मुश्किल हुई। बोलना और चबाना एक साथ कैसे

हो सकता था ? वह सारे चने निगल गए। इससे उन्हे थोड़ा कष्ट भी हुआ। उसे देखकर मुझे और भी दुख हुआ।

इस तरह मेरी अशाति वढती गई। छोटी-मोटी वातो को लेकर असतोप में भी वृद्धि होती गई और मैं चिडचिडी वनती गई। मेरे स्वभाव को चिडचिड़ा वनाने में नौकरो ने भी मदद दी। जमनालालजी को खुश रखने के लिए तो वे खूब दौड-धूप करते, पर मेरी बात की अवहेलना की जाती। जमनालालजी हर तरह से नौकरो को खुश रखते थे और उनके साथ परिवार जैसा व्यवहार करते थे। कहा करते थे कि अगर नौकरो को रखना हो तो अच्छी तरह रखो, नही तो विना नौकरो के काम चलाओ। नौकरो के प्रति किसी भी प्रकार के अन्याय को वह वरदाश्त नही कर सकते थे। उनके प्रति वह वहुत उदार रहते थे। नौकरो के विना चलाना सम्भव नही था और नौकरो का मेरे कहने में चलना भी असम्भव ही था। इस तरह नौकरो के कारण भी मन को क्लेश होता रहता।

जमनालालजी के सेक्रेटरियो का ठाट तो और भी वढा-चढा रहता था। वह हमेशा नए-नए युवको को सेक्रेटरी वनाते, व्यवहार की वातें सिखाते, उनकी जरूरतो का खयाल रखते। लेकिन जमनालालजी के कारोवार को देखकर उन युवको मे भी व्यापार करने और धन कमाने की इच्छा पैदा हो जाती। उनकी इच्छा को समझकर दो-तीन वर्ष वाद जमनालालजी अपने सेक्रेटरी को किसी अच्छे स्थान पर लगा देते। कालेज से निकले हुए युवको की वुद्धि तो तेज होती थी, पर व्यावहारिक अनुभव उनमें नही होता था। इसलिए जमनालालजी का दिमाग उनको व्यावहारिकता तथा काम-काज सिखाने में खाली होता था। जमनालालजी के पास रहकर सीखे हुए लोग वडे स्थानो पर भी रख लिये जाते थे। जमनालालजी के मित्रो की भी माग रहती थी कि काम सीखे हुए होशियार आदमी उनको मिले। "लाओ जी, तुम ऐसा नर, पीर-ववर्ची-भिश्ती-खर", ऐसी माँग उनके पास सदा वनी रहती थी। तव वे अपने सेक्रेटरियो को दे दिया करते और अपने लिए नया रगरूट खोज लेते। हर दूसरे-तीसरे वर्ष इस तरह उनके सेक्रेटरी वदल जाते थे। नए आदमी को काम समझने में थोडी देर तो लगती ही थी।

वे किसी भी आदमी को रखते समय उसके लिए "पीर-बवर्ची-भिश्ती-खर" वाली कसौटी तैयार रखते थे। वे यह कह देते थे कि उन्हे किसी भी समय कोई भी काम दिया जा सकता है। शुरू मे उत्साह और चाह मे हर आदमी उनकी बात मान लेता था और प्रेम भी वह ऐसा करते थे कि सेक्रेटरी भी उनका काम मन लगाकर करते थे।

इस प्रकार कई सेक्रेटरी आये और गये। इनमे कई तो आज बडी अच्छी-अच्छी जगहो पर हैं और अच्छा काम कर रहे हैं। लेकिन कुछ ऐसे भी आये, जिनसे बाद मे जमनालालजी को तथा हम सबको बडी तकलीफ हुई। उन्होने अपनेको मिले मौके का दुरुपयोग किया। इन सेक्रेटरियो के बीच मे मुझे भी रहना पड़ता था। अपने स्वभाव के अनुसार कई सेक्रेटरियो से मेरी नही बनी, क्योंकि जमनालालजी तो उनको बहुत स्वतन्त्रता देते थे, पर मेरे कारण उनपर घर की बातो और व्यवहारो मे कुछ कसावट आती थी। मुझे इन रगरूट सेक्रेटरियो से व्यवहार करने मे बडी कठिनाई भी होती थी। जमनालालजी तो हरेक को बढावा देकर उसके गुणो को खोजकर उससे काम ले लेते थे, पर मुझे तो उसमे बुराई और कमिया ही दिखाई देती थी और उसका कोई काम पसन्द ही नही आता था। हर काम मे नुक्स ही निकाला करती थी। आखिर-आखिर मे तो जमनालालजी ने यह तय कर लिया था कि जो भी नया आदमी आता, उसे वे मेरे पास भेज देते और अगर वह मुझे जंचता तो ठीक समझा जाता। मेरी कसौटी और भी कडी होती। कोई कहता कि वह बी. ए. पास है तो मैं उसे सेक्रेटरीपन के लिए नापास कर देती। अगर कुंवारा होता तो वह भी नापास हो जाता।

जमनालालजी की सेक्रेटरियो को हिदायत रहती थी कि मेहमानो का पूरा-पूरा खयाल रखा जाय। उनको किसी प्रकार की असुविधा न हो। एक बार किसी ने कहा कि मेहमान-घर में तो दूध के गिलास भर-भर कर पिये जाते हैं। मालिश भी होती रहती है। फलो की भी मौज है। जमनालालजी ने कहा, "भाई, पेट मे ही तो खाते हैं। किसी की तबियत सुधारना खुशी की ही बात है।"

दामोदरजी जमनालालजी के अंतिम सेक्रेटरी थे। मुझसे मीरा और

दामोदरजी का परिचय कराते हुए जमनालालजी ने कहा था कि यह दम्पति बहुत सेवा-भावी और भावुक हैं। अपने पास रखने लायक है। तुम्हारी कसौटी के मुताबिक ही ये अपने पास निभने जैसे हैं।

और दामोदरजी ने तो सचमुच ही जमनालालजी को बहुत प्रभावित किया और यहातक अपना असर जमा लिया कि मुझे तो वह अपनी सौत-सी लगने लगे। वे मेहमानो के साथ खूब प्रेम से व्यवहार करते। सबकी जरूरतो को पूरी करने की धुन मे लगे रहते और समान भाव से बरतने के जोश मे खर्च का खयाल न रखते। मेहमानो को घर-सा ही लगना चाहिए, उनको किसी प्रकार की कमी न रहे, इसका भी पूरा खयाल रखते थे। मेरी निगाह मे यह फिजूलखर्ची थी, पर मन मारकर रह जाती थी, क्योकि वह भी अपनी आदत से लाचार थे।

सेक्रेटरियो और नौकरो से मुझे जो परेशानी होती उसे मै विनोद मे लेने और सहन करने का प्रयत्न करती। कहातक सफल होती, यह तो भगवान ही जाने, पर मै गुनगुनाती रहती :

राज सिकरेटरियो का भारी, राज सरवंटो का भारी।
राज सरवंटो का भारी।
कहने को तो राज हमारा, बात चले थारी।।

सिकरेटरी इक जाय दूसरा तुरत यहाँ आवे,
दूसरा तुरत यहाँ आवे,
राज सरवटो का भारी।
नींद तजे पर दूध सुबह धारोषण पा जावे।।
मत्री-पद यह बना द्रौपदी चीर बड़ा भारी।
द्रौपदी चीर बड़ा भारी।
जादू टोना करो सिलसिला रहे सदा जारी।।
राज सरवंटो का भारी।
राज सिकरेटरियो का भारी।

: ३२ :

पंगत की रंगत

बापूजी के वर्धा आ जाने के बाद से वर्धा मे नेताओ और कार्यकर्त्ताओ का आना-जाना बढता गया। बबई-काग्रेस मे बापूजी काग्रेस से अलग हो गये और वर्धा मे रह कर 'ग्राम उद्योग-सघ'की स्थापना की। कन्याश्रम को छोड़कर बापू मगनवाड़ी मे रहने लगे। बाद मे सेवाग्राम गये। पर काग्रेस कार्य-समिति (वर्किंग कमेटी) की मीटिग अक्सर बजाजवाडी, वर्धा, मे ही होती। रचनात्मक कामो की अन्य सभाएँ तथा सम्मेलन आदि भी वर्धा मे होते ही रहते। बापूजी और जमनालालजी से मिलने-जुलने वाले भी आते रहते। देशी-विदेशी यात्रियो, पत्रकारो, नेताओ, कार्यकर्त्ताओ के आवागमन से बजाजवाडी गुलजार रहने लगी। लोगो का जमघट लगा ही रहता। इस कारण मेहमान-घर बडा करना पडा। मकान और बनाने पडे। भोजनालय की व्यवस्था बढानी पडी। देश के बडे-से-बडे नेता से लगाकर राजे-महाराजे और साधारण कार्यकर्त्ता, सब वर्धा आते और बजाजवाडी मे ठहरते। कभी कोई जान-पहचान वाला आता तो कभी बिना जान-पहचान वाला। कोई किसी काम से आता तो कोई योही यात्रा के विचार से। किसी असमजस मे पड़े व्यक्ति को तागेवाले ही बजाजवाडी ले आते। खादी पहनने वालो या कोई भी सार्वजनिक काम करने वालो के लिए बजाजवाडी एक धर्मशाला जैसी बन गई थी। लेकिन आनेवाला कोई भी हो, जमनालालजी सबकी सुख-सुविधा का बराबर खयाल रखते। उन्होने अपने बाल-बच्चो, सेक्रेटरियो तथा नौकर-चाकरो को तो सबकी पूरी व्यवस्था रखने की हिदायत दे ही रखी थी, पर स्वय भी जबतक सारी व्यवस्था देख न लेते थे, उन्हे सतोष न होता था। वे हर व्यक्ति की रुचि

का भोजन बनवाते तथा उसके आराम व सुविधाओ का पूरा खयाल रखते थे।

सरोजिनी नायडू को तली हुई हरी मिर्चे पसन्द थी। राजाजी के लिए रसम, मौलाना आजाद के लिए मोटी रोटी, जवाहरलालजी के लिए आलू, सूखी रोटी और मक्खन, कृपालानीजी के लिए गरम सूप और उसमे मक्खन या क्रीम मिल जाय तो उत्तम, खानसाहब के लिए खिचडी में खौलता हुआ घी, डा० पट्टाभि सीतारामैया को भोजन के अत मे दही-भात, जयरामदास दौलतराम को उबली हुई सब्जी, शकरराव देव को भात मे छाछ, गोविन्दवल्लभ पतजी को दाल मे घी और इनके अलावा जुदे-जुदे नियम और व्रत वाले लोगो की रुचि और आवश्यकता के अनुसार उसका पूरा ध्यान जमनालालजी रखते और धीरे-धीरे उन्होने ऐसी व्यवस्था कर दी कि वे अगर वर्धा मे न भी हो, तो भी सारी बातो का पूरा ध्यान रखा जाता।

बगले पर भोजन की पगत भी अजीब होती थी। बडे-से-बडे नेता और साधारण-से-साधारण कार्यकर्त्ता एक ही पक्ति मे बैठकर भोजन करते। उनमे किसी प्रकार का भेद-भाव नही रखा जाता था। घर के नौकर, सेक्रेटरी, लडके-लडकी, दामाद आदि भोजन परोसते थे।

काग्रेस कार्य-समिति की दिमाग खपानेवाली गम्भीर चर्चाओ के बाद पगत का वातारवण एकदम हँसी, व्यग, चुटकी और कहकहो से गूंज उठता था। घटी बजने पर पगत बैठती थी, पर कभी मीटिंग जल्दी खत्म हो जाती या विनोद मे सरदार पटेल, या कृपालानीजी या जवाहर-लालजी पहले ही पगत मे पहुँच जाते और सामने रखी थाली को चम्मचो से बजाने लगते। पगत में बैठते ही कभी महादेवभाई धीरे-से कह उठते, "अरे भाई, देरी हो तो पहले पापड ही परोस दो।" तब सरदार पटेल दूसरे कोने से गम्भीर स्वर में बोलते, "अरे महादेव, यह मारवाडी का ढाबा है। पापड सभलकर मागना। पापड आया कि भोजन खलास!"

इसी तरह एक बार घनश्यामदासजी बिडला ने भोजन के वक्त पूछा, "आज का 'मीनू' क्या है?" पास मे बैठे हरिभाऊजी बोले, "आज तो राबडी बनी दीखती है।"

घनश्यामदासजी चखते-चखते बोले, "अरे, हमने तो कांग्रेस के खजाची के यहां दूध की रबडी की उम्मीद रखी थी, पर यह तो निकली छाछ की राबडी ! क्यो हरिभाऊजी, इस तरह के खाने से ही आपका वजन नही बढ पाता दीखता है !"

सुभाषबाबू जब कांग्रेस से अलग हो गये तो वर्धा मे दूसरी जगह ठहरने लगे। लेकिन उनका नौकर भोजन करने बजाजवाडी ही आया करता था। उसको भात मे मक्खन का होना जरूरी था। सरदार पटेल उसे देखकर कहते, "इसका मालिक भले कांग्रेस छोड दे, पर यह नही छोडेगा। इसे भात मे मक्खन जो चाहिए।"

इसी तरह का हँसी-मजाक का वातावरण भोजन के वक्त बना रहता।

इसी पंगत मे लडको-बच्चो के नामकरण, किसी की सगाई, किसी लडके के लिए लड़की की खोज, किसी लडकी के लिए लड़के की तलाश, आदि का काम भी होता। मदालसा के बडे लडके 'भरत' का नाम इसी तरह की एक पंगत मे रखा गया था।

जमनालालजी की डायरी मे शादी के उम्मीदवार लडके-लडकियो के नाम लिखे रहते थे। एक रोज सरदार पटेल भोजन के लिए जरा पहले आ गये। जमनालालजी के कमरे मे उनकी डायरी रखी थी। सरदार ने उलट-पलट कर देखी और शादी के उम्मीदवारो की सूची में चुपके से अपना नाम लिख दिया। बाद मे जब जमनालालजी की निगाह उसपर पड़ी तो एक दिन पंगत मे गंभीरता से बोले, "आज एक उम्मीदवार के लिए आप सबको एक लडकी खोजनी है।" जब जमनालालजी ने सरदार का नाम बताया तो बडा कहकहा लगा। इतने मे एक नेता बोले, "पहले इनकी लडकी के लिए लडका खोजो, बाद में इनके लिए लडकी खोजना।" जमनालालजी ने कहा, "लडका मिल तो जायगा। आसान काम है। पर लड़का दूसरे ही दिन रेल की पटरी पर जाकर सो जायगा।" यह सुन कर फिर हँसी के फव्वारे छूट पड़े।

पंगत में परोसने के नियम भी बने हुए थे। परोसनेवालो को यह हिदायत थी कि भोजन करनेवाले को मांगना न पडे और परोसनेवाले

को भोजन करनेवालो से पूछना न पडे और परोसना चलता रहे। इतने पर अगर थाली मे जूठन किसी ने छोडी तो जमनालालजी फौरन कहते, "आज फला थाली मे भोजन करनेवाले और उनको परोसने वाले पर एक-एक रुपया जुरमाना किया गया।" कोई-कोई नेता या वालक थाली मे जूठी चीजो पर उल्टी कटोरी ढाक देता। जमनालालजी की निगाह वह भाप लेती और कटोरी उलटने को कहा जाता। जूठन निकलती तो डबल जुरमाना घोषित हो जाता। जुरमाना देना-दिलाना तो क्या था, इससे एक हँसी और विनोद का वातावरण बनता और दिन भर की दिमागी थकावट को दूर करने के साथ-साथ लोगो की जूठन छोडने की आदत मिटे, यह भी उनका प्रयत्न रहता था।

शुरू-शुरू मे जमनालालजी को होड लगाकर भोजन कराने का भी बडा शौक था। वगीचे मे सतरो के पेडो के नीचे बैठकर शर्त लगाकर सैंकडो सतरे इस प्रकार खिलाया करते थे। इसी प्रकार आम के दिनो में आम भी खिलाते थे। वर्धा में मौसम मे हुड्डे (जवारी के भुट्टे) भूनकर खाये जाते थे। मौसम मे कई बार इसकी गोठ होती। इनमे भी होड रहती। इसी तरह 'वाणी' (कच्ची जवारी) का हलुवा, वाणी के ही दही-बडे, बैंगन का भुरता, कच्ची मूली, अमरूद व तिल्ली की चटनी रहती थी। यह सब जवारी के भुट्टो की बनी चम्मचो से खाया जाता था। इस प्रकार पगत की रगत जमी रहती।

भोजन के बाद बीच के कमरे मे बैठक जमती। बडे-बडे लोग बच्चो के खेल खेलते। जवाहरलालजी घोडा बनते। सरोजिनी नायडू सवार बनती, लेकिन अपनी भारी-भरकम देह को सम्हाल नही पाती थी। दो-दो आदमी उनको पकड कर बैठाते, लेकिन हँसी के मारे वह दुगुनी हो जाती थी। बैरिस्टर आसफअली सरकस जैसी कलाबाजी दिखाते। राजाजी माचिस की डिब्बी लेकर बच्चो के खेल दिखाते।

राजेन्द्रवाबू को दमे की शिकायत रहती थी। वे इन खेलो मे शामिल न हो पाते थे। सो जमनालालजी उनके कमरे मे जाकर शतरंज की बाजी लगाकर बैठ जाते।

पर देखते-देखते सव दृश्य और रगत आज सपने की वात हो गई।

: ३३ :

गो-सेवा

व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेनेवाले का जेल से छूटने पर पुन जेल जाना आवश्यक था। लेकिन बीमार आदमी सत्याग्रह मे भाग नहीं ले सकता था। इस सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही विनोबाजी चुने गए थे। इसके बाद तो एक-एक करके अनेक लोग जेल जाने लगे।

जमनालालजी का स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उनको एक महीना पूर्व ही जेलवालो ने छोड दिया। बापूजी ने आराम करने को कहा, लेकिन उन्होने कहा कि मै बिना काम किये कैसे रह सकता हूँ? मुझे तो किसी-न-किसी काम मे लग ही जाना चाहिए। बापूजी ने कहा कि कम-से-कम जेल की अन्तिम अवधि तक तो यह मानकर आराम करो कि अभी जेल में ही हो, मुद्दत पूरी होने के बाद काम के बारे मे सोचेंगे। इसके बाद बापू ने उन्हे राजकुमारी अमृतकौर के यहाँ शिमला भेजा। उनकी बडी भारी कोठी है। उसमे उनके परिवार के पाँच व्यक्ति रहते थे। एक कुत्ता भी था और नौकर थे ३५! कुत्ते का वहाँ जैसा लालन-पालन होता था वैसा तो किसी बच्चे का भी होना कठिन है। जमनालालजी का राजकुमारीजी बहुत खयाल रखती। उनको आराम मिले, इसलिए उन्होंने जरूरत से ज्यादा व्यवस्था की थी, लेकिन जमनालालजी को सकोच होता था कि राजकुमारीजी पर मेरा बोझ पड रहा है। वे तो उन्हे हर तरह का आराम दिलाने का प्रयत्न करती और बहुत खयाल रखती थी, परन्तु जमनालालजी का मन वहा न लगता था। बडी मुश्किल से किसी तरह पद्रह रोज निकाले। लेकिन जेल की अवधि समाप्त होने में तो अभी पंद्रह दिन और बाकी थे।

जमनालालजी ने वही से बापू पर अपनी इच्छा प्रकट की, मुझे

ऐसी आध्यात्मिक मा मिलनी चाहिए जो मुझे अपनी गोद मे सुला सके। बात बडी विचित्र थी। और तो सबकुछ मिल सकता है, परन्तु मा कहा मिल सकती है ? बापू ने कहा, "पहाड जैसे लडके को गोद मे सुलानेवाली मा कहाँ मिलेगी ?" फिर भी बापू ने उनको लिखा कि शिमला से लौटते समय देहरादून में कमला नेहरू की गुरु-मा आनन्दमयी से मिलते हुए आना। जमनालालजी लौटते हुए वहाँ गये। गये तो थे केवल दो घटे के लिए, पर रह गए दो दिन। वहाँ उनका मन लग गया। वहाँ के वातावरण से वह बहुत प्रभावित हुए। माता आनन्दमयी के पास उन्हे शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उनकी चर्चा अत्यन्त सात्विक, प्रसन्न और तेजस्वी थी। वहाँ के धार्मिक और भक्तिपूर्ण वातावरण मे जमनालालजी ने अपनी वृत्ति के अनुसार कर्मयोग का कार्य शुरू करवा दिया। माता आनन्दमयी से उन्होने चर्चा की कि धार्मिक कार्यो के साथ गाधीजी के विधायक काम चले तो बहुत अच्छा। माताजी ने इसे स्वीकार कर लिया। अब क्या था। वहाँ अब हिन्दी की कक्षाएँ, खादी का काम, चरखा आदि शुरू करवा दिये गए।

माता आनन्दमयी के पास हरएक भक्त एकात समय मे आत्म-निवेदन करता था। एक दिन जमनालालजी ने भी समय माँगा। उन्होने कहा, "मा, क्या मैं आपकी गोद मे सो सकता हूँ ?" माता आनन्दमयी ने कहा, "मा की गोद मे सोने मे क्या हर्ज है ?" बस जमनालालजी आखे मूदकर माताजी की गोद मे ऐसे सो गए, मानो कोई प्रेत पडा हो। थोडी देर बाद आखे खोलकर उन्होने कहा, "अगर इस समय मेरे प्राण भी छूट जाय तो कोई बात नही। मेरा अब किसी भी बात मे मन नही रहा।" उनकी आध्यात्मिक मा की भूख आनन्दमयी की गोद मे सोने से पूरी हो गई। जमनालालजी ने माता से तीन बातो की माँग की :

१. मेरी इच्छा है कि आश्रम के निकट जमीन लेकर मकान बनवाऊँ, ताकि कोई कार्यकर्ता आराम तथा मानसिक शान्ति प्राप्त करना चाहे तो उसे भेजा जा सके।

२. मुझे 'सेठजी' के नाम से सम्बोधित न किया जाय, कोई छोटा-सा नाम हो।

३. मै तभी जलपान करूँगा जब आप बताओगी कि मेरी मृत्यु कब होगी।

पहली बात की स्वीकृति आसान थी, दूसरी बात की मॉग मे माताजी ने 'भैया' शब्द चुन लिया। लेकिन तीसरी मॉग बडी कठिन थी। माताजी ने कहा, "यो मृत्यु का समय तो किसी को बताया नही जाता। हा, आदमी को यह समझना चाहिए कि हर क्षण उसके सिर पर उसकी मौत खडी है।" इससे जमनालालजी को समाधान नही हुआ। बोले, "यह तो ठीक है, पर समय बताओ।" आखिर माताजी ने कहा, "छह महीने की तैयारी से काम करो।" इस वचन पर जमनालालजी को दृढ श्रद्धा हो गई, ऐसा लगता है। उनकी डायरियो मे मिलता है कि छह महीने तक वर्धा छोडकर नही जाना, रेल या मोटर मे नही बैठना। यह निर्णय उन्होने १५ अगस्त१९४१ से १५ फरवरी१९४२ तक के लिए किया था।

इन दिनो उनका आत्म-मन्थन बड़ी तेजी से चल रहा था। वह व्यापारिक तथा अन्य कार्यों से निवृत्त हो गए और अपनी व्यापारी बुद्धि के अनुसार ऐसा हिसाब बैठाया कि यदि इन छह महीनो मे जाना पडा तो उसकी तैयारी रहे। ऐसी साधना करे कि अधिक-से-अधिक समय पारमार्थिक कामो और चित्त-शुद्धि मे लगे और यदि आगे रहना पडे तो आदते सुधर जाय। इसलिए घर-बार से निवृत्ति लेकर जीवन को ऐसे कामो मे लगाया, जिससे उनका आत्मीय भाव मूक प्राणियो तक बढे। इसीलिए उन्होने गो-सेवा को चुना था। मानव-सेवा मे कही-न-कही कुछ सघर्ष होना सभव है। जमनालालजी सपूर्ण चित्त-शुद्धि मे लग गए। हर क्षण का सदुपयोग करने के प्रयत्न मे रहे।

जब उनकी जन्म-तिथि आती तब वह अपने पिछले साल का लेखा लेते और नए स्थान में पदार्पण करते समय अच्छे सकल्प करते। वे सकल्प पूरे हों, इसलिए प्रातःकाल की प्रार्थना के बाद गुरुजनो के आशीर्वाद लेते। उसके बाद ही जल-पान करते।

बापूजी की सलाह से जमनालालजी ने गो-सेवा का कार्य अपने लिए पसन्द किया था और गो-सेवा-सघ की स्थापना करके वह उस काम में लग गए। उन्होने अपने-आपको इस काम में इतना तल्लीन कर लिया

कि उन्हे गो-सेवा के सिवा दूसरे काम की बात ही नही सूझती थी। यो गो-सेवा-सघ की स्थापना तो अक्तूबर, १६४१ मे हुई थी और उसके वह अध्यक्ष बने थे, पर उसकी तैयारी तो उन्होने इसके पहले ही कर ली थी।

वे चाहते थे कि अपना बचा हुआ जीवन प्राचीन ऋषियो की तरह कुटियो मे बितावे। इसलिए एक कुटिया गोपुरी के पास बनाकर रहना चाहते थे, जहा रहकर वे गो-सेवा और आत्मचितन मे समय बितावे। उन्होने कुटिया बनाना शुरू करा दिया था और ताकीद कर दी थी कि वह जल्दी-से-जल्दी बन जाय।

रात को उनकी जल्दी उठने की आदत थी। एक रोज वह ३ बजे उठे और लालटेन लेकर शौच गए। उनके हाथ से लालटेन गिर गई और उसका काँच टूट गया। इसपर उन्हे बहुत दु ख हुआ। उन्होने उस रोज अपनी डायरी मे लिखा—"मै कैसा आदमी हूँ कि मेरे द्वारा दूसरे को कष्ट होता है, मेरा बोझ दूसरे पर होता है।" जमनालालजी को इन दिनो दूसरो का भी बहुत खयाल रहता था। वह किसी का जरा भी नुकसान बरदाश्त नही कर सकते थे। जरा भी भूल होती तो उसका उनके मन पर बहुत असर रहता था।

जैसी-तैसी अधूरी बनी झोपडी में दूसरे दिन ही वे रहने चले गए। उन्हे पूरा एकान्त चाहिए था। इसलिए मै भी डरती हुई वहाँ उनके पास रहने नही गई, क्योकि मै उनके खाने-पीने की या आराम की चिन्ता करूँ, यह उनको बरदाश्त नही होता था। वहाँ उन्होने अपने पास कौसल्या नाम की एक गाय रक्खी थी। हाथ-मुँह धोकर वे उसकी सेवा करते, उसके बदन को सहलाते। फिर वह अपनी मा के पास चले जाते और उनकी गोद में अपना सिर रखकर भजन सुनते और डायरी लिखते। उसके बाद प्रार्थना करके घूमने जाते। घूमते हुए सबसे मिलते, सुख-दु ख की बात पूछते और जिससे खास बात करनी होती, उसे साथ ले लेते। इस प्रकार रात-दिन जमनालालजी का चिन्तन गो-सेवा सम्बन्धी कामो का ही चलता। कोई व्यापार की बात करता तो कहते, "मेरे साथ व्यापार की बात मत करो।" कुटिया का नाम 'जानकी-कुटीर' रखा था।

इसी बीच राधाकृष्ण खादी के काम से सीकर जाने लगा तो मै भी

उसके साथ चली गई। वर्धा मे जमनालालजी का नया जीवन-क्रम देखकर मन कुछ खिन्न रहने लगा था। मै उनके काम मे सहयोग तो दे नही पाती थी। इस कारण मन के बहलाने के विचार से ही सीकर गई थी।

कुछ दिन बाद रामकृष्ण (सबसे छोटा पुत्र) लेने आया। मै वापस वर्धा पहुची।

मेरे लौटने पर जमनालालजी बडे खुश हुए और हँसकर बोले, "जानकी-जी, आ गई।" उन दिनो जमनालालजी नेत्र-यज्ञ तथा गो-सेवा-सम्मेलन के कामो मे व्यस्त थे। मै बगले पर रहने लगी। एक दिन वह बोले—"तेरा क्या मन है ? सेवाग्राम बापू के पास जाना हो तो वहा जा सकती हो। कुटिया पर आना हो तो कुटिया चलो।" मैंने कहा, "मैं तो कुटिया मे चलूगी।" जमनालालजी बोले, "ला, अपना बिस्तर टमटम में रख।" मेरी तो मनभाती बात हो गई। जल्दी-जल्दी बिस्तर लपेटकर मैंने टमटम मे रखा और गोपुरी पहुँच गई। हम दोनो वहा पाँच रोज ही साथ रह पाये।

कुटिया मे पहुचने पर जमनालालजी को किसी तरह कष्ट न हो या अशाति न हो, इसका मै पूरा ध्यान रखने लगी। वह जल्दी उठते थे, पर मेरी आदत कुछ देर से उठने की थी। वह उठ जायँ और मैं सोती रहूँ, यह अच्छा नही, इसलिए मुझे ठीक से नीद न आती। हमेशा यही खयाल बना रहता कि कही वह उठ तो नही गए। इसलिए मैंने उनसे कहा कि आप उठ जाया करे तो मुझे भी उठा दिया करे। तबसे वह उठने पर मुझे जगा देते। मै भी उठकर जैसा वह करते, करने लगती। मेरा मन किसी काम मे लगा रहे, इस खयाल से गो-सेवा के लिए आये हुए एक साधु से उन्होने कहा कि जानकीदेवी को सितार सिखा दो। मै सीखने लगी, लेकिन जमना-लालजी रात-दिन गो-सेवा के काम मे ही लगे रहते थे।

गो-सेवा के कार्य को और बढाने की दृष्टि से जमनालालजी ने बापूजी की सलाह से एक गो-सेवा-सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन सफलता-पूर्वक हुआ। इसमे सारे हिन्दुस्तान से लोग भाग लेने के लिए आये। जमनालालजी को पुराने मित्रो और कार्यकर्ताओ से मिलकर बड़ी खुशी हुई।

: ३४ :

जमनालालजी का देहावसान

सम्मेलन पूरा होने के बाद से उनके सिर मे दर्द रहने लगा। उनकी आदत ऐसी थी कि दर्द को चुपचाप बरदाश्त करते। बहुत कम उसकी चर्चा करते। दर्द बहुत होता तभी उनके मुँह से बात निकलती।

मातादीनजी भगेरिया ने गाधीजी सम्बन्धी काव्य लिखा था। इन दिनो वे वहाँ आये हुए थे और जमनालालजी को वह उसे सुनाना चाहते थे। जमनालालजी की ऐसी अवस्था नही थी कि सुनें, पर उनका मन राजी रखने के लिए महिलाश्रम मे उन्होने एक दिन कार्यक्रम रखवाया, जिससे महिला-श्रम की लडकियाँ भी सुन सके। हमलोग भी पहुँचे। जैसे-तैसे वह थोडी देर बैठे। जब दर्द बरदाश्त के बाहर हुआ तो उठकर जानकी-कुटीर मे चले गए और सो गए। दूसरे दिन भी सिर में दर्द था। अत बोले कि आज सिर मे दर्द है, इसलिए सेवाग्राम नही जाऊँगा। लेकिन उन दिनो सेवा-ग्राम मे घनश्यामदासजी बिडला ठहरे हुए थे। उनका फोन आया तो वह जाने के लिए तैयार हो गए। जब मैंने कहा कि आपने तो कहा था कि आज दर्द है, इसलिए कही न जायंगे, तो वह बोले, "आज बापू का मौन है। घनश्यामदासजी अकेले रहेगे। उनसे कुछ हँसी-मजाक करेंगे। उनका दिल बहलेगा।" यह कहकर वह टमटम मे बैठे और सेवाग्राम को रवाना हो गए। लेकिन उनका सिर-दर्द बढता ही गया। वहाँ पहुँचने पर महादेव-भाई, किशोरलालभाई तथा कृष्णदास गाधी से बोले कि मुझे आपसे बात करनी है, पर आज तो सिर मे दर्द बहुत है, फिर आकर बात करूँगा। बिडलाजी से थोडी-बहुत बातचीत करके वापस आए। बापूजी से विदा लेने गए पर वह स्नानघर मे थे। वह ऐसे ही लौट आए। बापूजी को मालूम हुआ तो उन्होने कहा कि सिर मे दर्द था तो मैं उन्हे रोक लेता।

सेवाग्राम से वह वापस आए। उन्ही दिनो चीन राज्य के प्रधान चाग काई शेक के आने की बात थी, इसलिए बजाजवाडी मे व्यवस्था समझा-कर वह जल्दी ही जानकी-कुटीर लौटे और सो गए। दूसरे दिन सवेरे भी सिर मे कुछ दर्द था। इसलिए एनिमा लिया। इससे दर्द कुछ हलका हुआ तो बोले, "देख, मैने बिना दवाई के ही बीमारी दूर कर ली।" फिर वह घूमने चले गए। मै भी साथ थी। बजाजवाडी पहुँचने पर चाग काई शेक का कार्यक्रम रद्द होने की खबर मिली। वह लोगो से बातचीत करने लगे। मै भी बगले मे काम देखने मे लग गई। उस दिन उन्होने बगले की व्यवस्था आदि के बारे मे बाते की। उसके बाद दुकान जाने को रवाना हुए। आज एकादशी थी और सावित्री ने फलाहार के लिए दुकान पर हम दोनो को बुलाया था। राजनारायणजी, ओम् आदि भी आज ही बम्बई से आए थे। जमनालालजी बोले कि आज तो ताश खेलेंगे, जिससे सिर हलका हो। वह दूकान पर एक साल के बाद आये थे।

कुछ देर सुस्ताने के बाद फलाहार किया। दो बजे सेवाग्राम जाने के लिए टमटम तैयार करने को कहा। लेकिन ओम् बोली कि आज हमें आपके साथ चार बजे तक ब्रिज खेलना है। जमनालालजी बोले, "अच्छा, मैं थोडा आराम कर लेता हूँ, तू चरखा लगा दे।" राजनारायणजी से बोले, "तुमसे डेरी-फार्म खोलने की बात करनी है, सो मैं उठू तो याद दिला देना।" वह पन्द्रह मिनट सोकर शौच गए। लौटकर आए तो बहुत थके हुए थे और तकिए के सहारे पड़ गए। मै उन्हे आराम करते देखकर दूसरे कमरे मे चली गई। ओम् ने देखा कि काकाजी सोकर उठने के बाद तो फिर सोते नही हैं, बात क्या है? सावित्री और ओम् ने उन्हे उठाया। उन्होने सावित्री से कहा, "मेनथाल हो तो लाओ।" वह दौडी-दौडी नीचे गई। घर मे मेनथाल था नही, इसलिए दवाईवाले की दूकान से मगाया। उस समय उनके सिर मे भयानक दर्द हो रहा था। उन्हे उलटी आई। उसके लिए उठे। उल्टी करके फिर लेट गये। मैंने पैरो मे घी मसलने के लिए ओम् को बुलाया तो इशारा करके कहा कि तुम्ही मलो। वहू और बेटी को वह पैर के हाथ नही लगाते देते थे। मैं घी मलने लगी। सिर मे दर्द ज्यादा बढ़ा तो वह बोले—"अरे, कोई एस्प्रीन दो।" बाद में

उन्हे फिर उल्टी हुई। यह सब देखकर डाक्टर को बुलाया गया। डाक्टर आए। मैंने आँख खोलकर देखी तो लाल सुर्ख थी। डाक्टर ने रक्त-चाप लिया तो २५० था। उनकी नस काटने की बात डाक्टरो मे चली, लेकिन किसी की हिम्मत न पडी। थोडी देर के बाद सिविल सर्जन ने आँख देखी और वह बाहर चले गये। हमने समझा कि इन्हे कष्ट न हो, इसलिए वह बाहर चले गए है। लेकिन समझते देर न लगी कि सबकुछ समाप्त हो गया है। बात चारो ओर फैल गई। विनोबाजी आ गए। बापू को फोन गया। वह भी आए, लेकिन उनके आने के पहले ही वह गो-लोकवासी हो गए थे। जहाँ वह पहले सोते-बैठते थे, और जहाँ बैठकर उन्होने दादाजी को वैराग्य-भरी चिट्ठी लिखी थी, वही उनके प्राण गए। ओम् ने कहा कि भले ही उन्होने घर त्यागकर झोपडी मे वास किया हो, पर वह राजयोगी थे, इसलिए महल मे ही गए।

बापूजी को फोन किया तब मुझे डर लगा कि कही बापूजी आ गए और इन्होने आँख खोलकर देख लिया तो! बापूजी को देखकर एक बार तो उन्हे धक्का ही लगेगा, फिर भले ही अच्छा लगे, क्योकि वह अपने लिए बापूजी को जरा भी कष्ट नही पहुँचाना चाहते थे। विनोबाजी तो आकर स्तब्ध बैठ गए, पर बापूजी ने आते ही जमनालालजी के सिर पर हाथ रखा। बापूजी को देखते ही मै बोली, "बापूजी, आप इनके पास होते तो यह नही जाते। इनकी तबीयत बिगडते ही जल्दी खबर भेज दी जाती तो अच्छा होता। बस, अब तो आप इन्हे जीवित कर दीजिए। क्या आप इन्हे जिला नही सकते ?"

बापूजी बोले, "जानकी, तुम्हे अब रोना नही है। तुम्हे तो हँसना है और बच्चो को भी हँसाना है। जमनालाल तो जिन्दा ही है। जिसका यश अमर हो, उसकी मृत्यु कैसी ? उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है, जब तुम उसके रास्ते न चलो। उसने परमार्थ की जिन्दगी बिताई। जो काम उसने अपने कन्धो पर लिया था, उसे अब तुम सम्हालो। मैं तुम्हे झूठा धीरज देने नही आया। जमनालाल तो जिन्दा ही है। उसे जिन्दा रखना हमारा काम है।"

मैंने विनोबाजी की तरफ इशारा करके कहा, "तुम तो इनको भगवान्

के दर्शन कराम्रो।" पर वह चुपचाप बैठे रहे। बापू बोले, "जानकी, जमनालाल को तो भगवान के दर्शन हो चुके, अब तो तुम्हे करना बाकी है। उसकी तैयारी करो। जो काम उन्होंने आधा किया है, उसे पूरा करो। उसके लिए अपना तन-मन-धन सब होम दो।"

बचपन मे सती होने की मेरी इच्छा थी। वह जग उठी। मैं बोली, "बापूजी, मैं सती होना चाहती हूँ। आज्ञा दीजिए।" बापू बोले, "शरीर को जलाने से क्या फायदा? वह तो तुच्छ है, मिट्टी है। अपने सब दुर्गुणो को जला देना ही सच्चा सतीत्व है। अपने सब दुर्गुणो का चिता में होम करो। फिर बाकी बचेगा, वह शुद्ध कचन रहेगा। उसको कैसे जलाया जाय? उसे तो कृष्णार्पण ही किया जा सकता है। स्त्रियो को त्याग-मूर्ति मानता हूँ, क्योकि हिन्दू-स्त्री विधवा होने पर सारे भोगो को तिलाजलि देती है, विकारो का शमन करती है। अब तुम त्याग-मूर्ति बन गई। अपने अवगुणो को जमनालाल की चिता मे जला दो। अपना जो कुछ हो, वह उसके काम मे लगा दो। यही सती होना है। उठो, तुम सती हो जाम्रो।" मैं बोली, "मैं और मेरी सम्पत्ति उनके काम के लिए अर्पित है।"

खबर तो चारो ओर फैल गई थी। बम्बई से फोन आया कि लोग स्पेशल गाडी लेकर जमनालालजी की अन्तिम यात्रा मे शामिल होना चाहते हैं। प्रश्न खडा हुआ कि क्या किया जाय। मेरे ध्यान मे उनके वे शब्द आ गए, जो उन्होंने बम्बई मे अभ्यकरजी की मृत्यु पर कहे थे, "प्राण चले जाने पर शरीर का क्या? उसके लिए धूमधाम क्यो?" मैंने कहा, "मृत शरीर को रात भर रखना उनकी आत्मा को अच्छा नही लगेगा। सबको तकलीफ होगी। वह तो किसी को कष्ट नही देना चाहते थे। तब यही निर्णय हुआ कि तुरन्त ही तैयारी की जाय।" राधाकृष्ण ने पूछा कि स्नान कहाँ कराया जाय? मैं बोली, "नीचे चौक मे।" घर में गंगाजल का घडा था, वह लाया गया। उनकी देह नीचे ले जाने लगे। मैं हाथ पकडकर 'ओम्-ओम्' कहती हुई चली। गगाजल से जमनालालजी को नहलाया गया। मेरी चरणामृत पीने की आदत थी, सो मैंने अजुली भरकर स्नान कराया हुआ गगाजल पी लिया। मैंने उस जल की शीशी भी भर ली। पर बाद में विनोबाजी के कहने से उस जल को समाधि पर लगाये हुए झाड पर

डाल दिया। समाचार मिलते ही लोग इकट्ठे हो गये। किसी को यह बात सच ही नही लगती थी। कोई कहता था कि हमने आज उन्हे गोरक्षण में देखा। कोई बोलता था कि बजाजवाडी मे बैठे थे, किसी ने कहा दूकान पर जाते मैंने देखा। यह कैसे हो सकता है। पर जब वहाँ आकर देखा तो हक्के-बक्के रह गये। नहलाने के बाद बापूजी ने अपना दुपट्टा उनपर उतार कर डाला। जमनालालजी के लिए अन्तिम वस्त्र तो विनोबाजी के कते सूत की खादी का मँगाया गया। मैंने सोचा, बापूजी का दुपट्टा क्यो जलाया जाय, इसलिए उसे उठाकर मैंने गले मे लपेट लिया जो अब भी मेरे पास है।

जब अरथी को बाँधने लगे तो दादीजी एकदम चिल्लाई कि यह क्या कर रहे हो। अबतक तो यह समझती रही कि यहाँ कोई बडी सभा है, लोग इकट्ठे हुए हैं, गाधीजी भी आए हैं। उन्हे पता भी क्या लगे कि ऐसी भयानक घटना हो गई है, क्योकि रोना-धोना तो था ही नही। कोई भले ही चुपचाप इधर-उधर रो ले, लेकिन जमनालालजी की हिदायत रही कि मौत के समय रोया-धोया न जाय, मौत को बुरा न माना जाय। दादीजी का रोना देखा नही जाता था। बापूजी उन्हे बहुत देर तक समझाते रहे, पर उनके रोने को रोकना असम्भव था। इसी स्थान पर उनके तीन बेटे और एक जवाई गया था, उसका स्मरण कर उनका दुःख बढता ही जाता था।

तैयारी होने पर अरथी चलने लगी। मैं भी ओम्-ओम् करती हुई अरथी पकडे हुए जा रही थी। महिलाश्रम की लडकियाँ, घर-कुटुम्ब की औरतें, गाव के लोग—मानो समुद्र ही उमड पडा हो। लडकियाँ बोल रही थी—"राम धुन लागी, गोपाल धुन लागी।" सब लोग यही बोलते हुए जा रहे थे। मैंने कहा कि जो कधा देना चाहे, उसे देने दो। चाहे, हिन्दू हो या मुसलमान, जमनालालजी तो सबके थे।

दाह-क्रिया गोपुरी मे जमनालालजी की झोपडी के सामने करना तय हुआ। चिता की तैयारी की गई। कपूर से चिता को प्रज्वलित किया गया। मैंने बापूजी के हाथ में कण्डा दिया। मैं कही चिता में न कूद जाऊँ, इसलिए बापूजी ने मुझे पकड लिया था। बापूजी ने विनोबाजी को वेद और उप-

निषदो के मन्त्र पाठ करने को कहा। विनोबाजी ने उपनिषदों के मंत्रो का पाठ किया। परचुरे शास्त्री ने भी श्लोक कहे। अम्तुस्सलाम ने कुरान की आयते कही। बा, महादेवभाई तथा भगवानदेवी सेकसरिया को तो मूर्च्छा आ गई, पर मैं शून्य भाव से चिता की ओर देखती रही। इस समय मन में यही भाव था कि वह मानो मुझमे प्रवेश कर रहे हैं। पर धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो रात पडने लगी, खालीपन का अनुभव होने लगा। विनोबाजी रात भर मेरे पास बैठे थे। मैं उनसे बार-बार पूछती कि अब वह कहाँ मिलेंगे ?

जमनालालजी के जाने की वेदना तो बाद मे धीरे-धीरे बढने लगी, और अब तो क्षण-क्षण महसूस होती रहती है।

: ३५ :

सन् ४२ का विद्रोह और उसके बाद

ऐसा मालूम होता है, जमालालालजी को अपने जाने का कुछ आभास पहले से ही हो गया था। पर हम सबको इसकी कोई कल्पना नही थी कि वह इतनी जल्दी चले जायगे। बापू को भी इसकी कल्पना नही थी। इसलिए सबको बडा भारी धक्का लगा। बापू तो ऐसा महसूस करने लगे मानो उनकी बाँह ही टूट गई। लेकिन बापू तो योगी थे। वह इस दु ख को पी गये और तुरन्त ही सम्हलकर यह विचार करने लगे कि जमनालालजी के कामो को किस तरह सम्हाला जाय।

जमनालालजी के शुरू किये गये विधायक कामो को पूरा करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए बापूजी ने जमनालालजी के मित्रो तथा स्नेहियो की एक सभा बारहवी के दिन बुलाई, जिसमे बापू ने कहा कि जमनालालजी के चाहनेवालो, प्रेमियो और मित्रो का यह कर्त्तव्य है कि उनके कामो को करें, जिससे उनकी आत्मा को सन्तोष मिले। उन दिनो वातावरण में गम्भीरता थी और बापूजी, जमनालालजी के प्रति लोगो के हृदय मे जो सद्भावना थी, उसे काम मे लगाना चाहते थे। एक तो योही मृत्यु के बाद वैराग्य की भावना उमड पडती है, फिर जमनालालजी जैसे कर्मशील और प्रेममूर्ति के वियोग से तो वैराग्यमय वातावरण और भी अधिक गहरा हो गया। उसपर बापूजी जैसे महापुरुष के बोलने का प्रभाव तो सबपर पडना ही था। उन दिनो मेरा हाल अजीब था। मेरे लिए यह आघात ऐसा था कि मैं सुन्न-सी हो गई थी। उनके जीवन का महान् उद्देश्य पग-पग पर याद आने लगा। उसकी सचाई प्रतीत होने लगी और उसको अपने जीवन मे उतारा जाय यही भावना बढती गई।

जमनालालजी के स्वर्गवास के बाद उनके शरीर की साक्षी देकर जो

कुछ मेरे पास था उसके समर्पण का सकल्प तो मैने कर ही लिया था, लेकिन अब अपने-आपको काम मे लगाने की बात थी। हमारे परिवार में बापूजी के विचारो का गहरा असर था। जो कुछ मुझसे बन पड़ा, उसका श्रेय तो बापूजी को ही है। पिछले बीस साल से जो उपदेश वह देते रहे थे, उसीका यह परिणाम था। मै अपना एक-एक क्षण जमनालालजी के काम में लगाऊं, यही बापूजी भी चाहते थे। इसी कारण बापूजी ने मुझपर गो-सेवा की जिम्मेदारी डाली। मैंने गो-सेवा का काम करने का संकल्प तो कर लिया, पर जब मुझसे 'गो-सेवा-संघ' की अध्यक्षा होने के लिए कहा गया तब मेरी हिम्मत नही हुई। मैंने बापूजी से कहा कि मैं काम तो करूँगी, लेकिन इतना बडा बोझ मुझपर मत डालिए। तब मुझे चुप रहने का इशारा कर उन्होने गो-सेवा-सघ के काम का बोझ मुझपर डाल दिया और कहा, "तुम्हे ऐसे लोगो की मदद मिलेगी जो तत्त्व और व्यवहार को सम्भाल सके।" इस दृष्टि से विनोबाजी तथा घनश्यामदासजी बिड़ला उपाध्यक्ष बनाये गए। वातावरण ही ऐसा था कि बापूजी ने जो कुछ कहा उसे मानना और अपनी शक्ति के अनुसार उस काम को करना, यही सबकी मनोवृत्ति थी। इसलिए विनोबाजी तथा घनश्यामदासजी ने भी स्वीकृति दे दी। बारहवी को मृतक के पीछे साड छोडने की प्रथा है। इसलिए पाच लाख के एक हजार सांड उनके पीछे छोड़ने का संकल्प रामेश्वरदासजी बिडला ने किया और उसे उन्होने पूरा किया।

जब जमनालालजी का देहान्त हुआ तब कमलनयन गोला के शक्कर के कारखाने मे था। उसे कलकत्ते से फोन मिला। जब फोन मे कहा गया कि वर्धा में बहुत बडी दुर्घटना हो गई तो उसके मन मे यही विचार आया कि या तो काकाजी नही रहे या बापूजी नही रहे। लेकिन दूसरे ही क्षण यह विचार आया कि बापूजी की देश को बहुत जरूरत है और उनका रहना आवश्यक है। जब उसे निश्चित रूप से मालूम हुआ कि काकाजी नही रहे तब उसने टेलीफोन रख कारखाने के कार्यकर्ताओ और मजदूरो को जमा करके यह दुःखद संवाद बताया और कहा कि काकाजी के शोक में कारखाना बन्द नही होना चाहिए। ऐसी गम्भीरता उसमें उस समय थी। घटना हृदय को हिला देनेवाली थी। देश-सेवक पिता के गो-लोक-

वास की खबर पाकर बेटे द्वारा ऐसी बातो का किया जाना मामूली बात नही है । लेकिन हमारे यहाँ ये बाते जमनालालजी के आचरण और व्यवहार के कारण स्वाभाविक बन गई थी। गोला से रवाना होने पर उसे लखनऊ स्टेशन पर माता आनन्दमयी मिल गई । उनकी वर्धा आने की तैयारी थी । जमनालालजी ने पिछले छ महीने मे माता आनन्दमयी को वर्धा बुलाने के बहुत प्रयत्न किये थे, लेकिन वह नही आ सकी थी। जमनालालजी जब किसीको वर्धा बुलाने का निश्चय करते तब बुलाकर ही चैन लेते, पर माता आनन्दमयी नही आई । पर जब वह आ रही थी, यह अद्भुत घटना थी। कमलनयन ने उनको बताया कि काकाजी तो चले गये हैं, तब वह बोली कि 'भैया' को आत्मदर्शन हो रहा है। उसके बाद वह रुक गई और तीन दिन बाद वर्धा आई ।

जमनालालजी के शरीरान्त की खबर सुनने के बाद कमलनयन ने जल भी नही लिया था । स्टेशन पर जब उसे मालूम हुआ कि विनोबाजी रामायण का पाठ कर रहे हैं तब वह नहाकर वहाँ पहुँचा । उस समय की उसकी दशा का वर्णन करना कठिन है । आते ही वह मेरे गले से लिपट गया । हम दोनो शून्यवत् थे । रोना तो आता ही न था । लोगो की आँखो से आँसू बह रहे थे । जब उसे छाछ पीने को कहा गया तब मालूम हुआ कि तीन दिन से उसने पानी भी नही पिया है । आखिर उसने मुझे छाछ पिलाकर ही स्वय छाछ पी ।

घर के लड़के-लडकियो, बहुओ सबकी दशा एक-सी थी । जैसे जमनालालजी की आत्मा ने हम सबके अन्दर प्रवेश किया हो, इस तरह हम सब भावावेग मे थे । सबके मन मे एक यही बात रम रही थी कि उनके कार्यों को करके उनके जैसे बने । कमल ने वर्धा पहुँचने पर सबसे पहले यह जानने की कोशिश की कि उसके काकाजी ने किस सस्था के लिए क्या देने को कहा था या उनकी क्या इच्छा थी । उसने सर्वप्रथम उनके सब वचनो की पूर्ति की । पवनार का बगला उसने विनोबाजी को अर्पित किया। बजाजवाडी में आने-जानेवालो के लिए जमनालालजी के द्वारा जैसी व्यवस्था चलती थी, वह चालू रखने के लिए एक लाख रुपये उसने लक्ष्मीनारायण मन्दिर मे जमा करा दिये, जो सात साल मे खर्च हुए और अब वह खर्च

लड़के ही चलाते है। दोनो भाइयो ने विचारकरके जमनालालजी की जो सम्पत्ति थी, उसका ट्रस्ट बनवा दिया। जब घनश्यामदासजी बिड़ला ने घर का हिसाब देखा तो वह ताज्जुब मे रह गए। बोले कि जमनालालजी तो धन के बल पर नही बल्कि आत्मबल पर ही अपना काम चलाते रहे। बिड़लाजी उनके अभिन्न मित्र थे। उनको भी उनकी मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। हमारे परिवार के प्रति उनकी आत्मीयता थी और वह अबतक चली आ रही है।

बापूजी ने बारह दिन के बाद मुझे सेवाग्राम बुला लिया। सावित्री भी मेरे साथ सेवाग्राम रहने चली आई थी। उसके जीवन मे विशेष परिवर्तन आ गया था। सारे राजसी सुखो को छोडकर वह आश्रम का जीवन बिताने लगी, और वहाँ जो कुछ आश्रम का खाना मिलता, वही खाकर आश्रम मे काम करती। जब बापू का 'करो या मरो' आन्दोलन शुरू हुआ तब वह भी जेल गई। वह नाजुक तो थी ही और सुख-वैभव मे पली थी। उससे जेल-जीवन कैसे बरदाश्त होगा, यह प्रश्न था। लेकिन उन दिनो उसपर भी एक तरह का नशा छाया हुआ था। ओम् भी साथ गई। महिला-आश्रम की अस्सी लडकियाँ भी निकल पडी। यद्यपि सावित्री ने जेल-जीवन को बड़े उत्साह और आनन्द के साथ बरदाश्त किया, मन को जरा भी कमजोर नही होने दिया, तथापि शरीर को आखिर कैसे बरदाश्त होता? वह बीमार पड गई। जेल से छूटकर जब वह आई तब उसे कुरसी पर लाया गया। उसका चेहरा देखकर लोगो को रोना आ गया। जेल से उसके स्वास्थ्य पर हुए परिणाम को दूर करने के लिए उसे तीन साल मसूरी रहना पडा।

राम भी ९ अगस्त को बापू की गिरफ्तारी के बाद गाँवो मे जाकर उनका सन्देश सुनाने लगा। पुलिसवाले तो पीछे पडे ही हुए थे। वह उनको छकाकर गाँवो में जाता और लोगो को समझाता। एक बार पुलिसवालो ने उसे खेतो में देख लिया। वे पीछे दौडे। राम पुल के नीचे छिप गया। पुलिसवालो ने लकड़ी के कुन्दो से मार-मारकर राम को निकाला और बाहर निकालने पर भी उसे बहुत पीटा और अपशब्द कहे। तब उसने कहा, "तुमको मारना है तो जितना चाहो मार लो। लेकिन गाली नही दे सकते।" उसे जेल ले गये।" बापू ने 'करो या मरो' का नारा इस तरह

लगाया था कि सबके ऊपर उसका गहरा प्रभाव पडा और सभी लोग मरने की परवाह न करके काम करने लगे। धीरे-धीरे सब लोगो को पकड लिया गया। कमल इसलिए नही जा सका कि राधाकृष्ण के ऊपर सरकार ने ऐसा केस बनाया कि वह फाँसी पर ही चढाया जाय। उस केस के लिए उसे बाहर रहना पडा और वह हर तरह से आन्दोलन को मदद पहुचाता रहा। उसने भी तन, मन और धन से इस आन्दोलन मे साथ दिया।

मै गो-सेवा के काम मे लगी ही थी कि धीरे-धीरे सब लोग इस आन्दोलन के कारण काम करने जेल चले गये। उस समय गो-सेवा-सघ के मत्री स्वामी आनन्द थे। सहायक मन्त्री श्री रिषभदास राँका थे। वे भी जेल चले गये, और पारनेकरजी तथा स्वामी आनन्द आदोलन में लग गये। राधाकृष्ण पर जो केस चला वह भयानक था। वह जेल मे था ही। श्रीमन्‌जी भी पकड़े गये। वालुंजकरजी पहले तो आन्दोलन के काम मे लगे और बाद मे वह भी जेल चले गए। जैसे-तैसे काम चलता रहा। मै भी थोडी-बहुत देख-रेख करती, पर ४२ के इस महान् आन्दोलन के आगे विधायक कामो की ओर कुछ दिनो तक बहुत ही कम ध्यान दिया गया। सरकार ने भी दमन बडे जोरो का किया। ऐसा मालूम पड़ता था कि अब दस साल तक कांग्रेस फिर नही उठ सकेगी। इस तरह से उसे कुचल दिया गया। बच्चो तक को महात्मा गाधी की जय बोलने पर बेरहमी से पीटा गया।

इस आन्दोलन ने अनेको के बलिदान लिये थे, अनेको ने कष्ट सहा था। बापू ने भी महादेवभाई को खोया। फिर बा भी गई। ये आघात तो बडे थे ही। पर बापू ने तो कई जहर के प्याले पिये थे, इसलिए वह बरदाश्त करते ही गये। यो बापूजी ने यह आन्दोलन बहुत सोच-विचारकर और सरकार को बहुत मौके देकर शुरू किया था। अँग्रेजो को कठिनाई में डालने का उनका इरादा नही था। वह उनकी अडचन से लाभ उठाना पसन्द नही करते थे। इसलिए उन्होने बहुत मौका दिया। जब अँग्रेजो की नीयत साफ न दिखाई दी और क्रिप्स-मिशन के आने पर बात चीत में उन्हे सन्देह का अनुभव हुआ तब वह तिलमिला उठे। जब वह

दिल्ली से लौटे, तो बहुत ही गम्भीर थे और उन्होने निश्चय-सा कर लिया था कि अब कुछ कदम उठाना चाहिए। कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की मीटिंगे हुई। उनमे प्राय. सभी बापूजी के विचार के ही थे। राजाजी का विचार भिन्न था। वह कहते थे कि इस मौके से लाभ उठाना ही चाहिए। बापू कुछ ऐसा कदम उठाना चाहते थे कि जिससे या तो आजादी का निश्चित वचन मिले, नही तो आत्मोत्सर्ग कर दे। सरकार पकड़े तो आमरण अनशन कर देह त्याग कर दे। अब सब गम्भीरता से सोचने लगे। साथियो से सलाह होने लगी। विनोबाजी से पूछा गया। महादेवभाई और किशोरलालभाई तो ऐसे अनशन का विरोध करते थे। बापू के साथ दलीले चलती थी, लेकिन विनोबाजी ने तो यह कह दिया कि बापू का विचार ही ठीक है। सब गम्भीर और सुन्न हो गए।

जब बम्बई के लिए बापू रवाना हुए थे, तब ऐसा ही लगता था कि अब फिर शायद बापू नही लौटेगे। बापू बा और महादेवभाई के साथ गये थे, लेकिन जब जेल से छूटकर लौटे तो बा और महादेवभाई साथ न थे। उन्हे अकेले देखकर आश्रमवालो के हृदय विचलित हो गए। दुर्गाबहन की स्थिति का तो कहना ही क्या था। बापू को भी महादेवभाई तथा बा की कमी खटकती थी और जब कोई चीज इधर-उधर हो जाती तो कहते, "पहले क्या मजाल कि कोई चीज जहाँ रखी जाती थी वहाँ से इधर-उधर होती। महादेव के नही रहने से अब गड़बड होती है।"

बापूजी ने धीरे-धीरे अपने विधायक कामो को देखना-भालना शुरु कर दिया और वह फिर काम मे जुट गए। यही उनकी विशेषता थी कि जैसी भी परिस्थिति हो उसमे अपने काम को कैसे लाभ पहुचाये, यह विचारकर काम मे लग जाते। अपने-आपका सन्तुलन रखना उनकी विशेषता थी।

'करो या मरो' आदोलन के बीच मध्य-प्रदेश के चिमूर-आष्टी स्थान के कुछ उत्तेजित लोगो ने हिंसा के काम कर डाले। सरकार के सैनिको ने उसका बड़ा भयानक बदला लिया, लोगो पर भयानक जुल्म ढाये तथा माँ-बहनों की ऐसी लाज लूटी गई कि लोग इन समाचारो को सुनकर स्तब्ध रह गये। इन घटनाओ ने सेवाग्राम-आश्रम के योगी भसालीजी

को बुरी तरह हिला दिया। वे चिमूर जाने को निकल पड़े। पर सरकार उन्हे वहाँ नही जाने देना चाहती थी। उसने उनको पकडकर सेवाग्राम छोड दिया। इसपर भसालीजी ने अनशन शुरू कर दिया। उनकी माँग यह थी कि चिमूर-आष्टी के अत्याचारो की जाँच की जाय। अनशन तिरसठ दिन तक चला। सारे देश मे उससे बड़ी सनसनी फैली। भसालीभाई की हालत बहुत नाज़ुक हो गई। श्री कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी, वालुंजकर तथा कमलनयन ने इस प्रश्न को अखबारो आदि में बहुत जोरो से उठाया। सरकार इस मामले को दबाना चाहती थी। लेकिन देश की माँ-बहनो की लाज का प्रश्न था। भसालीजी ने अपने प्राणो की बाज़ी लगा दी थी। अन्त मे सत्य की विजय हुई। सरकार ने भंसालीजी को चिमूर जाने की इजाजत दे दी। तिरसठवे दिन जाकर भसाली भाई ने पारणा किया। देश ने चैन की साँस ली।

: ३६ :

बापू का बलिदान

बापू ने जब फिर से विधायक कामो की तरफ ध्यान दिया तब उनके सामने गो-सेवा-सघ के काम का प्रश्न भी आया। नये सिरे से फिर गो-सेवा-सघ का काम शुरू हुआ। जमनालालजी ने अपने रहते गोरस-भडार तो शुरू करवा ही दिया था और वह चल रहा था। उसमे गायो का मनो दूध आता और बिकता रहता था। ग्राम-सेवा-मडल, बच्छराज-खेती तथा लक्ष्मीनारायण मन्दिर की डेरियाँ भी चल रही थी। व्यक्तिगत रूप से ग्वाले भी गाएँ पालने लगे थे। इस तरह वरधा मे गायो के काम की बढती हो रही थी, पर इस काम को बाहर फैलाने और उसे देश-व्यापी बनाने के लिए, बापूजी चाहते थे कि, मै लग जाऊँ। मैं बापूजी के कहने से इधर-उधर जाने लगी। गो-सेवा-सम्मेलन राजेन्द्रबाबू की अध्यक्षता मे बुलाया गया। वह भी इस कार्य में रस लेने लगे और उन्होने विहार मे काम शुरू करने की दृष्टि से सम्मेलन बुलाया। वहाँ काम शुरू हुआ। मैं आगरा, अमृतसर, पटना, भागलपुर, सीकर, कलकत्ता, बम्बई आदि स्थानो मे गई और काम बढाने का यथासम्भव प्रयत्न करती रही।

शातिकुमार मुरारजी की बापूजी तथा जमनालालजी पर श्रद्धा तो थी ही, वे गो-सेवा का काम करने लगे और सघ के कुछ दिन मत्री भी रहे। उनका वरधा आना-जाना होता था और वे बडे प्रेम और श्रद्धा से काम करते थे।

राधाकृष्ण इस काम मे काफी रस लेता था और गो-सेवा-सघ के काम की पुनर्रचना में उसका बहुत बड़ा हिस्सा रहा। यो गो-सेवा-सघ का काम तो वह करता ही था, पर दूसरे कामो की जिम्मेदारी भी उस पर इन दिनो थी और खासकर ग्राम-सेवा-मंडल की जिम्मेदारी रहने से रिषभदासजी को फिर मत्री बनाया गया। वह मेरे साथ कई जगह गए

और काम को बढाने की कोशिश करते रहे। लेकिन इस महान कार्य के लिए जो शक्ति चाहिए थी, उसकी मै तथा मेरे साथी अपने मे कमी पाते और इस काम मे विशेष प्रगति नही हो पाई। मै कुछ दिन इस काम मे लगी रही, पर न मालूम क्यो, उत्साह कम होता गया और बापूजी ने जितनी अपेक्षा रखी थी उतना काम नही हो पाया, इसका मुझे भी रज रहा। वह भी मुझे 'कामचोर' कहा करते थे। धीरे-धीरे मुझे उनके सामने जाने मे सकोच होने लगा। पर मैं करती भी क्या! मुझमे यह भार सम्हाला नही गया, या यो कहो, मेरा कोई ठीक-ठीक उपयोग नही ले सका।

दिल्ली की भगी-बस्ती मे जब बापूजी रहते थे तब वहाँ एक बार मैं गई। बापूजी उन दिनो थकान के कारण चार घटे मौन रहते थे। लेकिन मुझे देखते ही वह एकदम प्रेमवश बोल उठे, "चोर आ गई, चोर आ गई।" यद्यपि बापू ने यह विनोद मे कहा था, लेकिन मै उनकी हँसी मे भाग न ले सकी, क्योकि मै जानती थी कि इसके लिए उनके मन मे कितना दर्द है।

जिस दिन बापू के गोली लगने की खबर आई उस दिन सवेरे राजेन्द्रबाबू वर्धा आए थे। सब लोग खबर मिलने पर राजेन्द्रबाबू के पास इकट्ठे हुए। प्रार्थना हुई। राजेन्द्रबाबू ने दिल्ली जाने का तय किया, पर सबकी राय यह रही कि रात को जाना ठीक न रहेगा। वह रुक गए। लेकिन रात को एक बजे जवाहरलालजी का फोन आया कि उन्हे आना ही चाहिए। उनके लिए विमान की व्यवस्था की गई। उसमे मेरे लिए भी सीट रखी गई। जाने का मेरा मन तो था ही, लेकिन मैंने सोचा कि जब आश्रम वाले सब नही जा सकते तब मैं ही कैसे जाऊँ? बापूजी के गोली लगने की खबर से मन पर विचित्र तरह का असर हुआ। पहले तो ऐसा लगा कि कोई विशेष बात नही हुई है। फिर यह खयाल आया कि देखो, बापूजी ने जो मुझसे आशा रखी थी वह मैं पूरी नही कर सकी। उनके सामने मै क्या मुँह लेकर जाऊगी। मेरे मन मे यही विचार आया कि बापूजी यदि आँख खोलकर देखेगे और पूछेगे कि काम तो करती नही, यहाँ क्यो आई? तब मै क्या कहूँगी? अब जब वह देख नही सकते तो क्या मेरा उनके सामने जाना धोखा देना नही

है ? यह सोच कर मैं रुक गई । दिल्ली नही गई ।

रामकृष्ण दिल्ली से वापस आया तो बोला कि माँ, तू वहा क्यों नहीं आई ? तुझे तो आना चाहिए था । उसके कहने पर मुझे भी लगा कि अच्छा होता मै आखिरी दर्शन तो कर लेती । अब पछताने लगी । मेरे सामने ही तो हवाई जहाज गया था और दूसरे दिन बाबूजी वापस भी आ गए । मैं भी आ जाती । सचमुच मैंने कुछ खोया, बाद मे लगा ।

बापूजी के जाने से देश मे दु ख की लहर फैल गई और कई लोगो पर कई तरह से आघात हुए । हमारे यहा मदालसा पर बहुत ही असर पड़ा । उसने १२ रोज तक अन्न ग्रहण नही किया । उपनिषद् की प्रार्थना के कागज छपाकर वह घर-घर जाकर कहती, "अरे, अब तो जागो, बापू को खोकर भी क्या सोते रहोगे ?" उसकी हालत विक्षिप्त जैसी होगई थी । हम सबको बड़ी चिन्ता हो गई । श्रीमन्नारायणजी पर काम का इतना बोझ रहते भी उनके धीरज का पार नही था । इधर बापूजी के जाने का दु.ख तो था ही, उधर मदालसा की यह हालत । हमे यह डर था कि विक्षिप्त दशा मे वह कब क्या कर बैठेगी ? होठो मे खून आ रहा था । मुँह मे छाले पड़ गए थे ।

हमारे घर के सभी लोग ऐसा महसूस करने लगे कि बापू के जाने से हमपर से छत्रछाया उठ गई । बच्चे बापूजी के जाने से अपनेको बिना बाप का मानने लगे, क्योकि जमनालालजी के जाने के बाद बापू ने उन्हे बाप की कमी महसूस नही होने दी थी ।

जब अखबारवालों ने पूछा कि बापूजी के विषय में कुछ कहिए तब मैंने कहा, "हम आज बिना बाप के हो गए ।" यह बात मैंने गोपुरी मे कही । उधर वैसे ही शब्द कमलनयन ने बम्बई मे कहे ।

बापूजी के जाने का मेरे मनपर पहले कोई बहुत असर नही हुआ था, पर धीरे-धीरे जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, वह असर बढने लगा और मैं उनके अतिम दर्शन भी न कर पाई, इसका रज मन में रहने लगा । जब उनकी भस्मी बदरी, केदार, गंगोत्री ले जाने की बात आई तब मेरे मन मे आया कि मैं भी उस पार्टी के साथ जा सकूं तो अच्छा । पर मन में फिर संकोच हुआ कि भस्मी के साथ जानेवालो की सख्या

सीमित है। मेरे जाने से असुविधा होगी। पर मैंने आखिर डरते-डरते ब्रजकृष्णजी चाँदीवाला से पूछा कि क्या मैं जा सकती हूँ। वह बदरी-केदार-यात्रा की टोली के अगुआ थे। वह बोले कि पूछने का सवाल ही क्या है, आप ही मालिक हैं। यह सुनकर मुझे सन्तोष हुआ। मैंने सोचा कि बापूजी को गोली लगने के दिन जो सयम किया था, उसका प्रत्यक्ष फल मिल रहा है। मुझे ऐसा मालूम होने लगा, मानो बापूजी हाथ पकड़ कर यात्रा करवा रहे हैं। मुझे आशा नही थी कि मैं गगोत्री, यमुनोत्री, बदरी-केदार की कठिन यात्रा कर सकू गी। ऐसी स्थिति में यह योग मेरे लिए अपूर्व था। पर मैं यह भी जानती थी कि इस तरह भस्मी को बड़े-बडे तीर्थों मे ले जाना भी आडम्बर है और इसको ज्यादा महत्व नही देना चाहिए। पर लोक-भावना थी कि सैद्धातिक दृष्टि से भस्मी ले जाना बापू को पसन्द न होने पर भी यह सब क्रिया-काड अपने-आप होता गया। बापूजी की अस्थियो को स्पेशल ट्रेन से प्रयाग ले जाया गया था, तब भी मैं नही गई थी। कमलनयन ही गया था। मेरे मनपर उस समय भी सिद्धान्त की बात का हीं असर था। पर इस बार तो मुझे ऐसा लगा कि मैं इस मौके को खो दू गी तो फिर नही मिलेगा। बापू के साथ मेरा उत्तरकाशी का कार्यक्रम था, लेकिन वह नही जा सके थे। अब मुझे ऐसा ही लगा कि मै बापू के साथ ही जा रही हूँ। यद्यपि बापू की भस्मी जा रही थी, लेकिन बापू से भी ज्यादा सम्मान उसका हो रहा था। टेहरी राज्य की ओर से बडी अच्छी व्यवस्था थी। झंडे लेकर लोग आगे चलते थे। बाजे बजाते हुए भस्मी ले जाई जा रही थी। कार्यक्रम निश्चित रहता था। जगह-जगह स्वागत होता जाता था। छोटे-बडे, धनी-गरीब, बडे-बूढे, स्त्री-पुरुष, विद्वान-अनपढ, साधु-संन्यासी सभी भस्मी को प्रणाम करने और श्रद्धा भेट करने आते थे। ऐसे-ऐसे साधु भी आए, जो कभी अपनी गद्दी से नीचे उतरना और किसीके सामने जाना छोटापन समझते थे। लेकिन बापू ने सबके हृदय में जो स्थान पाया था, वह अवर्णनीय था। हम लोगो की सुख-सुविधा की भी बहुत अच्छी व्यवस्था थी और गाधीजी के भक्त समझकर हमारे प्रति आदर प्रकट किया जाता था।

: ३७ :

बजाजवाड़ी सूनी हो गई

यों तो जमनालालजी के स्वर्गवास के बाद बजाजवाड़ी की चहल-पहल कुछ अशो मे कम हो गई थी, फिर भी जबतक बापू सेवाग्राम में थे तबतक आने-जानेवालो का ताता लगा ही रहना था। बापूजी के जाने के बाद लोगो का आना-जाना कम हो गया। लेकिन किशोरलाल-भाई के बजाजवाडी मे बसने से एक तरह से वह उनकी बस्ती बन गई थी और वहाँ 'हरिजन' के काम के लिए कुछ काम करनेवाले रहते थे। इससे तथा किशोरलालभाई से मिलने-जुलने को आनेवालो से कुछ चहल-पहल रहती थी। जब मेरा मन न लगता तब मैं उनके पास चली जाती। जब भी जाती वह और गोमतीबहन काम मे लगे हुए दीखते। उन दोनो का शरीर तो हड्डियो का ढाचा मात्र था। बीमारी लगी ही रहती थी। कहते हैं, बीमारी से मनुष्य चिडचिडा हो जाता है, पर किशोरलालभाई तो इतनी तकलीफ भुगतकर भी सदा हँसमुख ही रहे। मैं जाती तो काम छोडकर देखने लगते और कहते, "केम बोलवानु प्रण कर्यु छे!" मतलब यह कि मैं उनसे बात करूँ। मुझे डर लगता था कि उनसे बात करने से उनके काम का बोझ और बढ जायगा। वह जैसे महान् तत्व-ज्ञानी, विचारक और सिद्ध पुरुष थे, वैसे ही व्यावहारिक भी थे। इसलिए उनसे व्यवहार की सलाह लेने को सभी आते थे। उनको थकान होगी, यह जानकर भी उनकी सलाह लेना सबको जरूरी मालूम देता था। मुझे वरधा बजाजवाड़ी मे अकेले रहते देखकर एक बार उन्होंने राम से कहा, "रामकृष्ण, जानकीबहन को यहाँ रखने की अपेक्षा या तो किसी काम मे लगाओ या अपने पास रखो, क्योंकि इस तरह उनको मेरा छोटे-छोटे कामो में मन लगाना अच्छा नही लगता।" रामकृष्ण ने कहा कि तुम बम्बई

आ जाओ, पर मैं बम्बई चली भी जाती तो मेरा मन थोडे ही लगता। पहले भी वह तथा घर के लोग बम्बई आने को कहते ही रहते थे।

बजाजवाडी में बच्चो का खेलने का मैदान था। रामकृष्ण और उसके साथी वहाँ खेलते थे। वह जब जेल मे था तब वहाँ से लिखता रहता था कि मैदान को अच्छा बनाया जाय। रोलर घुमाकर मैदान पक्का कर दिया गया था। पर जब बगाल के अकाल के बाद देश को अनाज अधिक उपजाने की जरूरत पडी तब मुझे लगा कि इस जमीन का कुछ उपयोग होना चाहिए। उन दिनो किशोरलालभाई बजाजवाडी मे घूम रहे थे। मैंने उनसे कहा, "इस मैदान मे भी अनाज बोना चाहती हूँ। पर लडके नाराज होगे यह जमीन पक्की करने मे काफी खर्च हुआ है। अब इसे तोडने मे अधिक खर्च होगा। क्या किया जाय?" वह बोले, "करो हिम्मत।" मैंने हिम्मत करके हल चलवाया और वहा मूँगफली की काफी अच्छी फसल हुई।

मशरूवाला-कुटुम्ब से हमारे कुटुम्ब की आत्मीयता पहले से ही थी। जमनालालजी का व्यापार मे भी उनके कुटुम्ब के साथ सम्बन्ध था। किशोरलालभाई के त्याग से वह बहुत प्रभावित थे। वह हमेशा कहते कि देखो, ये कितने त्यागी, मितव्ययी, तपस्वी और ज्ञानी हैं। इनका शरीर इतना कमजोर है, फिर भी किसी से सेवा लेते नही, देते ही हैं और किसी के भी सुख-दु ख मे पहुँच जाते हैं।

गोमतीबहन और मैं तो साबरमती, विलेपारले सेवाग्राम, साथ-साथ रहे थे। उनका बजाजवाडी मे रहना सब तरह से अच्छा लगता था और यही जी चाहता था कि वह हमेशा बजाजवाडी में रहे।

जब बम्बई मे किशोरलालभाई के स्वर्गवास का फोन आया तब मैं हक्की-बक्की रह गई। गाडी छूटने मे एक घटे की देर थी। मैंने तैयारी कर ली, पर गाडी पर पहुँचा कैसे जाय। रामकृष्ण आया तब आधा घटा रह गया था। स्टेशन पर पहुँचना तो सम्भव था नही। अब क्या किया जाय? मैं तो किशोरलालभाई के जाने की खबर सुनने के बाद बम्बई मे रह नही सकती थी। मेरे सामने यही दृश्य आने लगा कि गोमतीबहन की रात कैसे कटेगी। मैं जल्दी-से-जल्दी वरधा पहुँचना चाहती थी। कैसे पहुँचू? आखिर विमान की बात सूझी। फोन से पूछने पर मालूम हुआ

कि जगह खाली नही है। समय पर यदि कोई व्यक्ति न आए तो स्थान मिल सकता है। यो तो विमान मे जाने का खर्च बरदाश्त करने की हिम्मत बहुत कम पड़ती, लेकिन आज तो मुझे वरधा के सिवा दूसरा कुछ भी सूझ नही रहा था। मै और रामकृष्ण तो थे ही, नीलूभाई के बहनोई भी थे। इस प्रकार तीन जानेवाले थे। जब राम ने पूछा कि अगर जगह एक ही मिले तो कौन जायगा ? मैने कहा, "मैं तो रह नही सकती।" हम विमान पर गए। सयोग से वहाँ तीन जगह खाली मिल गईं। हम सुबह ५ बजे बजाजवाड़ी पहुँचे।

उस समय किशोरलालभाई को माथे के नीचे तकिए का सहारा देकर सुलाया था। गले मे फूल और सूत की मालाए पहनाई गई थी। वह गाढी निद्रा में सोए हुए लग रहे थे। चेहरे पर अपूर्व शान्ति थी। गीता का पाठ हो रहा था। वातावरण गम्भीर और शान्त था।

सिरहाने गोमतीबहन बैठी थी, मानो करुणा की मूर्ति हो। आँखो से आँसू बह रहे थे। आँखें सूज गई थी, पर हिम्मत और धीरज से वह इस दु.सह दुःख को सहन कर रही थी। उन्होने जीवन-भर किशोरलालभाई मे लीन होने का प्रयत्न किया था। अब उनका इस तरह चले जाना लोगो को भी असह्य था, तो फिर गोमतीबहन की तो बात ही क्या थी !

किशोरलालभाई बीमार ही रहते थे। कई बार तो उन्हे सास लेने मे भी कठिनाई होती थी। लेकिन आज जैसे उनकी सारी तकलीफें दूर हो गई हो। वे शाति से सोये हुए मालूम देते थे। श्रीकृष्णदास जाजू जैसे वैरागी भी किशोरलालभाई के जाने से विह्वल हो गए। आंसुओ को वह भी नही रोक सके।

उस समय ऐसा लगता था मानो किसी बडे हवन या पूजन की तैयारी हो रही हो। अर्थी के साथ महिलाश्रम की लडकियां, बहनें तथा हजारो लोग थे। गोमतीबहन भी साथ गईं। करीब दस बजे गोपुरी में जमनालालजी की समाधि के पास दाह-क्रिया हुई। दोनो मे भाई-जैसा प्रेम और मैत्री थी। जाने के बाद दोनो की दाह-क्रिया भी पास-पास ही हुई।

बाहर के काफी लोग थे, क्योकि किशोरलालभाई के मित्र और आत्मीय बहुत अधिक थे। उनको गोमतीबहन स्वयं अपने हाथ से चाय

बनाकर पिलाती। पीनेवालो को सकोच तो होता था, पर इलाज भी क्या था। गोमतीबहन के स्वभाव मे ही समाई हुई थी।

हम सबकी यही इच्छा थी कि गोमतीबहन वरधा में ही रहे, पर वह बारडोली चली गई और उनके जाने से बजाजवाडी की चहल-पहल और भी कम हो गई।

: ३८ :

विनोबा के यज्ञ में

विनोबाजी को पहले-पहल मैंने साबरमती मे देखा। वह तथा उनके भाई बालकोबाजी दिनभर गढे आदि खोदते रहते। हमने सुन रक्खा था कि वह श्रम करके कम-से-कम, यानी आने-दोआने मे, खर्च चलाते थे। वह बोलते कम थे। गीता का वर्ग लेते थे। उनके वर्ग मे स्त्रियाँ भी जाती थी। पढाते समय समझाते बहुत अच्छा थे। समय के बडे पाबन्द थे। वर्ग मे अगर कोई विद्यार्थी एक मिनट भी देर से पहुँचता तो उसे वर्ग के बाहर खडा रहना पडता। वह पढाते समय इतने जोर से बोलते कि स्वय पसीना-पसीना हो जाते। जब गीता का वर्ग शुरू करने की बात चली, तब उन्होने पढने की इच्छा रखनेवाले विद्यार्थियों की योग्यता की जाँच करने के लिए एक-एक को बुलाकर सबसे गीता के नौवे अध्याय का नौवाँ श्लोक पढने के लिए कहा। मैं भी उनमे थी। आगे चलकर मालूम हुआ कि यह श्लोक गीता मे सबसे ज्यादा सयुक्ताक्षर वाला है।

विनोबाजी तथा उनके दोनो भाई बालब्रह्मचारी हैं। विनोबाजी विद्वान तो हैं ही, इसलिए उनका हम लोगो पर बहुत प्रभाव था और हमारी उनके प्रति श्रद्धा भी खूब थी। लेकिन उनसे बोलने की किसी की हिम्मत नही होती थी, क्योकि वे बहुत कम बोलते थे। मेरे मन पर भी उनका प्रभाव था। मै सोचती थी कि मेरे बच्चे भी उनके जैसे ही बने। एक दिन जब जमनालालजी ने मुझसे पूछा कि मैं अपने बच्चो को क्या बनाना चाहती हूँ तो मैंने कह दिया कि विनोबा-जैसा फकीर बनाना चाहती हू। मैंने तो ये शब्द भावनावश कह दिये थे, पर जमनालालजी तो उनके गभीर अर्थ को समझते थे और यह भी जानते थे कि यह अपने हाथ की बात

नही है। उन्होने कहा, "शब्द तो बडे-बडे सीख गई है, पर उसका अर्थ भी जानती है ?"

मै यही सोचती थी कि मेरे बच्चे भीष्म के समान ब्रह्मचारी और विद्वान् बने। शादी-व्याह तो सब करते हैं, लेकिन इससे बचने मे ही विशेषता है। इसकी बच्चो के सामने चर्चा चलती। एक बार कमलनयन मजाक मे बोला, "तू तो नो बरस की विवाह कर लियो, म्हाने फकीर बणाने मे तने के जोर आवे ?" हमारे परिवार मे तीन पीढी के बाद बच्चे हुए थे। उनपर सबका लाड-प्यार रहना स्वाभाविक था। फिर भी मैने भावना और श्रद्धावश बच्चो को विनोबाजी के पास सीखने के लिए छोड दिया। केवल लडको को ही नही, पन्द्रह-पन्द्रह बरस की लडकियो को भी उनके हवाले कर दिया। जहॉ विनोबाजी के आश्रम में लडको का रहना कठिन था, वहॉ लडकियो को भी रखना आसान थोडे ही था। विनोबाजी तो लडके और लडकी मे कोई भेद ही नही समझते थे। सबसे समान परिश्रम कराते थे।

साबरमती मे उनके प्रति जो श्रद्धा पैदा हुई थी, वह वरधा मे उनका सम्पर्क बढने पर बढती ही गई। जमनालालजी और बापू के चले जाने पर जो रीतापन अनुभव हुआ उससे विनोबाजी के और निकट जाना आवश्यक हो गया। मै उनके साथ अनेक स्थलो पर घूमती रही। विनोबाजी का खान-पान, रहन-सहन, चलना-फिरना सब मुझे मनभाता लगता है। उनके साथ रहने मे मुझे जीवन की सार्थकता महसूस होती है।

एक बार मैने सपने मे देखा कि मुझे मेरा स्वर्गीय छोटा भाई हाथ के झाले देकर बुला रहा है। जागने पर मैं उस सपने को भुला न सकी। खादी का कुरता पहने, सफेद टोपी लगाये स्वर्गीय भाई का मुझे 'बाई आओ, बाई आओ' कहकर बुलाना ऐसा लगा, मानो अब मृत्यु का बुलावा आ गया है। मेरे मन मे एक प्रकार का वहम घुस गया कि मै अब बारह महीने में मर जाऊँगी। मैंने तय किया कि जो हो, बारह महीने तक विनोबाजी के साथ ही रहना चाहिए। अगर मैं मर जाऊँ तो उनकी उपस्थिति मे मरू ँ। इस तरह मैं विनोबाजी के साथ बारह महीने रही। बारह महीने पूरे होने पर मुझे विश्वास हो गया कि अब मै एक बार तो

बच ही गई।

शादी के बाद जब ओम् लाल-पीले कपडे पहनकर विनोबाजी को नमस्कार करने गई तब वह बोले, "आओ होलिकाजी।" मैंने कहा, "यह शादी के बाद आई है। आपने इसे होलिका कैसे कहा?" बोले, "लाल रंग तो होलिका का है।" मैंने पूछा, "फिर अच्छा रग कौन-सा है?" उन्होंने कहा, "हरा रग अच्छा, क्योकि इसमे सृष्टि का स्वाभाविक सौन्दर्य भरा है।" मुझे बात जॅच गई। मैंने अपने तकली पर कते सूरत के ढाई गज लम्बे दुपट्टे बनवाये। चालीस बने। उन्हे मैंने हरा रगवाया और बापूजी के भस्मी-प्रवाह के दिन, यानी बारह फरवरी को, जिस दिन पवनार मे मेला लगता है, मैंने एक-एक दुपट्टा विनोबाजी तथा तुकडोजी को भेट किया। विनोबाजी ने उस हरे दुपट्टे को दुपहरी की धूप मे सिर पर ओढ लिया। जब मैंने तुकडोजी से उस दुपट्टे के हरे रग तथा तकली के सूत का इतिहास बतलाया तो उन्होने उस दुपट्टे को गले मे लपेट लिया। विनोबाजी ने तो अपनी सर्वोदय-यात्रा तथा तेलगाना की यात्रा में उस दुपट्टे का अच्छी तरह से उपयोग किया। मुझे ऐसा लगता है कि तकली से फुरसत मे कते सूत, विनोबाजी के सुझाये रग और मेरे प्रेम से भेट करने के कारण उस दुपट्टे ने यह स्थान पाया। आज भी विनोबाजी उसका उपयोग भूदान-यात्रा मे करते हैं। महादेवीताई ने फिर तो विनोबाजी की चद्दर आदि हरे रग के ही करा लिये।

एक बार जमनालालजी ने विनोबाजी से चर्चा की थी कि राम-लक्ष्मण की तो सब पूजा करते हैं, पर तपश्चर्या तो भरत की कम नही थी, लेकिन भरत का मन्दिर कही देखने मे नही आता। उन्होने कहा कि मन्दिर तो क्या बनेगा, लेकिन अपने मन्दिर मे भरत की मूर्ति रखी जाय तो अच्छा। इसके कुछ दिनो बाद जमनालालजी जेल चले गए। पवनार मे खुदाई के समय मूर्तियाँ निकलती रहती थी। विनोबाजी गढ़ा खोद रहे थे तो वहाँ भरत-भेट की मूर्ति मिल गई। विनोबाजी को जमनालालजी की इच्छा स्मरण हो आई। उन्होने वहाँ एक छोटे-से मकान मे उस मूर्ति की स्थापना की और खुद वहाँ पाठ करने लगे। पाठ इतने जोर से करते कि पसीने मे तर हो जाते। पाठ के समय ऐसे तन्मय होकर बोलते कि उस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए गाँव तथा आसपास

तक के लोग इकट्ठे हो जाते। जैसे विनोबाजी का यह प्रयोग चल रहा था, वैसे ही पवनार मे काचन-मुक्ति का भी वह प्रयोग कर रहे थे। वह चाहते थे कि सस्थाएँ परावलम्बी न रहे, परिश्रम पर ही उनका खर्च चले। पेट मे फोडा (अलसर) हो जाने से उन्होने परिश्रम करके अपना स्वास्थ्य ठीक करने का निश्चय किया। उनका प्रवास के लिए मन नही था। पर जब हैदराबाद के सर्वोदय-सम्मेलन में उनका हाजिर रहना कार्यकर्ताओ को आवश्यक मालूम दिया तब उन्होंने वहाँ जाने का निर्णय किया और पैदल चलने का निश्चय। इस तरह की यात्राएँ करने की उन्हे पहले से ही रुचि थी।

विनोबाजी ने वरधावासियो से ८-३-५१ को विदा ली। लक्ष्मी-नारायण-मन्दिर मे प्रार्थना के बाद विदाई का भाषण हुआ। उसमें उन्होने कहा, "सम्भव है, हैदराबाद से आगे भी बढूँ। उस हालत मे वापस कब जाऊँगा, कह नही सकता। इसलिए यह विदाई आखिरी भी हो सकती है।" वह ऐसी गम्भीरता के साथ बोले, मानो वह आखिरी विदाई हो रही हो। इसलिए वह प्रसग वरधावासियो के लिए राम-बनवास-जैसा ही लगा।

मैं उनका विदाई का भाषण सुन अपने आपको रोक न सकी। मैंने उनसे कहा, "जैसे आपको जाने का अधिकार है,वैसे ही हमको लाने का भी है। भरत की तरह हम लोग आपको वापस लिवाने आ सकते हैं। हम विमान मे भी उडा ला सकते हैं।" मै पहले पडाव तक उनके साथ गई। उस दिन चौदह मील पर पडाव था। उनके हैदराबाद पहुँचने के पहले ही मै ७ मील के मुकाम पर पहुँची। मै जब उनके साथ चलती हूँ तब वह प्रति घंटा साढे तीन मील की चाल चलते हैं। लेकिन उन दिनो उनकी चाल पाँच मील प्रति घटा हो गई थी। उस दिन ७ मील ही चलना था, इसलिए साढे चार मील की रफ्तार से चले। इससे मैं एकदम थक गई। पडाव पर पहुँचते ही बाँस के टट्टे की बनी झोपडी मे जाकर सो गई। उधर से धूप तप रही थी। उठकर ठडे पानी से नहाई। कपडे धोकर सुखा दिए। उस दिन रसोडे मे पूरणपोली और भजिये बने थे। ये पक्वान्न स्वाद लगने से ज्यादा खाने मे आयगे, इस डर से मैं घर से लाई हुई बासी पूडियाँ ही खाकर सो गई। उससे बुखार आ गया। महावीरप्रसादजी

पोद्दार सम्मेलन मे आये हुए थे। उनके प्राकृतिक इलाज से कुछ दिनों मे तबीयत ठीक हुई, पर सर्वोदय-सम्मेलन मे मै विशेप हिस्सा न ले सकी और तबीयत ठीक न होने से विनोबाजी के साथ तेलगाना भी न जा सकी। हैदराबाद से लौटते समय भूदान-यज्ञ प्रारम्भ हो गया। विनोबाजी मध्य-प्रदेश मे भी आये तो वहाँ भी वह काम चला। शुरू से ही विनोबाजी का प्रत्येक काम मुझे अच्छा लगता रहा। इसलिए यह भी अच्छा लगा। पर यह काम इतना बडा है, यह मैं नही जानती थी। चादिल-सर्वोदय-सम्मेलन मे गई तब वहाँ का उत्साह और वातावरण ही कुछ दूसरा दिखाई दिया। सबमे उत्साह था और सबको ऐसा लग रहा था कि इस यज्ञ मे सवको भाग लेना चाहिए। राजेन्द्रबाबू का भापण वहुत प्रभावशाली हुआ, लेकिन विनोबाजी का भाषण तो अद्भुत था। सबकी चेतना को उसने जगा दिया। बीच के समय मे औरतो का सम्मेलन था। निर्मला के कहने से मैं अध्यक्ष बन गई और मैंने बहनो से काचन-मुक्ति के लिए अपील की कि वे अब जेवर छोड दे।

एक बगाली लड़की ने अँगूठी लाकर दी। विनोबाजी आ गए थे। मैंने वह अगूठी उनकी अँगुली मे पहना दी। फिर बहुत-सी बहने एक-एक करके जेवर लाने लगी। एक बहन ने मंगल-सूत्र भेजा। मैंने विनोबाजी के गले मे पहनाया तो वह दाढी मे उलझ गया। सब हँसने लगे। कइयो को तो यह बात अचरजभरी लगी कि इतने गम्भीर सन्त से विनोद करने की हिम्मत भी किसी की हो सकती है। जयप्रकाशजी ने कहा कि मैं यह नहीं जानता था कि विनोबाजी से इतना मजाक आप कर लेती हैं! वहाँ करीब २८ तोला सोना इकट्ठा हुआ। विनोबाजी से पूछा कि इसका क्या किया जाय? वह बोले, "बहनो के प्रेमपूर्वक दिये हुए दान का उपयोग जल के लिए होना ही अच्छा है।" इसलिए कुओ का निर्माण जरूरी समझा गया, क्योकि मनुष्य तो जैसे-तैसे पानी प्राप्त कर लेता है, लेकिन पशु विना पानी के बहुत कष्ट पाते हैं। इसलिए उनकी सेवा कुँओ के द्वारा अधिक होगी और भूमि भी हरी-भरी बनेगी। इसलिए कूपदान चल पडा।

मैं चादिल-सम्मेलन के बाद विहार मे रह गई और घर-घर जाकर मा-बहनो से कुओ का दान माँगने लगी। माताएँ धार्मिक भावनावाली

होती हैं। उनकी भावना को चाहे जिस ओर मोडा जा सकता है। चाहिए केवल उनकी भावना का ठीक-ठीक उपयोग करनेवाला। समय और स्थान का भी मुझे कोई खयाल नही रहा। गयाजी मे मेरी कोई विशेष जान-पहचान नही थी। घर-घर बहनो के पास जेठ-बैसाख की धूप मे भी घूमती। तीन-तीन, चार-चार मजिल पर चढती और अपनी बात समझाती। आजकल मॉगनेवालो से कोई खुश तो नही रहता, पर मुझे तो धुन लगी हुई थी। मेरे मन में विचार आया कि एक सौ आठ कुए हो। सूत की एक लटी मे तारो की यही सख्या होती है। पहले महीने मे कोई सिलसिला नही जमा। निराशा-सी होने लगी। मन डगमगाने लगा कि एक सौ आठ की जगह आठ भी हो जायं तो बडी बात है। जब मै कहती कि गायो के लिए पानी पीने को नही मिलता है तब बडे घरो की स्त्रियॉ कहती कि पानी तो बहुत है। तब मैंने कहा कि एक दिन देहात मे चलो। गया के श्री भूपराजा बडे भावनावाले जमीदार हैं। वह गाधीजी तथा विनोबाजी के बडे भक्त हैं, लेकिन उनको या उनके घरवालो को यह कल्पना नही थी कि दरअसल कुओ के बिना गॉवो मे पशु तथा मनुष्यो को कितना कष्ट है। मोटर मे बैठाकर उन्हे तथा उनके घरवालो को देहात में ले जाने का कार्यक्रम बनाया। हम जब देहातो मे पहुँचे तो उन्होने देखा कि गरमी मे चारो ओर सूखा-ही-सूखा है। गरमी मे पशुओ की हड्डियाँ दिखाई दे रही हैं और बिना पानी और चारे के वे बेहाल हो रहे हैं। पचास घरों मे केवल एक कच्चा कुआँ था, सो भी बारिश में बन्द हो जाता था। उन्हे हर साल नया खोदना पडता। चूना, ईट, सीमेंट से पक्का बनाने की उनकी शक्ति नही थी। यह हाल देखकर बहनो का हृदय पसीज गया। वे बोली, "सौ तोले की जगह हम दस तोला सोना पहनेंगी, लेकिन कुआँ बनवायंगी।" फिर गॉववालो को इकट्ठा कर उनसे बात की। गाववालो ने कहा कि हम कुआँ खोद लेंगे, ईट बना लेंगे। हमें चूना और सीमेंट आदि ही चाहिए। गाँववाले अपने श्रमदान से कुँआँ बना लेंगे, इसलिए पाँच सौ रुपया एक कुएँ के लिए मिलने से काम चल जायगा। १०८ कुओ के लिए कम-से-कम पचास हजार रुपया होना चाहिए। हवा फैल गई। गया मे लक्ष्मीनारायणजी डालमिया रहते हैं।

साधु-सन्तो के भक्त हैं। उन्होने दस तोला सोना दिया और सत्यदेवजी से भी मैंने दस तोला सोना लिया। धीरे-धीरे वहाँ ३९ कुए खुदे और ३० के वचन मिले। दूकान पर सीमेट लेने लगे तो लारीवाले बिना किराए के सामान पहुँचाने लगे, सिर्फ पेट्रोल ही लेते।

विनोबाजी पैदल घूमकर एक महीने मे राची आए और मै गया से रेल से गई। राची मे भी घर-घर समझाने लगी कि विनोबाजी आवे तो उनको कुओ की भेट दी जाय। १३।।। तोला सोना और तीस कुओ के लिए पाच-पाच सौ के वचन मिले। वर्षा शुरू होने से कुएँ बनाने का काम तो हो नही सकता था, इसलिए रकम वही पचो के पास रखकर मै कलकत्ता गई। वहाँ ६१ कुओ के लिए तीस हजार पाँच सौ रुपए तथा ४।। तोला सोना मिला। यह रकम खादी-भडार मे जमा करा दी गई। कलकत्ते मे सभी लोग परिचित थे। मै इस तरह घर-घर घूमू, यह उन्हे रुचिकर नही लगा। वे बोले कि आपको एक-दो जगह से रकम मिल जाय तो काम हो सकता है, फिर इस तरह क्यो घूमती हो? पर मैं बोली, "मुझे तो स्त्रियो मे प्रचार और देश की माँग की जानकारी कराने के लिए घूमना है।" इसलिए घर-घर घूमती रही। जब मैं झील पर, जहाँ लोग सवेरे घूमने आते हैं, कुएँ माँगने पहुँचती तो घनश्यामदासजी बिडला हँसकर कहते, "आज मैयाजी की झोली मे कितने कुएँ पडे?" मै कहती—"आज दो पड़े, आज कुछ नही मिला।" मैं उनसे तो क्या माँगती!

एक दिन घनश्यामदासजी बोले, "बिडला-पार्क आना।" यो जब भी कलकत्ते जाने का काम पडता और वह मिलते तो बुलाते ही रहते। मै भी जब कलकत्ता जाती तब मिलने जाया करती। मैं मिलने गई। उस दिन उनसे कई बडे-बडे लोग मिलने आए थे और वह काम मे बहुत घिरे थे। परन्तु खबर मिलते ही वह एकदम बाहर आकर मेरे पास बैठ गए और प्रेम से पुरानी बाते करने लगे। बोले, "मेरा और जमनालालजी का क्या सम्बन्ध था, यह तुमसे छिपा नही है।" यह सुनते ही मेरी आँखो मे आँसू आ गए। वह भी गम्भीर हो गए। थोडी देर बाद बोले, "पाँच कुएँ तुम्हारी झोली मे गिराने है।" मैं बोली, "इतने तो बहुत हैं, एक आदमी का एक कुआँ, बस!" वह बोले, "मेरे तीन बेटे और तीन बहुएँ हैं। तो छः कुएँ

ले लो।" तब मैं बोली, "पानी तो बेटा बहुई पीसी। म्हे विनाई पाणी रेस्या ?" मैं वहाँ से चली आई। इसके पहले मैंने जुगलकिशोरजी को एक पत्र लिखकर एक कुआँ माँगा था। उन्होने भी पॉच सौ रुपए भेज दिये थे।

यो तो कलकत्ते से आने का मेरा मन नही था, वही पर कुओ का काम करना था, पर गायो के विषय में एक शिष्ट-मडल प० जवाहरलाल-जी के पास जा रहा था, उसमे जाने के लिए मुझे दिल्ली बुलाया गया, इसीलिए मुझे वहाँ जाना पडा।

जब मैं दिल्ली पहुँची तो वहाँ वालो ने कहा कि यहाँ कुओ का काम नही हो सकेगा, यहाँ रोज ही चन्दे हुआ करते हैं। फिर भी मैं बृजकृष्ण-जी चादीवाला तथा नन्दलाल मेहता के पीछे पडी और मैंने घर-घर फिरना शुरू किया। सवेरे आठ बजे से शाम के आठ बजे तक वही धुन। एक दिन बाबा राघवदासजी बोले, "पडित जवाहरलालजी से कुआँ कौन लाये ?" मैंने कहा—"मैं लाऊँगी।" ११ सितम्बर शुक्रवार को ग्यारह बजे उनसे मिली। उस दिन विनोबाजी का जन्म-दिन था। मै रामे-श्वरीबहन तथा ओम् के साथ पहुँची। जवाहरलालजी पार्लमेंट से आए ही थे। थके हुए थे, मानो सोकर उठे हो। देखकर दया-सी आई और ऐसा लगा कि ऐसे थके हुए से बात न करूँ तो अच्छा। मगर समय लिया तो बात तो करनी ही थी। मैंने कहा, "आज विनोबाजी का जन्म-दिन है, आपको हँसना पडेगा।" वह बोले, "खूब हँसूगा।" बैठ गए और फिर कूप-दान की बाते चली। रामेश्वरीबहन ने कहा कि ये औरतो से जेवर लूटती हैं और इस कार्य में जोरो से लग गई हैं। उन्होने वह जेवर देखा, जिसको मैंने विनोबाजी के गले में पहनाया था। फिर मैंने कहा—"भीष्म पितामह को अर्जुन ने पृथ्वी में बाण मारकर पानी पिलाया था, वैसे ही आप तीर मारकर पाताल फोडिए, जिससे विनोबाजी को पानी-ही-पानी मिल जाय।" वह खूब हँसे। मैंने कहा कि अपने नाम का एक कुआँ दीजिए। आपका आशीर्वाद चाहिए। रामेश्वरीबहन ने कहा कि राजघाट की प्रार्थना मे आपका सदेशा चाहिए। वह बोले, "मैं भेज दूँगा।" उन्होने सदेश के साथ एक कुएँ का आश्वासन याद करके भेज दिया।

शाम को राजघाट की प्रार्थना मे राजेन्द्रबाबू आए। उनका भूदान के विषय मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण हुआ और उन्होने कूप-दान की भी महत्ता बताई। मैने कहा कि आपकी तरफ से एक कुआँ छपरे मे बन जाय। वह बोले, "एक छपरे मे तो कह ही दिया। एक अबोला मे भी बन जाय।" इस तरह दो कुँओ का दान उनकी ओर से मिला। उन्होने एक हजार रुपए रामेश्वरीबहन के पास भिजवा दिये। उनके व्याख्यान के बाद मैने पूछा, "बाबूजी, मैं बोलू क्या ?" वह बोले, "हाँ-हाँ, बोलो।" मैने कहा, "बाबूजी ने तो बहुत प्रेमपूर्वक गम्भीरता के साथ आपसे कहा है। यह तो सत हैं। मै तो आपसे बहन के नाते प्रार्थना करती हूँ कि आज १०८ कुएँ पूरे कर दीजिए।" सवेरे तक ७६ हुए थे, एक जवाहरलालजी का इस तरह ८० हुए। एक आदमी पाँच हजार रुपए नगदी दस कुँओ के लिए ले आया। एक गुजराती भाई ने ८ कुँओ का वचन दिया। इस तरह ९८ हो गए। किसी को उम्मीद नही थी कि इतने कुएँ हो जायँगे। बाबूजी भी बहुत देर तक बैठे रहे। घर पहुँची तो श्रीमानजी से कहा कि १०७ तो हो गए हैं, एक बाकी है। वह एक गाँव मे मीटिंग के लिए गए और वहाँ से करीब ११॥। बजे रात को आए। बारिश हो रही थी। उन्होने दरवाजा खटखटाकर कहा, "माताजी, एक कुआँ आपके लिए ले आया हूँ और वह भी दो-ढाई हजारवाला बडा।" मेरा जी भर आया। अनुभव किया कि यह बापू और विनोबा के तप का ही फल है कि मेरा सकल्प इस तरह पूरा हुआ।

उन दिनो विनोबाजी काँचन-मुक्ति की बात पर ही जोर देते थे, इसलिए उन्हे पैसो का आकर्षण नही था। जब कोई उनको रुपया-पैसा देता तो वह वापस कर देते। बिहार मे भूदान-यज्ञ मे किसी बहन ने आकर एक रुपया और दूसरी ने पाँच रुपया दिये तो उन्होने वापस कर दिये। नवादे में जयदयालजी डालमिया की बहन सौ रुपए का नोट लाईं तो वह भी वापस कर दिया। हा, जब बहनें जेवर देती तब वह मुझे कूप-दान के लिए सौप देते। कहते, बहनों का यह सच्चा त्याग है। पर सब बहनें जेवर दे, यह सम्भव नही था और पैसे तो वह लौटा देते थे। तब क्या किया जाय ? रांची मे एक बहन ७ तोला सोना और दूसरी पाच सौ रुपए

लाई। मैंने सोचा कि रुपये तो लेंगे नहीं, फिर क्या करें ? पर एक बार देकर तो देखें। मैं उन बहनों को लेकर गई। विनोवाजी ने रुपए लेकर मेरे हाथ में दे दिए। तब मैंने कहा कि चलो, अच्छा हुआ। रास्ता खुला। इस तरह कूप-दान मे रुपए लिये जाने लगे। जब कृष्णदासभाई मिले तो बोले कि आप तो विनोवाजी से भी वढकर निकली कि उनको पैसा लेना सिखा दिया। विनोबाजी इसीलिए कहा करते हैं कि जानकीवहन 'अपवाद' है।

: ३६ :

उपसंहार

मेरी कथा पूरी हुई, पर जीवन-यात्रा अभी जारी है। नौ वरस की उम्र मे जावरे से वरधा अपरिचितो के बीच रहने गई। छोटी-सी कच्ची उम्र में ही माता-पिता से जो सस्कार मिल सके, उनको लेकर ससुराल गई। जव होश सम्भाला तो सास और दादा-ससुर का साया उठ चुका था। जमनालालजी से सम्पर्क और परिचय बढने लगा और उन्होने मेरा जीवन अपने विचारो के अनुकूल ढालना शुरू कर दिया। लेकिन वे अपनी कोई भी इच्छा मुझ पर लादते नही थे। जो बात अच्छी होती थी, उस ओर इशारा मात्र कर देते थे। इस प्रकार जीवन चल रहा था कि गाधीजी आये। उन्होने तो हमारे जीवन मे तूफान की तरह प्रवेश किया। सारा जीवन वदल गया। उसके वाद विनोवाजी से परिचय और सम्पर्क बढा। इस प्रकार मेरा जीवन आज जो कुछ है, वह माता-पिता के सस्कारो के अलावा जमनालालजी, बापूजी और विनोबाजी का वनाया हुआ है। बापूजी को तो अपनी जीवन-साधना करने में प्रयत्न करना पडा था। उन्होने नियम से, दृढता से, परिश्रम से अपना जीवन साधा। विनोवा के लिए सव सहज है। इस प्रकार इन तीन साधको और महापुरुषो के निकट सम्पर्क मे रहकर और अपनी शक्ति भर प्रयत्न करते रहने पर जैसी मैं बनी और हूँ, उसकी झलक इस पुस्तक मे है।

रह-रहकर मेरे मन मे यह विचार उठता है कि यह कथा क्या किसी के काम की होगी भी? लोग इसमें से क्या लेंगे? मेरे पोते-पोती तो इसे, जव यह लेख-माला के रूप मे निकल रही थी, पढकर इसके कुछ प्रसगो की हँसी उडाया करते थे। मेरे वडे पोते राहुल ने तो एक दिन बचपन की मेरी उस घटना का जिक्र करते हुए, जव कि मेरी सास ने मुझे व जमनालालजी को एक कमरे में सुलाया था और जमनालालजी ने मेरे पैर में चिकोटी काटी थी,

पूछा, "दादीजी, आप तो सो गई थी। आपको कैसे पता चला कि दादाजी ने चिकोटी काटी ?" मैंने उससे कहा, "अरे राममार्या, तूने और भी कुछ पढा या इसीपर ध्यान गया ?" इस तरह मुझे शका ही है कि यह किसी के कुछ मतलब की होगी या नही ? दुनिया मे पढने को और मनन करने को इतना पडा है तो उसमे और कोरे कागजो को काला करके कूडा क्यो वढाया जाय ? पर कई ऐसे भाइयो की तरफ से, जो इस प्रकार के सस्मरणो मे दिलचस्पी रखते हैं और अच्छा समझते हैं, सूचना आई कि इन्हे पुस्तक का रूप देना चाहिए। कुछ का विशेष आग्रह भी हुआ। हार कर, मै इसके लिए तैयार हो गई।

मेरे जीवन पर जिन तीन महापुरुषो की गहरी छाप पड़ी, उनमे जमनालालजी और बापूजी तो अब रहे नही। विनोबाजी हैं। पर वे तो छोटे भाई के जैसे लगते हैं। उनके पास जाने मे मुझे जरा भी डर नही लगता। बापूजी के सामने जाने मे डर-सा लगता था। उसका एक कारण यह भी हो सकता है कि जमनालालजी ने उनको पिता माना था, सो मैने भी अत.-करण के किसी कोने मे उनको ससुर-सा समझकर उनका डर बसा लिया हो। जमनालालजी से तो उनके कामो को लेकर एक प्रकार की ईर्ष्या-सी होती थी। उनसे लड-झगड भी लेती थी। उनको राजी रखने का भी प्रयत्न करती थी, पर इन दोनो के चले जाने से एक अभाव-सा, रीतापन-सा महसूस होता है। वह उन दोनो की मृत्यु के समय नही महसूस हुआ था। मुझे अन्दर से काम करने की प्रेरणा होती है। उत्साह भी है। पर कोई हाथ पकड कर काम करा ले, ऐसा मन मे होता रहता है। विनोबाजी के भूदान मे, कूपदान में, मन लगता है, अच्छा भी लगता है, काम भी करती ही रहती हूँ, पर हो नही पाता। शक्ति भी अब शरीर मे दिन-पर-दिन कम ही होती जाती है, लेकिन रह-रहकर यह बात मन मे आती है कि कोई खीचकर काम करा ले।

जब काम-काज मे लग जाती हूँ, घूमती रहती हूँ तब घर के लोगो का खयाल तक नही आता। पहले भी यही हाल था। अब भी यही है। पर जब परिवार के बीच रह जाती हूँ तो फस जाती हूँ। यो सब लड़के, लड़किया, दामाद सुखी है, अपने-अपने काम-धन्धे मे लगे हैं। उनकी मुझे

किसी प्रकार की चिन्ता नही है। किसी को किसी प्रकार का दुर्व्यसन नहीं है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार सब सेवा-कार्य भी करते ही हैं। यह मेरे लिए कम सन्तोष की बात नही है। थोडी-बहुत चिन्ता है तो वह कमल और मदालसा के स्वास्थ्य की। मदालसा ने तो श्री महाबीरप्रसादजी पोद्दार द्वारा सचालित प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्र मे रहकर कुछ चिकित्सा कराई भी और वह वहाँ अधिक रह पाती तो मेरा विश्वास है कि अच्छी भी हो गई होती।

कमलनयन अपना जीवन जरा नियमित बनाले, कुछ व्यायाम और खान-पान मे नियमित बने तो उसका स्वास्थ्य भी ठीक हो जाय। पर वह किसी की सुने तब न ! जो उसे ठीक जचता है, वही करता रहता है।

मेरी अपनी तबीयत जब कभी खराब होती है तो मै तो अपनेको इलाज और दवा-दारू के मामले मे महाबीरप्रसादजी पोद्दार और राधाकृष्ण के हाथ मे सौप देती हूँ। पोद्दारजी की तो बातो से ही आधी बीमारी दूर हो जाती है। राधाकृष्ण कभी-कदास पास होने पर अपने होम्योपैथी के बक्स मे से ४-६ गोलियाँ दे देता है और उससे आराम भी मिलता है। पर मुझे प्राकृतिक चिकित्सा पर पूरी श्रद्धा है। आवले को मैं अमृत-तुल्य मानती हूँ और उसे बाँटती रहती हूँ।

कभी वरधा, कभी दिल्ली, कभी बम्बई और कभी विनोबाजी के साथ घूमती रहती हूँ। सबसे ज्यादा सतोष मुझे विनोबाजी के पास मिलता है। बम्बई मे तो मेरे आकर्षण का केन्द्र मेरी तीन सहेलियाँ—श्रीमती शारदादेवी बिडला, सरस्वती देवी गाडोदिया और शातीबाई पित्ती हैं। यो विचारो मे हम सब भिन्न हैं, पर बबई में जहाँ कोई सभा-सम्मेलन हो, कथा-कीर्तन हो या तालावो में नहाने जाना हो, तो हम चारो इकट्ठी हो जाती है। पर इस मडली मे घूमते-घामते भी, खादी, प्राकृतिक-चिकित्सा, गो-सेवा और सबसे ज्यादा कूपदान मे अपनी शक्तिभर कोशिश करती रहती हूँ। साथ ही बापूजी और जमनालालजी की आत्मा से सदा यह आशीर्वाद मागती रहती हूँ कि इस चोले से जितनी सेवा हो सके, करते रहने की प्रेरणा वह देती रहे।

बहुत दिनो पहले मैंने प्रार्थना-स्वरूप कुछ तुकबंदिया रची थी।

कविता करना मैं क्या जानू ! पर मन में जो भाव आये, वे उल्टे-सीधे जोड़ लिये थे। उन पक्तियो के साथ यह कथा समाप्त करती हूँ.

हे परम सृष्टि-करतार,
मानूं मैं तेरा उपकार !

दिया पति मुझको अपन समान
दिये सब साधन औ' सब साज
धाम, धन, बुद्धि, कुटुम्ब, समाज
कमी क्यो दया-धरम की की ?
बनाओ मेरा हृदय उदार,
हे परम सृष्टि-करतार।

रूप बिन खूब बचाई जी
रूप बिन खूब सम्भाली जी
मिलता जो यदि रूप तो मैं
आकाशां उड़ती जी
किया तुमने मेरा उपकार,
हे परम सृष्टि-करतार ॥
संगति गांधी अलबेले की
लाज बचाई इस मेले की
अन्त में की कैसी खिलवार
बताओ दुनिया के रचनार।
हे परम सृष्टि-करतार ॥
लगाई तुमने दारुण चोट
दूर करने को मेरी खोट
जगाने को अथवा हे देव,
छुडाने को ममता की टेव ?
तुम्हारी माया अपरम्पार,
हे परम सृष्टि-करतार।
मानूं मैं तेरा उपकार ॥

अनुक्रमणिका

'मंडल' द्वारा प्रकाशित संस्मरणात्मक साहित्य